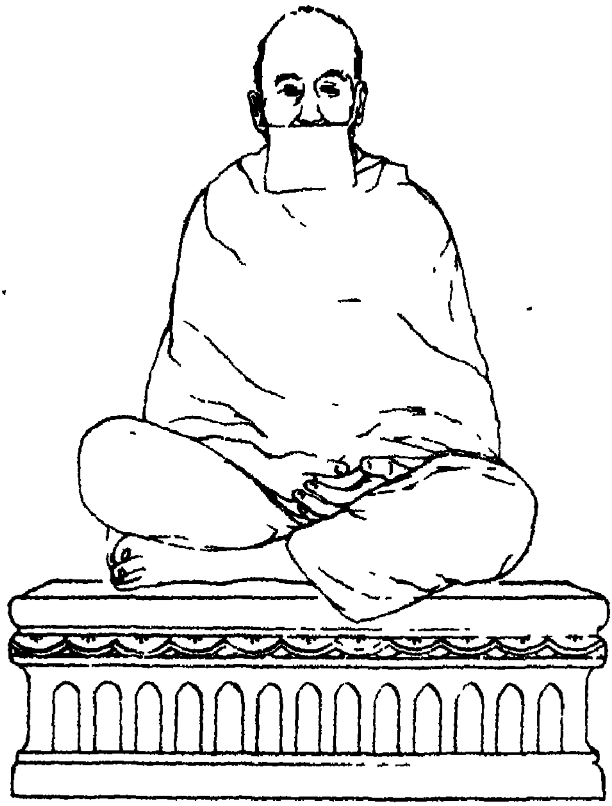
प्रज्ञा-पुरुषोत्तम

मुनि रामकृष्ण



प्रज्ञा-पुरुषोत्तम

मुनि रामकृष्ण

- सुभद्र मुनि

ओमप्रकाश जैन, के० सी० ४१, कविनगर,
गाजियाबाद

○ प्रेरक प्रज्ञा-पुरुषोत्तम मुनि रामकृष्ण

○ लेखक एवं सम्पादक सुभद्र मुनि

○ अवतरण 13 अप्रल 1984 महावीर जयन्ति

○ प्रकाशक सेठ ओम प्रकाश जी जैन
के०सी० 41, कवि नगर गाजियाबाद, (उ० प्र०)

○ मुद्रक · मोन् टाईपोप्रिन्टर्स बजीरपुर, दिल्ली-52



मंगलमय गुरुदेव
विद्वद्रत्न मुनि श्री रामकृष्ण जी म०



समर्पण

पूज्य चरण, प्रज्ञा-पुरुषोत्तम श्रद्धेय गुरुदेव
मुनि श्री रामकृष्ण जी महाराज!
आपके सान्निध्य में रहकर,
आपके शिष्यत्व में जीकर,
जो पाया है,
उसी से अभिभूत हुए मेरे मन का
यह प्रयत्न
आप श्री को
पराश्रद्धा-पराभक्ति-सहित
समर्पित है।

चरण-नत :
—सुभद्र मुनि

प्रति — २७५

२२.८.२८

सम्पादकीय

—चिरकाल का संचित चिंतनीय जब आकार का बिम्ब ग्रहण करने लगता है तो लेखक मानस में सुख-बीज अंकुरित होने लगते हैं। अंकुर का फूट आना वृक्ष की सघनता एवं फलवत्ता का द्योतक है। मेरी मन अवनी पर दीर्घकाल से गुरुदेव के विशाल कृतित्व को संकलित/सपादित करने का अनुचिंतन अकुला रहा था।....'नियति की सुई जब समय के नीयत अंक पर पहुंचती है तभी कुछ घटता है।' गुरुदेव के कृतित्व को व्यक्तित्व के साथ जोड़कर आँक पाने का क्षितिज तलाशते आज 45वें दीक्षापर्याय की पूर्णाहूति का छोर हाथ लगा। कुछ संयोग जुटे। अतः प्रस्तुत प्रज्ञापुरुषोत्तम ग्रन्थ प्रस्तुत कर पाया।

यह प्रयास और मैं

इस ग्रन्थ के संकलन/सम्पादन में एक शिष्य-मन की अनुभूति और कर्त्तव्य की रेखाएं तो बोल ही रही हैं साथ में भक्तजनों का आग्रह भी प्रबल है। उनका निरन्तर आग्रह रहा कि गुरुदेव की स्फुट रचनाएं तो हमें समय-समय पर उपलब्ध होती रही हैं किन्तु एक बृहद संकलन ऐसा चाहिए जिससे एक ही स्थान पर उनके सभी प्रकार की विचार-विरासत से हम लाभान्वित हो सकें।

मेरे मन में स्फुर्णा जागी, क्यों न गुरुदेव के समाज उभ्युदयपरक, ऐतिहासिक एवं संप्रेरक निबंध, भक्तिपरक काव्य, एवं जीवन की दिशा संदर्शन, करने वाले चिंतन कण, उनके विशाल संग्रह में से संकलित/संपादित कर प्रस्तुत कर दूं।

परंतु वह सब सम्भव न हो सका। क्योंकि मैं निश्चय भी नहीं कर पाया कि विशाल संग्रह से क्या-क्या ग्रहण करूं। इसके लिए समय की लम्बी अवधि

अपेक्षित थी। इधर गुरुदेव की दीक्षा का 45वां वर्ष भी सम्मुख था। और भक्तों का आग्रह भी चल रहा था आपको कुछ करना है। अस्तु, मैंने त्वरा में सामान्य रूप रेखा को आधार बना कर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित निबंध, चिंतन कण और काव्य स्तुतियों को संग्रहीत कर, ग्रन्थ पूरा करना उचित समझा। गुरुदेव के सम्पूर्ण लेखन को आधार बना कर ग्रन्थ-संपादन का संकल्प करता तो यह कार्य संभव न हो पाता।

क्या भूलूं क्या याद करूं ?

रत्न-राशि में से क्या ग्रहण करूं और क्या तजूं ? विकट समस्या उस ग्रहणकर्ता के सामने उपस्थित हो आती है जिसके सामने रत्न-राशि का अम्बार लगा दिया जाये और उसे कहा जाये ले लो जो लेना चाहो ! ठीक ऐसा ही मेरे साथ भी घटित हुआ है। ऐसे समय में ग्रहणकर्ता अपनी क्षमता के अनुसार ही चुनाव करता है। मैंने भी इस ग्रन्थ संकलन/संपादन के समय ऐसा ही किया है। क्षमता को न मापता तो ग्राह्य बिखर-बिखर जाता। समय का आतंक भी स्वीकार करना पडा। समय का आतंक अस्वीकार कर देता तो गुरु महाराज के 45वें दीक्षा दिवस के अवसर पर यह जो ग्रन्थ स्वरूप प्रस्तुत कर पाया हूं—संभव ही नहीं था।

चलते इस प्रसंग में यह उल्लेख भी अनुचित नहीं है कि गुरुदेव ने अस्वस्थता के रहते भी 5 शतक से अधिक विभिन्न विषयों पर निबंधों का लेखन किया है। सहस्राधिक प्रवचन एवं सहस्राधिक कहानियों का विशाल संकलन, लेखन है। नमस्कार महामंत्र पर सूक्ष्म एवं गवेषणापूर्ण विवेचन तथा श्रमण जीवन का आधार स्तंभ आवश्यक सूत्र पर टीका गुरुदेव ने की है। ये दोनों कृतियां अप्रकाशित है। जैन धर्म का ऐतिहासिक चंदनबाला चरित्र 'भारत का ब्रह्मवर्चस्व' नाम से और भगवान् महावीर पर अद्भुत काव्याभिव्यक्ति भी गुरुदेव ने की। परन्तु इन कृतियों पर स्वास्थ्य की प्रतिकूलता के कारण 'पूर्णत्व' की मुद्रा अंकित नहीं हो पाई।

महावीराष्टक स्तोत्र, गुरुदेव योगिराज श्री रामजीलालजी म. के जीवन पर 'गुरुदेव शतक' भावपूर्ण संस्कृत कृतियां विशेष उल्लेख्य हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ :

यह ग्रंथ पांच विभागों में विभक्त है। प्रथम विभाग में गुरुदेव का श्रद्धाभिभूत अभिनंदन प्रस्तुत किया है। यह खंड विस्तृत हो सकता था। अनेक संघों की ओर से इसमें भावाभिव्यक्ति का प्रावधान था। परन्तु यह अभिनन्दन ग्रन्थ न होकर व्यक्तित्व और कृतित्व पर आधृत ग्रन्थ है। अतः समवेत अभिनन्दन ही प्रस्तुत किया गया है।

दूसरा खण्ड व्यक्तित्व परक है। मैं प्रारम्भ से ही संक्षिप्त लेखन को आधार मान कर चला! अत: गुरुदेव के सर्वांगीण व्यक्तित्व को मैं प्रस्तुत न कर पाया। यह केवल परिचय रेखा है। इस संदर्भ में, यह बताना भी आवश्यक है कि अनेक भक्त शिष्यों ने बहुत से प्रसंग मुझे ऐसे सुनाये जिनमे गुरुदेव की कृपा-दृष्टि से उनके जीवन की जटिल उलझनें पल भर में सुलझ गयीं। अनेकों ने अपने जीवन में घटित गुरुदेव की वचन सिद्धि तथा मैंने अपने स्वयं के जीवन में जो अनुभव किया, देखा, जिसमें गुरुदेव का ऋषित्व तेजस्विता के साथ साकार हुआ, और जिसकी संभावना न थी, वह घटित हो गया— को मैंने प्रस्तुत नहीं किया! क्यों न किया! इसलिए कि शिष्य होने के नाते मेरा मन स्वयं मे इस अपने गौरव को सह न पाने के कारण सकुचा जाता! अत: चमत्कार प्रधान संस्मरण मैं न दे सका। जिन्होंने जो देखा, अनुभव किया, वे स्वयं लिखें तो अच्छा रहेगा!

तृतीय खण्ड से गुरुदेव का कृतित्व प्रारम्भ होता है। इसमें गुरुदेव के समय-समय पर लिखित निबधों का संयोजन है! ये निबंध अनेक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। सामयिक विषय प्रतिपादक होने से बहुत लोकप्रिय रहे।

यद्यपि कुछ बहुचर्चित प्रकाशित गहन विचार और चिंतन पूरित निबध उपलब्ध नहीं हो पाए। कारण स्पष्ट है, गुरुदेव ने जो कहना या जब लिखना चाहा—लिखा/कहा। उनका संकलन व सुरक्षा न हो सकी। कौन करता, आखिर यह सब? आज उनका महत्व समझ में आ रहा है। परंतु संत मानस अनाम साधना का साधक होता है। संरक्षण की पहरेदारी वहां कौन करे!

चिंतनखण्ड-आंगल और हिंदी दोनों भाषाओं मे प्रस्तुत है। वे चिंतनकण-गुरुदेव की चिंतन दैनंदिनी से शीघ्रता में चुने जा सके है।

काव्य-खण्ड मे भी प्रस्तुत की गई कृतियां से कुछ परिचित हैं। कतिपय कृतियां पूर्व मुद्रित हैं तो कुछ अमुद्रित।

और अन्त मे प्रस्तुत है - समारोह-परिशिष्ट! इसमें गुरुदेव श्री के अभिनन्दन-समारोह की भव्य-दिव्य सचित्र झांकी पाठकों को मिलेगी। इस अवसर पर जिन मुनिराजों, महासतियों एवं कवियों ने अपनी शुभकामनायें प्रेषित की, उनके प्रति मैं आभाराभिव्यक्त करता हूं।

इसमें और क्या आ सकता था? ऐसा बहुत कुछ छूट गया या उपलब्ध को भी छोड़कर चलना पड़ा; जो प्रस्तुत है वह कितना सार्थक है? निष्पक्ष पाठक और सुधि विचारक करेंगे—इसका निर्णय। मै अपनी बात कह आगे चल रहा हूं।

सहयोग-शृंखला :

—इस अपूर्णता या पूर्णता के बोध की संतुष्टि मे सहयोगियों के सहयोग को अभिव्यक्त करता चलूं—यह भी स्मरण की स्फुरणा मे उग आया है।

—कुमार सत्यदर्शी, डा० शोमनाथ पाठक [भोपाल] डा० महेन्द्रभाई दवे, डा० शुकदेव चतुर्वेदी, सुमन्तभद्र जी शास्त्री प्रभृति विद्वज्जनों का सहयोग समय-समय पर चर्चा-वार्ता में सत्परामर्श के रूप में मिलता रहा।

—इस प्रकाशन को रूपायित करने का श्रेय सेठ ओमप्रकाश जैन (गाजियाबाद) को है। उन्होंने उदारता का हृदय-द्वार खोला तो बस खुला ही है। 'प्रज्ञा पुरुषोत्तम' के संयोजित होने के संकल्प से लेकर रूपायित होकर जन-जन के लिए करस्थ होने तक।

—और बाबू श्रीकृष्ण जैन (माडल टाउन देहली) शेषचन्द्र जी गुप्ता (कलाकार) तथा गुलशन कुमार (सोनू प्रिंटर्स) का अथक श्रम श्लाघ्नीय है।

—'प्रज्ञापुरुषोत्तम' अभिनंदन ग्रन्थ है। कृतित्व ग्रन्थ है। व्यक्तित्व ग्रन्थ है, क्या है, इस सम्बन्ध मे, मैं कुछ कह पा सकने की स्पष्ट रेखा खीच पाने मे अक्षम हूं। मन में क्षमता जुट पा रही है तो यही कि यह मात्र मेरी श्रद्धा का अर्घ है।

प्रभुपाद गुरु-चरणों मे मेरा शिष्य-मन, समर्पण का पायदान बन जाये, बस ऐसे ही भाव का बिम्ब है यह ग्रन्थ ! गुरुदेव का व्यक्तित्व कितना प्रतिबिम्बित होगा या हुआ, यह मात्र मेरे अकेले का दायित्व तो नही, उनके सभी शिष्य व भक्त जनों के चिन्तन का भी तो विषय यह है ?

बस इतना ही।

सुभद्र मुनि

जैन स्थानक
माडल टाउन, देहली-9

'प्रज्ञा-पुरुषोत्तम मुनि रामकृष्ण'

(अनुक्रम)


शत-शत
वन्दन
पग-पग
अभिनन्दन

युग-
पुरुषोत्तम
मुनि
रामकृष्ण

समवेत स्वर
अभिनन्दन

प्रतिभा के प्रतिरूप दिगम्बर,
ऋतम्भरा के विभु प्रतिमान।
मुनिश्री रामकृष्ण जिनकल्पी,
ऋषि प्रज्ञा के अमृतदान।

दिव्य स्वप्न साकार प्रजापति,
मर्यादा योगीश कलायुत।
रामकृष्ण चिद्रूप गणाधर,
देही परम विदेह कलायुत।

उन्नीस सौ सत्तर विक्रम शुभ,
श्रावण-कृष्णा पावन तीस।
रामकृष्ण सम्भव सुखदायक,
रोहतक नगर हुआ साशीष।

जननी पिस्तोदेवी, बंसल,
दौलतराम जनक सुज्ञान।
रामकृष्ण भावी मुनिकारण,
थे द्वय साधक सिद्धि-समान।

उन्नीस सौ पच्चानवें संवत्,
सित त्रयोदशी चैत्र सुमास।
रामकृष्ण मुनिव्रतधारी शुभ,
नालागढ़ में हुए सवास।

दीक्षागुरु श्रीरामजीलालजी,
योगिराज मुनिवर्य महान्।
मुनि श्रीरामकृष्ण श्रद्धाप्रिय,
प्रेक्षा पुरुष प्रदीप्त प्रमाण।

प्रज्ञाशील समाधि-सुसेवित,
दर्शन-ज्ञान-चरित्र निधान।
मुनि श्री रामकृष्ण श्वेताम्बर,
स्थानकवासी श्रमण महान्।

शत-शत
वन्दन
पग-पग
अभिनन्दन

प्रज्ञा-पुरुषोत्तम मुनि रामकृष्ण

संयम-श्रुत-चारित्र त्र्यम्बक,
मैत्री दया-प्रमोद वितान।
मुनिश्रीरामकृष्णकविकुलपति,
विद्वद्रत्न सुमेध महान्।

यशःकाय कीर्तिधर मनीषी,
महाव्रती श्रद्धेय महान।
मुनिश्री रामकृष्ण अतिभाजन,
गमपुरूप चर्या दिनमान।

स्थविर कल्प श्रमणार्य यशोधन
काव्यादर्श सुवक्ता सुज्ञान।
मुनि श्री रामकृष्ण कीर्तिमान,
गुणजेता गुरुदेव महान।

पण्डितप्रवर प्रज्ञी विस्तारक,
धर्म धुरीण प्रमेय प्रमाण।
मुनिश्री रामकृष्ण नैयायिक,
नीतिवर्म शारद नयवान।

सरल सुभद्र सुशान्त सुमानस
सुभग सुशील सुमन्त्र सुजान।
मुनि श्री रामकृष्ण शुभ गुणवान,
सुरपूजित सुरगम्य सुज्ञान।

शुद्धाचार विचार और चिंतक,
शुद्ध स्वप्न शुद्धामृत दान।
मुनिश्री रामकृष्ण साधक,
शुद्ध शुद्ध शुचिकल्प सयान।

सफल लोक सुमन समीहाय,
कर्मजयी समभाव निरभिमान।
मुनिश्री रामकृष्ण वैरागाराम,
आनन्द आत्मज्ञ प्रज्ञमान।

स्वयं बुद्ध सविदग्ध सुधार,
अप्रमत्त जागृति सन्धान।
मुनिश्री रामकृष्ण सम्बोधक,
बोधिवर्ष वार्ता वसुमान्।

शत-शत वन्दन पग-पग अभिनन्दन

प्रज्ञा-पुरुषोत्तम मुनि रामकृष्ण

मर्यादित मनुवर्य मरुवेश्वर,
मुनि-केतन मनोज्ञ मतिमान्।
मुनिश्री रामकृष्ण मुनि-मानक,
मननशील माणिक्य-समान।

शुभ्र-दृष्टि संख्यान सुदर्शन,
चित्त प्रसाद प्रसन्न प्रदान।
मुनिश्री रामकृष्ण सञ्जीवन,
दर्शन रत्न दयार्द्र निधान।

चिदाकाश सैद्धान्तिक-स्तुत्य,
समाकार जित-प्राणापान।
मुनिश्री रामकृष्ण सिद्धासन,
योगमणिः योगी युगमान्।

यतनाशील यतस्वी यतिवर,
यतना-निष्ठ सुभाष सुगान।
मुनिश्री रामकृष्ण यतनाधिप,
यतनाप्रिय सुकर्म-सम्मान।

दयादान-दाक्षिण्य विरुदवर,
मंगलमूर्त्ति प्रभावक ध्यान।
मुनिश्री रामकृष्ण गति-गोप्ता,
गुप्ति-गुप्त गतिचर्या ध्यान।

गिरा-हृदयङ्गम गरिमामय गोचर,
गिरा-लास्य वाणी विज्ञान।
मुनिश्री रामकृष्ण वाचस्पति,
शब्दगौर्ग्य सारस्वत-ज्ञान।

निरालज्ज निर्लाज निरामय,
निराकार नामी निर्वाण।
मुनिश्री रामकृष्ण निर्विघ्नक,
निर्निमेष नवनिधि निर्माण।

निरहंकार निरंजन निर्भय,
नित्यानन्द तुरीयादान।
मुनिश्री रामकृष्ण नैमित्तिक,
नारायण निश्चल महिमान्।

शत-शत
वन्दन
पग-पग
अभिनन्दन

प्रज्ञा पुरुषोत्तम मुनि रामकृष्ण

गुरुवर प्रभवर पुरुषोत्तम पावन,
मुनिवर [illegible] सुजान।
मुनि श्री रामकृष्ण गुरु [illegible],
[illegible] विभूति महान।

[illegible]
[illegible] अतिशय [illegible]।
[illegible],
[illegible]।

[illegible],
[illegible]।
[illegible]
[illegible]।

[illegible],
[illegible]।
[illegible] रामकृष्ण [illegible],
[illegible] आवो भगवान।

श्वेतवसन श्वेताम्बर सेवक,
श्वेतध्यान सुश्वेत सुमान ।
मुनिश्री रामकृष्ण श्वेतामृत,
शुक्लध्यान धारक ध्रुवध्यान ।

जातरूप जातक वैज्ञानिक,
जीवाधार जीवनविज्ञान ।
मुनिश्री रामकृष्ण जीवाकृत -
जीवरक्षा जैविक व्याख्यान ।

निर्ग्रन्थ निरालोक ज्ञानेश्वर,
गण मुक्तिधारी अनगार ।
मुनिश्री रामकृष्ण शीलश्री,
संयम-धर निर्जर अविकार ।

दशाश्रमण गुण निष्णु सुखावत,
भास्वर भाग्य विभव संसार ।
मुनिश्री रामकृष्ण भट्टारक,
सूरि सुराम सुनाम सुधार ।

शत-शत
वन्दन
पग-पग
अभिनन्दन

महा
पुरुषोत्तम
मुनि
रामकृष्ण

वैयावृत्यव्रती-वसुधाधर,
वीरबन्धु विश्वास-विलास।
मुनिश्री रामकृष्ण श्रद्धामय,
भावासिक्त चरित्र-विकास।

चमत्कार-चिन्तामणिपारस,
स्पर्श-प्रकर्ष विमर्श विहार।
मुनिश्री रामकृष्ण रत्नाकर,
रत्नाम्बर रविभामाकार।

मार्गशीर्ष मासोत्तम मधुकर,
सुखाराध्य सुखसाध्य समास।
मुनिश्री रामकृष्ण सांवत्सर,
संवत्सर कुसुमाकर-हास।

तीर्थङ्कर वंशस्थ समुद्भव,
तीर्थात्मज वैराग्य-प्रकाश।
मुनिश्री रामकृष्ण पुरुषार्थी,
भव्यजीव संस्कृत सुन्यास।

सर्वाधार सुविज्ञ सुखानन,
संस्कृति-परक प्रमाण-प्रधान।
मुनिश्री रामकृष्ण सत्यार्थी,
पावातीर्थ-प्रवाह-समान।

अनेकान्त विज्ञान-विधाधर,
जितकषाय परिव्राट्-प्रकर्ष।
मुनिश्री रामकृष्ण विद्वद्वर,
मैत्र-करुण सद्वृत्ति सुहर्ष।

तापस श्रेष्ठ निकाय-नियामक,
दिग्दर्शक निर्देशक-पाद।
मुनिश्री रामकृष्ण सम्प्रेरक,
वाचक स्वामी वृत्तास्वाद।

कृपाचार्य सुविधेय सुसेवित,
भारत-कीर्ति विश्वकल्याण।
मुनिश्री रामकृष्ण भावागम,
सबलात्मा सर्वात्मा त्राण।

शत-शत
वन्दन
पग-पग
अभिनन्दन

प्रज्ञा
पुरुषोत्तम
मुनि
रामकृष्ण

भक्ति प्रवण निर्दोष व्यवस्थित
शुचि प्रशस्त समवाय प्रभाव
मुनिश्री रामकृष्ण व्याख्यागत
वर्ण्य विभावसु वेदाख्यात

तर्पण - विरत वरेण्य वरानन,
उपयोगी प्रतीत विश्राम।
मुनिश्री रामकृष्ण वर्णाश्रय,
अतोपाधिहर अव्यापारग।

महामहिम जिनरत्न प्रभाकर,
परप्रकार प्रणदीपक गायत्र।
मुनिश्री रामकृष्ण संस्थानक,
प्रतिपादक सम्पादक धान्य।

नामधन्य धवलाकृत पयोधर,
आत्मादर्श सुधीर सुदेश।
मुनिश्री रामकृष्ण विरतागत,
समयसार कालज्ञ सुवेष।

जिनशासन द्रष्टा युगस्रष्टा,
विद्यानन्द विभव चरितार्थ।
मुनिश्री रामकृष्ण नैसर्गिक,
वीतराग मुद्रा फलितार्थ।

निजालोक सन्मतिरत साधक,
मिताहार मार्दव व्यवहार।
मुनिश्री रामकृष्ण विश्वाकर,
द्युति विराग शुभ साक्षात्कार।

स्वावलम्ब सुविधा परित्यागी,
सदुपदेशरत सुष्ठु-प्रवाह।
मुनिश्री रामकृष्ण द्विजभूषण,
युक्तियुक्त सवितासंनाह।

परमहंस गतिप्राप्त प्रकाशक,
क्लेशजयी निष्कल निष्काम।
मुनिश्री रामकृष्ण द्युतिवर्द्धक,
निजानन्द निर्भय निर्याम।

शत-शत
वन्दन
पग-पग
अभिनन्दन

मुक्ति पथिक जयभिक्षु जनार्दन,
जनाकीर्ण जनजीवन-गान।
मुनिश्री रामकृष्ण जनरक्षक,
जनादर्श जयरूपा ध्यान।

शिष्ट विनय सम्पन्न बहुश्रुत,
निरभरण निर्द्वन्द्व प्रशान्त।
मुनिश्री रामकृष्ण जितकल्मष,
निरभिमान नम्राग्रज कान्त।

परीषहजयी जितेन्द्रिय शामक,
मृषारहित मार्दव गुणधाम।
मुनिश्री रामकृष्ण व्रतपालक,
दृढ़प्रतिज्ञ सावद्य- विराम।

अनुद्वेग निर्लोभ निरीहक,
शुद्धाशन सुनियन्त्रित पान।
मुनिश्री रामकृष्ण सुविचक्षण,
कल्पनीय-चर भिक्षु महान्।

रसत्यागी सुतप्त यतनोद्भव,
स्वादास्वादजयी गुणग्राहक।
मुनिश्री रामकृष्ण सन्तोषी,
तृष्णामुक्त सुचर्यविाहक।

हिंसा विरत तटस्थ महोदय,
भूतिदक्ष भवरोग-प्रभञ्जन।
मुनिश्री रामकृष्ण परमार्थिक,
परहित स्वहित-प्रवीण सुनन्दन।

शल्यरहित सात्मा निष्कण्टक,
मूर्च्छारहित सदा निःशंक।
मुनिश्री रामकृष्ण सर्वोत्तम,
भद्रबाहु जित श्याम कलंक।

यशोभद्र जिनकीर्ति प्रशासक,
परिमितवचन सुदिव्य सुघोष।
मुनिश्री रामकृष्ण मितभाषी,
वाग्विमर्श निर्भर सुतोष।

प्रज्ञा पुरुषोत्तम मुनि रामकृष्ण

कुलबलरूप-विभवमद-दाहक,
निराशंस निर्ग्रन्थाचार।
मुनिश्री रामकृष्ण गुण सुन्दर,
मूलोत्तर गुणमय अनगार।

दत्तचित्त रत्नाधिक सेवी,
स्वाध्यायी जागृत शीलांग।
मुनिश्री रामकृष्ण प्रतिपादक,
पाठक प्रच्छक धर्म दशांग।

क्षमा मुक्ति मार्दव आर्जव तप,
सत्याकिञ्चन संयम शौच।
मुनिश्री रामकृष्ण धर्माश्रित,
शुभ मुमुर्ष पद पक्षी क्रौञ्च।

दृष्टिवाद शब्दार्थचयी मृदु,
कल्मषरहित शरदृतुचन्द्र।
मुनिश्री रामकृष्ण रसवर्षी,
संयम तूर्यकुमार जितेन्द्र।

गुरुसेवी गुरुगुण सम्पोषक,
गुरु गम्भीर गुरु गुरुतम दास।
मुनिश्री रामकृष्ण गुरुमंत्री,
गुरु गरिमामय गुरु शशि हास।

विद्वद्‌रत्न वरद विद्याबल,
विद्यावास्य वशी विद्वान्।
मुनिश्री रामकृष्ण विद्यामुख,
विद्या विनय विटप छविमान।

महाप्रज्ञ गहदर्थ प्रवर्तक,
महामहिम महनीय महेश।
मुनिश्री रामकृष्ण मुनिसत्तम,
महामहोपाध्याय गणेश।

सांगोपांग शास्त्र-व्याख्यापति,
द्वादशांग श्रुत-ज्ञानाधार।
मुनिश्री रामकृष्ण शास्त्रार्थी,
शास्त्रगात्र श्रुतधारा-धार।

शत-शत
वन्दन
पग-पग
अभिनन्दन

द्रव्य-क्षेत्र-कालभावाश्रित,
विनय-विवेक व्रती सम्भ्रान्त।
मुनिश्री रामकृष्ण सुविभागी,
सावधान निर्वेदाक्रान्त।

साधर्मी सम्मान रचन पटु,
प्रतिभाधर निश्छन्द तपस्वी।
मुनिश्री रामकृष्ण युगवल्लभ,
सुलभ सचेत सुचीर्ण मनस्वी।

योगारूढ सुस्वान्त सहोदर,
सम्प्रदान सत्वी सम्मान।
मुनिश्री रामकृष्ण गुरुरूपक,
कृपाकाश प्रेक्षा वरदान।

मुनि सुभद्र गुरु शक्तिधराधर,
पुण्यप्रजापति तुल्य प्रसाद।
मुनिश्री रामकृष्ण सुतनागर,
पितृहृदय पालक संवाद।

मुनि-शिल्पी श्रुतिशील कलाधर,
सृष्टि पुरुष लोकायत ध्यान।
मुनिश्री रामकृष्ण सोपानक,
सम्यक्-सरणि सुसंगत ज्ञान।

संख्यातीत केवली-दर्शित,
श्रेयोमार्ग-पथिक-पाथेय।
मुनिश्री रामकृष्ण-नामाक्षर,
निमिष-निमिष-ध्यातव्य विधेय।

गगनागत शुभ वारि यथाक्रम,
सागर गमन विधान समान।
मुनिश्री रामकृष्ण नामाश्रित,
जप-तप योग-विराग विधान।

लाभालाभ जयाजय जेता,
जन्ममृत्यु भयहारी नाम।
मुनिश्री रामकृष्ण गुरुनामी,
शाश्वत सौख्य-प्रदायक धाम।

शत-शत
वन्दन
पग-पग
अभिनन्दन

युग
पुरुषोत्तम
मुनि
रामकृष्ण

मोहरात्रिहर महानिशापति,
कालरात्रिहर शिव-कालेश्वर।
मुनिश्री रामकृष्ण नकुलाग्रज,
दीक्षासिद्धि महाबालेश्वर।

अस्तिनास्ति-मध्यस्थ सुशीर्षम्,
अव्यय अविनाशी मुनि ज्ञानी।
मुनिश्री रामकृष्ण वार्ता मुख,
तत्वाद्रुगत प्रभु भवहरदानी।

मन्त्रमूल लिपिबद्ध कथानक,
सूत्रधार सगाम संवाह।
मुनिश्री रामकृष्ण राजधानी,
रोग-शोकहर पुण्य प्रवाह।

पूर्ण नामत्रय नैमित धार्मिक,
ज्ञान विराग विष्णु भगवान्।
मुनिश्रीरामकृष्ण कालायन,
सत्यकल्प साक्षी प्रज्ञान।

अमृत वाग्भव पूज्य सतीर्थक,
नमः स्वरितपद वाचक वन्दन।
मुनिश्री रामकृष्ण जगवल्लभ,
सम्यक सृष्टि प्रपोषक वन्दन।

अर्हन्निष्ठ विवेक-महोदधि,
रत्नाधिक सामायिक वन्दन।
मुनिश्री रामकृष्ण धर्माम्बुधि,
ध्याता शुभ परिणामी वन्दन।

प्राचेतस प्रद्योत प्रभाकर,
पुलकोद्गम शारीरिक वन्दन।
मुनिश्री रामकृष्ण धन्वन्तरि,
महाभिषग निरुपाधिक वन्दन।

जगाकार जयहेतु जयीश्वर,
जप योगेश जपार्पित वन्दन।
मुनिश्री रामकृष्ण जपलक्षण,
भवातीत भव्याकृत वन्दन।

शत-शत वन्दन पग-पग अभिनन्दन

बोधिबीज विबुधार्चित धार्मिक,
धर्मारोह सुधर्मा वन्दन ।
मुनिश्री रामकृष्ण धर्माधिप,
धर्मवीर दृढ़धर्मी वन्दन ।

महामना प्रभुपाद प्रतिष्ठित,
सौम्यवपु वैराग्यधाम वन्दन ।
मुनिश्री रामकृष्ण परमापन्न,
परमात्मार्थ प्रदर्शी वन्दन ।

श्रुतागमज्ञ श्रुतयोगी श्रुतागम,
सुश्रुत योगी गुणीरक्षक वन्दन ।
मुनिश्री रामकृष्ण श्रुतिभूषण,
श्रुत रक्षक श्रुतधारक वन्दन ।

वेदितव्य सुव्रत विद्यावृत,
महाराज मनुजेश्वर वन्दन ।
मुनिश्री रामकृष्ण कामेश्वर,
कामजयी कामाक्षय वन्दन ।

पूर्णकाम वागीश स्वग्रही,
वचनसिद्ध गुरुकुलकर वन्दन।
मुनिश्री रामकृष्ण शुभवीक्षक,
विश्वम्भर व्रतधारी वन्दन।

दीप्तिमान प्रत्यूष-समीरण,
रश्मिरथी स्वरजीवन वन्दन।
मुनिश्री रामकृष्ण प्रियदर्शन,
चक्रेश्वर पद्मासन वन्दन।

[illegible]न्यासमंत्रेश्वर छान्दस,
मन्त्रोद्धर शुभयान्त्रिक वन्दन।
मुनिश्री रामकृष्ण सिद्धीश्वर,
सिद्धिरक्षा श्रद्धाभरा वन्दन।

कलानाथ सम्पूर्ण कलाधर,
कला कलित-करुणाकर वन्दन।
मुनिश्री रामकृष्ण जनकल्पित,
कलाकल्पतरु बीजक वन्दन।

प्रज्ञा
पुरुषोत्तम
मुनि
रामकृष्ण

व्यष्टि-समष्टि-पुरुष सर्वोत्तम,
सर्वनाम सर्वाश्रय वन्दन।
मुनिश्री रामकृष्ण मणिपुरक,
परम मिताक्षर मोहन वन्दन।

मुक्तानन्द सदाशिववर्ती,
चिद्विलास प्रिय वाग्मी वन्दन।
मुनिश्री रामकृष्ण गोरक्षक,
गोप्यादर्श गवेषक वन्दन।

धृति सुमेरु विपुलाचलवर्ती,
चिरसहिष्णु मतिधीर सुवन्दन।
मुनिश्री रामकृष्ण धृतिवत्सल,
धीर ललित जननायक वन्दन।

निरारम्भ निर्विघ्न निरापद,
भावप्रवण विधि-बान्धव वन्दन।
मुनिश्री रामकृष्ण साक्षात्कृत,
विभु-सापेक्ष-चिरायुष वन्दन।

महामात्य मृदु एक महद्वर,
महामेघध्वन ब्रह्मविद वन्दन।
मुनिश्री रामकृष्ण पुण्योपम,
मुदिता प्रवर प्रवर्द्धक वन्दन।

शुक्लगगन परिभाजस्वरूपक,
ब्रह्मतीर्थ सुशरीरी वन्दन।
मुनिश्री रामकृष्ण श्रमणर्षभ,
पुण्यात्मा परमार्थी वन्दन।

उपशमशील नियोक्ता नीरव,
नित्यनीड निर्माता वन्दन।
मुनिश्री रामकृष्ण द्विजभूषण,
वृषभस्कन्ध भतबीजक वन्दन।

जरामृत्यु-भय जिष्णु जिनेश्वर,
पादपद्म चिन्तात्मा वन्दन।
मुनिश्री रामकृष्ण नचिकेता,
प्राञ्जल कालविजेता वन्दन।

शत-शत
वन्दन
पग-पग
अभिनन्दन

प्रज्ञा-पुरुषोत्तम मुनि रामकृष्ण

अनघ विविक्तदृष्टि भारत प्रिय,
विश्वधर्मनायक शुभ वन्दन ।
मुनिश्री रामकृष्ण ध्रुव दीपक,
जागृति-बोध-विधायक वन्दन।

सदृश सुभग कपोल सुनासिक,
सुभग कण्ठ कर्णाधर वन्दन ।
मुनिश्री रामकृष्ण भाग्येश्वर,
सस्मितवदन सुचित्रक वन्दन।

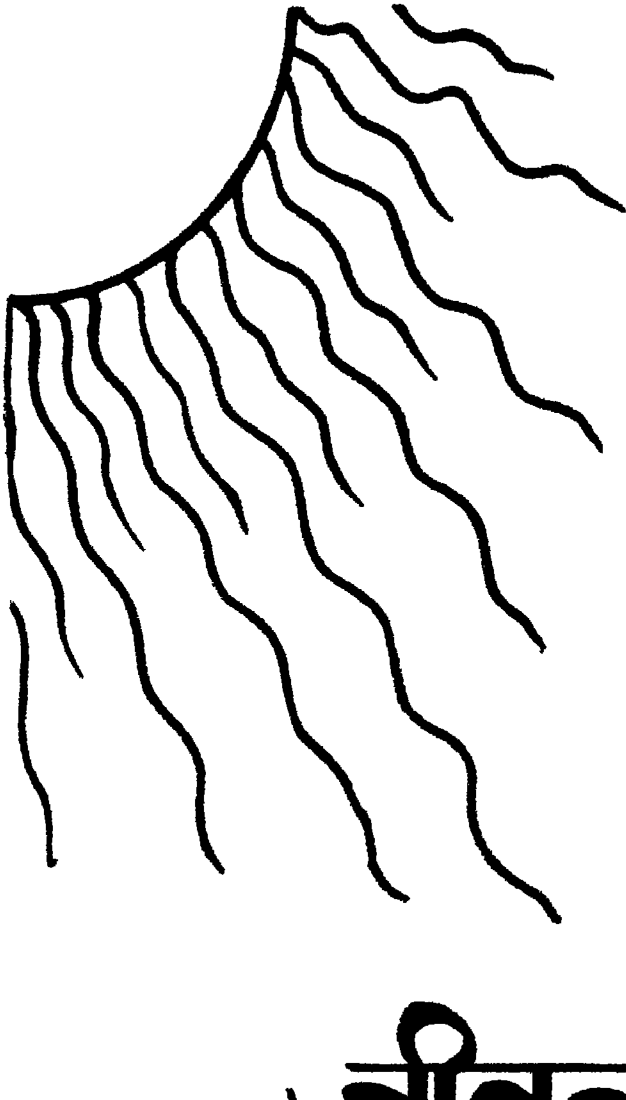
वीतराग जिन-सिद्ध-समर्पित,
भव्यार्थी वरदायक वन्दन।
मुनिश्रीरामकृष्ण युग सौरभ,
संयोजक समताप्रद वन्दन।

गोमृगपालक योग-चर्याचर,
लोकपाल लोकाधिप वन्दन।
मुनिश्री रामकृष्ण लिपुरीशक,
कर्म विशुद्ध कृताञ्जलि वन्दन।

अभिनन्दन गतकीर्ति यतीश्वर,
चारुचरित जनजीवन वन्दन।
मुनिश्री रामकृष्ण परमेष्ठी,
वन्दनीय चरणाम्बुजवन्दन।

शत-शत
वन्दन
पग-पग
अभिनन्दन





जीवन आलोक

प्रज्ञा-पुरुषोत्तम मुनि रामकृष्ण

(जीवन-आलोक)

वंश-परिवार-परिचय :

हरियाणा प्रान्त का सुप्रसिद्ध नगर है—रोहतक ! इसी नगर के बाबरा मोहल्ले में लाला मौलिमल जी रहते थे। ये अग्रवाल बंसल-गोत्रीय थे। पहले ये किसी समय चर्खी दादरी हरियाणा में रहा करते थे।

व्यक्ति सोते से करवट बदलता है, तो वहीं का वहीं पाता है अपने-आप को। समय करवट बदलता है, तो व्यक्ति को वह कोसों दूर पहुंचा देता है। समय ने उनीदी करवट बदली थी कि—ला० मौलिमल जी चरखी दादरी से रोहतक आ गये। यहां वे हर्षित मन से रहने लगे। रोहतक के जन-जीवन में वे ऐसे रमे-रचे, कि यहां के नागरिक उनको विशेष आदर-सम्मान की दृष्टि से देखने लगे।

इस तरह रोहतक ही लाला मौलिमल जी का धर्म-क्षेत्र, कर्म-क्षेत्र और जीवन-क्षेत्र बन गया। यहीं रहते-रहते एक दशक अतीत में सिमट गया। अगला दशक लगा, तो धीरे-धीरे क्रमशः सात पुत्रों ने जन्म लिया, इनके घर-द्वार, आंगन में। लाला मौलिमल जी ने जब चरखी दादरी को छोड़ा, तो उन्हें अपने दो हाथों का भरोसा था। अब चौदह हाथ और उनके साथ-साथ उठ सकने की सामर्थ्य प्राप्त कर चुके थे। सातों पुत्रों के क्रमशः नाम थे—1. लाला सीताराम 2. लाला केदारनाथ 3. लाला दौलतराम 4 लाला दुलीचन्द 5. लाला आत्माराम 6. लाला रामप्रताप 7. लाला शिवप्रसाद।

इनमें सातवें पुत्र शिवप्रसाद पूर्ण युवावस्था में अनन्त की गोद समा गए। लाला आत्माराम (पांचवें पुत्र) ने अविवाहित रहने का संकल्प ले डाला। शेष पुत्रों ने विवाहोपरान्त अपना-अपना अलग पथ चुन लिया। लाला मौलिमल दो हाथों पर भरोसा कर रोहतक आए थे उन्ही दो हाथों का आस-विश्वास कितना बढ़ा फला-फूला-

समृद्ध बना, यह पाठकों के सामने है। इस समृद्धि-शिखर को छूकर वे भी अनन्त में लीन हो गये।

इस बंसल-परिवार के अनेक सदस्य आज भी रोहतक-देहली एवं अन्य समीप-दूरस्थ नगरों में व्यवसाय रत हैं, तो कतिपय उत्तराधिकारी उच्च सरकारी प्रतिष्ठित पदों पर कार्यरत है। शिक्षा से यह वंश पूर्णरूप से जुड़ा हुआ है।

लाला मौलिमल जी के पुत्र-परिवार में से हम मुख्यरूप से लाला दौलतराम जी का उल्लेख करना चाहते हैं क्योंकि परम पूजनीय गुरुदेव के जीवन का सम्बन्ध-सूत्र यहीं से प्रारम्भ होता है।

पिता लाला दौलतराम जी :

लाला मौलिमल जी के तीसरे पुत्र लाला दौलतराम ने रोहतक में ही रहना-सहना स्वीकार किया था। रोहतक में जन्मे जाये, शिक्षा पाई। शिक्षा का बीज जिस धरती से मनुष्य पाता है, वह धरती और जिस माँ की कुक्षि से जन्म लेकर, जिस वसुधा को व्यक्ति पहली बार स्पर्श करता है, उस धरती से मनुष्य को अनचाहा अज्ञातस्नेह हो जाता है। लाला दौलतराम जी का संस्कारित मन रोहतक की धरती के कण-कण से आत्मीय हो उठा था—उन्होने कभी नहीं सोचा-विचारा, कि मैं कहीं अन्यत्र जा कर रहूं।

लाला मौलिमल जी शिवोपासक थे। वे कहने मात्र को शिवभक्त थ, ऐसा नहीं। जैसा शिव का स्वरूप-चरित्र है, वैसे ही उनका मन भी सरल-विमल शिव-भक्त था। उनके इस शिव-भक्त मन के संस्कार-बीज लाला दौलतराम जी मे अंकुरित होकर पल्लवित हुए थे। ये नितांत सरल मन निष्ठावान् और आचार-विचार में दृढ़ और शिक्षा व सुसंस्कार के लिए समर्पित सजग-सामाजिक एवं श्रेष्ठ नागरिक की तरह जीवन मे गतिशील रहे। थोड़े ही दिनों में शिक्षा-दीक्षा से सम्पन्न हो गए। अंग्रेजी भाषा में इन्होंने अपनी निष्ठा व श्रम से विशेष योग्यता प्राप्त कर ली थी। तत्पश्चात् भारत सरकार के रेलवे विभाग में कार्यरत हो गये। वे रेलवे-मास्टर के सम्मान्यपद पर नियुक्त कर दिये थे, यह उस युग का उच्च-पद था।

शिवभक्त, पितृहृदय लाला दौलतराम जी स्वभावतः अपने लिए जितने कठोर थे, दूसरों के लिए उतने ही मृदु थे। उनकी मान्यता थी, दूसरों पर अपने विचार थोपने नहीं चाहिएं। दूसरों की अपने जीवन में जी जा रही विशेषताओं का महत्त्व तो प्रतिपादित किया जा सकता है, परन्तु सम्मुखस्थ व्यक्ति को विवश नहीं किया जा सकता। विवशता को लादना भी बल-प्रयोग है। और बल-प्रयोग आचार की कोटि में कभी परिगणित नहीं होता, वह अत्याचार है।

अत. दौलतराम जी न अति आचार के पक्षपाती थे, न विवशता के पक्षकार। वे मात्र अपनी बात कहते थे। जो अन्दर से, मन से उनकी बात को पकड़ता था, वह स्वतः उन जैसा दृढ़ आचारवान् बन जाता था।

लाला दौलतराम जी का युग, कल्पना कीजिए, आज से लगभग नौ दशक पूर्व का युग! नव्वे-वर्ष पूर्व, मैट्रिक पास कर लेना बहुत बड़ी उपलब्धि मानी जाती थी। दौलतराम जी ने अपनी मेहनत और लगन के बल पर मैट्रिक तक अध्ययन किया था। इसके उपरांत उन्होंने रेलवे मे सर्विस की। उनके सत्य-निष्ठ संस्कारी मन ने पूर्ण ईमानदारी से सर्विस की। कालान्तर में उन्होंने सर्विस छोड़ कर, घी की दुकान कर ली। अंग्रेजी का अच्छा ज्ञान और अभ्यास था। इन्होंने व्यापार में सत्य और ईमानदारी को अपना मूलमंत्र बनाया।

इनके जीवन में एक आनन्ददायक तत्व यह था—कि ईमानदारी मात्र धनोपार्जन का आधार नही थी।

लाला दौलतराम जी का विवाह धर्मशीला पिस्तोदेवी के साथ सम्पन्न हुआ। धर्मशीला पिस्तोदेवी का वंश-परिवार भी मूलतः महम (हरियाणा) का निवासी था। कालान्तर में वह हांसी में रहने लगा था। लाला दौलतराम जी को अक्षय संबल के रूप में श्रीमती पिस्तो देवी का साथ, जीवन भर के लिए जीवन-संगिनी के रूप में प्राप्त हुआ।

माता श्रीमती पिस्तो देवी :-

ये अत्यन्त विनम्र, श्रद्धाशीला, तपस्विनी, पूजा-पाठ, उपासना भक्ति में अहर्निश लगी रहती थी। सांसारिक दायित्वों को वहन करते, स्वास्थ्य अनुकूल-प्रतिकूल रहते हुए भी धार्मिक पूजा-पाठ, उपासना में व्यवधान नहीं आने देती थीं। इसके अतिरिक्त सबसे बड़ी विशेषता उस सन्नारी में थी—उदार मातृत्व की। संसार में पुत्र के लिए तो सभी माताएं उदार होती ही हैं, परन्तु श्रीमती पिस्तो देवी का मातृत्व मात्र अपने पुत्रों-पुत्रियों के लिए ही नहीं आस-पड़ोस के अन्य पुत्र-पुत्रियों के लिए भी वैसा ही बरसता था, जैसा अपनों के लिए। यही कारण है, कि पिस्तोदेवी को पूरा बाबरा मोहल्ला ही मां जी के प्रिय संबोधन से पुकारता था। उनका मां जी का संबोधन इतना जन-प्रिय हो गया था, कि उनकी समवयस्क महिलाएं भी उन्हें मां जी पुकार कर कहने में अपना गौरव समझती थी।

अनेक प्रसंगों में पिस्तोदेवी कहा करती थी, मैं बच्चों के लिए मां जी हूं या तुम सबके लिए भी ? महिलाएं उन्हें कहतीं आपका व्यक्तित्व आपकी उदारता और आपकी महानता मां जी शब्द कहे बिना प्रकट ही नहीं हो पाती। हम लाख चेष्टा करें और सोचें, कहने-बोलने का प्रयास भी करें तब भी हमारे मुंह से दूसरा शब्द अनचाहे भी नहीं बोला जाता है। इसलिए बिना याद रखा, बिना प्रयास वाला प्रिय शब्द 'मां जी' कहना ही हमें रुचिकर लगता है। हम क्या करें ?

+ + +

कालांतर में श्री दौलतराम जी के घर दो पुत्र और एक पुत्री—इस प्रकार तीन संतानें हुईं। क्रमश: तीनों के नाम हैं—श्री मातादीन, श्री रामकृष्ण और श्री कृष्णा देवी। श्री मातादीन का परिवार रोहतक शहर में सानन्द निवास कर रहा है। कृष्णा देवी चंडीगढ़ में सपरिवार रह रही हैं।

परम पूजनीय गुरुदेव के जीवन के विशिष्ट प्रसंगों का उल्लेख करने से पूर्व उनके जन्म और बाल्यकाल के जीवन बिन्दुओं को छूते और अनुभव करते हुए आगे बढ़ना समुचित होगा।

प्रज्ञा-पुरुषोत्तम का अवतरण :

लाला दौलतराम का घर-द्वार, मोहल्ला, पड़ौस—सभी उस दिन खुशियों से भर गया, जिस दिन (विक्रम संवत् 1970 श्रावण कृष्ण 30) गौरवर्ण चन्द्ररश्मि छिटकता देवकुमार जन्मा था। गली/पड़ोस और मोहल्ले में सभी जगह एक ही चर्चा थी—निर्मल-मन लाला दौलतराम जी के घर पुत्र क्या जन्मा। स्वर्ग से देवकुमार उतर आया है। कैसा दिव्य भव्य रूप है ? पूरा बावरा मोहल्ला लाला दौलतराम जी के पुत्र की महीनों चर्चा करता रहा। गली-मोहल्ले व पास-पड़ौस का महिलायें अहोभाग्य से भर गई। उनका मातृत्व ललक उठा—एक बार तो श्रीमती पिस्तोदेवी के लाल को गोद में खिलाने के लिए।

भारतीय-परम्परा में जब से नामकरण संस्कार का आविर्भाव हुआ है, तभी से यह धारणा भी समानांतर चली आ रही है, कि नाम यूं ही बिना सोचे-विचारे या प्रारब्ध की गन्ध सौरभ के अनुभव के बिना नहीं रखा जाता। नाम मे गुण और गुण में गंध-सौरभ का सम्मिश्रण न हो वह नाम, नाम नहीं अनाम है।

तो लाला दौलतराम जी के घर जन्मे देवकुमार बालक का नाम रखा गया रामकृष्ण। राम और कृष्ण दोनों का एकीकरण। विलक्षण संयोग है। मर्यादा और योग के अद्‌भुत सम्मिलन का नाम ही राम-कृष्ण है। राम मर्यादा पुरुषोत्तम थे, तो कृष्ण स्थिप्रज्ञता के मंत्र-दाता। शिव-भक्त दौलतराम और राम, कृष्ण की उपासिका पिस्तो देवी—पुरुष और प्रकृति की अद्‌भुत युति। माता और पिता दोनों ने एक-मत से अपने घर जन्मे पुत्र का नाम रखा—रामकृष्ण !

रामकृष्ण नामकरण करते-करते ही माता और पिता दोनो के मन-मानस में भारत के दो धर्मावतार पुरुषों का युगपद ध्यान आना भी अपने-आप में एक विलक्षणता थी। राम और कृष्ण में आस्था का अवतरण माता-पिता के मानस में हुआ। दोनों ने उसे अपने अन्तर में केन्द्रित किया जिसकी निष्पत्ति हुई—प्रज्ञा-पुरुषोत्तम मुनि श्री राम-कृष्ण जी म०।

प्रज्ञा-पुरुषोत्तम मुनि रामकृष्ण

पाठकों को यह बताया जाये, कि रामकृष्ण जी का लालन-पालन हुआ, तो पाठक चुपचाप सोच रहे होंगे, यह भी कोई बताने की बात है। घर जन्मे बालक का लालन-पालन तो होगा ही। ठीक है, ऐसा तो होना ही था, सो हुआ। उल्लेखनीय यह है, कि माता-पिता के दायित्वों से संरक्षित होकर रामकृष्ण जी बचपन की चौखट उलांघने लगे तभी इन्हें शिक्षा-ग्रहण करवाने का माता-पिता के मन-मानस में लम्बा मंथन चला। किस प्रकार की शिक्षा इनके मानस को सुसंस्कृत बना पाएगी आदि प्रश्नों पर उनका चिन्तन होता रहता था।

संसार में सारा महत्त्व शक्ति-बीज का है। गुरुदेव मुनि श्री रामकृष्ण जी म० को अंकित करते हुए, मैं अपने पाठकों को यह भी बताना चाहता हूं, कि बीज बड़ी चीज है। बीज ही भूमा बने वृक्ष का मूल स्वरूप है। बीज रूप में रहा, मूल स्वरूप जो पृथ्वी पर छा सकता है, वह बीजत्वेन भावी स्वरूप की दृष्टि से मूलतः विद्यमान होता है। समय के साथ-साथ बीज धरती से बाहर आंखे खोलता है। जगत् निरीक्षक उसे अंकुरण कहता है। छोटे-छोटे किसलयों से वह अंकुरण आगे बढ़ता है, तो निरीक्षक कहता है, यह पौदा बन चुका है एक दिन उसी बीज रूप वृक्ष में ही पौदे के बाद शाखा और वृक्ष! वृक्ष भी शाखा-प्रशाखाओं में बंटता हुआ महावृक्ष बन जाता है।

तो मूल बात है बीज की। बीज-शक्ति संयुक्त है, तो निश्चय ही वह वृक्ष के आकार-प्रकार में ढलेगा, बढ़ेगा ही।

आराध्य गुरुदेव जब माता-पिता-द्वारा स्थापित नाम-मात्र रामकृष्ण थे, तो पाठकों को हम घटना-सूत्र में पिरोते हुए, यह कहते चलना चाहते हैं, कि उनके अन्तर में चिन्तन-बीज कैसे अंकुरण की ओर अग्रसर होता है।

दीपावली के देवी देवता :

दीपावली का त्योहार पूरे भारत की संस्कृति का प्रतिनिधित्व करता है। वह पूरे भारत में बड़े उल्लास के साथ मनाया जाता है। खाने-पीने, घर-भर की सजावट के साथ-

साथ इस दिन मिट्टी के बने नाना प्रकार के खिलौने और देवी-देवताओं की मूर्तियां भी घरों में लायी जाती हैं। रामकृष्ण जी के घर भी मिट्टी की मूर्तियाँ आईं। हर साल ही आती थीं। रामकृष्ण जी यह भी देखते थे, कि त्योहार पर नई मूर्तियाँ आती हैं और पुरानी मूर्तियों को पानी में विसर्जित कर दिया जाता। रामकृष्ण का चिंतन जागृत हुआ—संसार में जो कुछ हो रहा है, वह सब अपने-आप में बड़ा ही विचित्र है। त्योहार खुशियाँ बखेरता आता है। त्योहार बीत जाता हैं तो लगता है वह निर्माण के साथ ही ध्वंस या विनाश का धुंआ भी छोड़ जाता है।

प्रकाश पर्व—दीपावली के अवसर पर हर घर में नई-नई देव-मूर्तियाँ आती हैं। पर त्योहार के बाद उन आराध्य मूर्तियों को विसर्जित क्यों कर दिया जाता है? जिनकी कल ही हमने पूजा की थी, मस्तक झुकाया था आज उन्हीं मूर्तियों को पानी में, बिना किसी खेद की अनुभूति के क्यों विसर्जित कर दिया जाता है?

या तो हम कल जो कर रहे थे, हमने जो कल पूजा की थी, वह ग़लत थी बिना आधार की बात थी या आज जो कर रहे हैं, मूर्तियाँ पानी में डुबा दी जा रही हैं—यह ग़लत है।

दोनों में से कहीं एक स्थान पर भूल अवश्य है। यदि भूल न होती, तो इतने उत्साह, लगन और आत्मीयता व पूज्य-भाव से पूजित की जाने वाली मूर्ति को क्यों विर्साजित कर दिया जाता है? विसर्जन नदी में हो या कूप, ताल में—है तो आराध्य का विलय ही। यह भी कोई प्रथा है, एक दिन इतने उत्साह और उल्लास में भर कर देव-मूर्ति को लाया जाता है। अनेक प्रकार के विधि-निषेधों और वर्जनाओं की चार दीवारी में खड़े होकर आराध्य मूर्ति को मान दिया जाता है, श्रद्धा अर्पित की जाती है, उसी मूर्ति को अगले दिन जल में ऐसे विसर्जित कर दिया जाता है जैसे इससे हमारा दूर का भी सम्बन्ध था ही नही। मानो फेंक दिए जाने के लिए ही लाई गई थीं।

प्रश्न जब समाधान के साचे में नहीं ढलता है, तो वह यूं ही समाधान रहित प्रश्न न जाने किस तरफ झुक कर समाधान का

प्रज्ञा-पुरुषोत्तम मुनि रामकृष्ण

किनारा पाने के लिए झुक जाए, नही कहा जा सकता है। आराध्य गुरुदेव श्री रामकृष्ण जी म० तत्कालीन बालक रामकृष्ण के मन मे अंकुरित प्रश्न भी समाधान का सम्बल पाने के लिए वैसा-का-वैसा ही समुत्सुक बना रहा करता।

ध्रुव बालक रामकृष्ण :

रामकृष्ण तब बालक थे। शब्दों को सुनते। शब्दों को बोलते और शब्दों को सीधे-सीधे अर्थों में समझते थे। एक दिन अमरवत्सला माँ पिस्तो देवी घर में स्थापित कृष्णमूर्ति की पूजा-आरती कर रही थी। बालक रामकृष्ण आए। मा को कृष्ण-मूर्ति के सामने खड़ा पाया तो अवाक्, स्तब्ध हो देखते रहे। पूजा हो चुकी तो पूछा माँ से, माँ ! तुम क्या कर रही थी अभी मूर्ति के सामने खडी होकर !

—बेटा ! मैं भगवान् की आरती कर रही थी।

—आरती करने से क्या होता है माँ ?

…बेटा ! भगवान् प्रसन्न होते हैं। दर्शन देते है।

'भगवान् दर्शन देते हैं ? कब दर्शन देंगे। वे अभी कहाँ है ? भगवान् कब आयेंगे ?' मातृ देव-भावना से, अपनी पूज्य माता से बाल-सुलभ जिज्ञासा से पुत्र ने प्रश्न किए ?

माँ, बालक रामकृष्ण को कैसे समझाती, कि भगवान् कहाँ बैठे रहते है। कब आयेंगे और दर्शन देंगे। माँ ने कहा— बेटा, अभी यह सब कुछ तेरी समझ में नही आएगा, जब तू बडा हो जाएगा, तब सब समझ में आ जाएगा।

बालक रामकृष्ण सोचते रहे। बड़ा होने पर सब समझ में आएगा अभी नहीं।

'तो माँ मै बडा कब होऊंगा ?'

माँ ने पुत्र को ममता पुरस्कृत करते हुए कहा— पुत्र तुम ! बडे हो तो रहे हो। हर दिन बडे होते जा रहे हो। बडे होते-होते एक दिन तुम खूब बड़े हो जाओगे और तुम्हारी समझ में सब कुछ आ जाएगा।

और एक दिन माँ ने देखा कि रामकृष्ण भगवान् की मूर्ति के सामने हाथ जोड़े खड़ा है और कह रहा है—'भगवान् ! अब मैं बडा

हो गया हूं न ? तो अब दर्शन क्यों नहीं देते ।' माँ पहले दूर स्तब्ध खड़ी रही । न रहा गया जब माँ से, तो आगे बढ़ी और पुत्र को अंक लगा लिया । पूछा—पुत्र ! भगवान् से क्या कह रहे थे तुम ? 'मा ! मैं भगवान् से कह रहा था—अब मैं बड़ा हो गया हूं । मुझे तुम दर्शन क्यों नही देते । कितना बड़ा हो जाने पर तुम दर्शन दोगे ?' पुत्र ने वात्सल्य से भरा उत्तर दिया !

मां बोली...पुत्र ! भगवान् ऐसे दर्शन थोड़े ही देते हैं !

'माँ तुम तो कह रही थी बड़ा हो जाएगा तब सब समझ जाएगा, तभी भगवान् दर्शन भी देगें ।' पुत्र ने फिर पुनरावृत्ति में उत्तर देते हुए कहा

मां-बेटे के इस संवाद से हम-आप समझ सकते हैं, प्रज्ञा पुरुषोत्तम मुनि रामकृष्ण का मन कितना विमल और अमल रहा है, बचपन से ही । शब्दों का सीधा अर्थ ही पकड़ता रहा है— प्रारम्भ से ही । हम इसकी गवेषणा नहीं कर रहे हैं कि आगे यह संवाद किस परिणति में ढला । पर बालक की ध्रुवता कैसी निर्मल थी, यह बिचार सूत्र हमारी व्याख्या और चिन्तन का विषय है

मननशील मानस :

रामकृष्ण जब माँ पिस्तो देवी के लिए केवल बेटा रामकृष्ण थे, तब से ही चिन्तन-कण इनके मानस में कैसे संचित-संयोजित होते रहते थे ! यह अपने में महत्त्वपूर्ण है । एक बार एक प्रसंग घटित हुआ । उसे बालक रामकृष्ण के मननशील मानस ने पकड़ा और कैसे सोचा ? देखे'''मोहल्ले में एक बच्चे का अवसान हो गया । अवसान सुना । बालमन रामकृष्ण का चिन्तन करुणा से आकुल हो गया ।

माता पिस्तोदेवी भोजन लेकर बैठी । बोली—'ले बेटा ! भोजन कर ले ।' रामकृष्ण ने कहा—'मां ! मैं भोजन नहीं करुंगा ।' पहले मुझे यह बताओ—वह लड़का क्यों मर गया ?

जो मर जाता है, वह कहां जाता है ? किसी का अवसान क्यों हो जाता है ? यह रुक नहीं सकता ? न रुके, पर वह जाता कहाँ है ? जाकर भी तो कहीं ठहरता होगा ?'

माता पिस्तोदेवी क्या उत्तर दे, इन प्रश्नों का ! ये तो वे प्रश्न थे, जिनका उत्तर पाने के लिए ऋषि-मुनि अपना पूरा जीवन लगा गए ! माँ ने कहा—'बेटा ! यह भगवान् की मर्जी है !'

—क्यों है उसकी ऐसी मर्जी ? रामकृष्ण ने पूछा !

माँ बोली—'बेटा ! पहले भोजन कर ले, यह सब बाद में पूछना !' लेकिन रामकृष्ण के गले भोजन नहीं उतरा । और ये सब प्रश्न करुणा बनकर इनकी आँखों से अश्रु-धार में प्रवाहित हो गए ।

प्रज्ञा-पुरुषोत्तम मुनि रामकृष्ण

आज एक प्रश्न फिर मेरा अनुत्तरित है । जाने वाला कहां जाता है ? क्यों जाता है ? समय भी नीयत है क्या जाने का ? अगर यह सब कुछ नीयत है. तो परिताप और पश्चात्ताप के आँसू क्यों बहते हैं जाने वाले के बाद ?

शिक्षा और शिक्षा-सूत्र :

रामकृष्ण तब 5 वर्ष के थे । पिता दौलतराम जी और माता पिस्तोदेवी की सहसम्मति हुई । निर्णय हुआ, बालक रामकृष्ण को विधिवत् शाला में भेजा जाये । रामकृष्ण को शाला में शिक्षार्थ प्रवेश दिला दिया गया । प्रतिदिन पढ़ने जाने लगे । छठी कक्षा में पढ़ाई जाने वाली अंग्रेजी की पुस्तक 'किंग प्राइमर' इन्होंने पिता के निदेशन में घर पर पढ़ ही ली थी ।

नियमानुसार 5 वर्ष के बालक को अतिरिक्त योग्यता होते हुए भी प्रथम कक्षा में प्रवेश मिला था । धीरे से उत्साह में एक वर्ष पूरा हो गया । दूसरा वर्ष प्रारंभ हुआ । दूसरी कक्षा में रामकृष्ण पढ़ने लगे । दूसरी कक्षा के साथ ही उर्दू पढ़ने वाले विद्यार्थियों की कक्षा भी साथ-साथ लगती थी । अध्यापक उन्हें उर्दू पढ़ाते थे । उसका उच्चारण और अनुकरण कर रामकृष्ण ने उर्दू स्वतः पढ़नी प्रारंभ कर दी । कुछ गति उर्दू में हुई तो एक दिन पिता दौलतराम जी को उत्साह में भर कर कहा—' उर्दू लिपि इस प्रकार लिखी जाती है ।" पूछने पर पुत्र ने उर्दू विद्यार्थियों के अध्ययन और अनुकरण की बात बताई । पिता सुन कर स्तभित हो गए । सोचने लगे—रामकृष्ण कितना कुशाग्र-बुद्धि निर्मल-मन बालक है । खेल-खेल में यह कितना कुछ जगत् से ग्रहण कर लेता है । निश्चय ही यह बड़ा होकर अद्वितीय विद्वान् बनेगा ।

पिता का आशीर्वचन और पुत्र की अन्तर्जिज्ञासा अग्रपद हो रही थी। समय अतीत होता जा रहा था, कि तभी इस व्यवस्थित जीवन में एक अप्रत्याशित घटना घटी और उसने बालमन रामकृष्ण के मानस में अनंत-अनंत जिज्ञासाओं के वर्तुल खड़े कर दिए।

मातृ वियोग :

रामकृष्ण जीवन के मात्र छह वर्ष भी पूरे नहीं कर पाये थे, कि तभी अनत वत्सला माता पिस्तोदेवी अदृश्य में खो गई। रामकृष्ण का चिंता-सूत्र यहाँ व्याख्यायित हुआ। परन्तु बालमन को नहीं पता चल पाया, कि मां जो कल तक स्नेह और वात्सल्य का अमृत उंडेल दिया करती थी वह कहां चली गई? कल तक वह मेरे जीवन की सब कुछ थी और आज कुछ भी नहीं है। वह कल थी। आज नहीं है। आगे कभी नहीं होगी मेरे लिए कुछ भी। मुझे उसका स्नेह-ममता कुछ भी प्राप्त नही हो सकेगी। मैं अब आज के बाद कभी न देख सकूंगा, न पा सकूंगा।

—तो वह कल थी। आज नही है। अब के बाद कभी नही होगी। न उसकी छाया होगी, न ममता का वात्सल्यपूर्ण हाथ ही अपने सर पर अनुभव कर पाऊंगा।

पिता दौलतराम जी ने पुत्र से कहा—बेटा! तुम सोचते होगे, यह क्या हो गया है? कुछ नही हुआ है। ऐसा होना ही था किसी एक दिन, वह आज हो गया। चेतना और सवेदना जितनी तीव्र होती है कि पीड़ा भी उतनी ही तीव्र होती है। तुम अपने मन-प्राण से शिक्षा को समर्पित हो जाओ। बस तुम्हारा भविष्य शिक्षा के अनुराग से ही सुरभित, रक्षित-सुरक्षित होगा।

रामकृष्ण जी के बालमन ने किस तरह मातृवियोग की घटना को सहा होगा, नही कहा जा सकता। परन्तु अघटित घट चुका था। जो घट चुका था वह अतीत भी हो चुका था। उसे वर्तमान नही बनाया जा सकता। अब निरतर अतीत ही होता चला जाएगा, ऐसी ध्रुवता की अमिट रेखा इनके मन-मस्तिष्क मे उभर आई थी। यह रेखा, जैसे-जैसे समय सरकता गया, और भी प्रगाढ़ होती चली गई।

पिता दौलतराम जी ने अपने स्नेह से इन्हें मातृत्व-स्मृति विस्मृत करा दी। उनके मानस में भी पीड़ा और वेदना था, परन्तु वे किसे कहते ? उनके सहिष्णु मन ने तो समाधान का संबल थाम लिया कि, यह असह्य/सह्य वेदना अब मात्र सहने के लिए है, किसी से कुछ कहने के लिए नहीं है। कहने से पीड़ा जीर्ण नहीं होती। पीड़ा को निर्बीज बनाने के लिए सहना ही एक आधार है। कहने से पीड़ा सजीव होती है, सहने से निर्बीज होती है।

पुत्रों या बेटों को कहते, सुनाते तब भी अंततः सहना ही तो पड़ता। फिर बालमन तो कहे को अपने ढंग से सुनते-समझते। उनका मन निरंतर परिताप में ही डूबा रहता। दुःख या वियोग से उबरने का रास्ता सिसकियां भरना तो नहीं है। सिसकियों का ठहराव ही निश्चित और व्यवस्थित जीवन का आधार है।

इसी आधार को सम्बल मानकर दौलतराम जी ने अपनी संतति को शिक्षा-दीक्षा से पूर्ण करने का व्रत लिया।

दौलतराम जी ने अपने मन को समाधान की रज्जू में बांधा और बच्चों में शिक्षा के प्रति रुचि उत्पन्न की। परिणामतः रामकृष्ण जी अपने पिता के निरंतर सेवासान्निध्य में रहने, सहने लगे। पढ़ना, खेलना और शेष समय में पिता जी से लौकिक और अलौकिक सभी प्रकार के प्रश्न पूछते हुए ये आगे बढ़ने लगे। इस प्रकार धीरे-धीरे ज्ञानार्जन करते रहे। पर जो पूछा और जाना, उससे इनका स्वगत चिंतन अधिकाधिक सम्पन्न तथा समृद्ध हुआ।

करुणा-विगलित मन :

रामकृष्ण जी तब तीसरी कक्षा में पढ़ते थे। इनका एक मित्र था। वह ईसाई था। दोनों में गहन मैत्री थी। एक दिन शाला में पढ़ते हुए सियाही खत्म हो गई। दोनों मित्र अध्यापक से अनुमति लेकर सियाही लेने चले। रोहतक के बड़े बाजार में बरकत मुसलमान की स्टेशनरी की दुकान थी। मित्र से कहा—छोटे रास्ते से चलना। छोटे रास्ते से चल पड़े, जो स्कूल के पास से जाता था छोटा रास्ता। दोनों एक गली में से होकर जा रहे थे। गली में कसाइयों की दो तीन दुकानें थीं।

कसाइयों की दुकान के सामने से निकले थे, कि रामकृष्ण जी का मन खिन्न हो उठा। पशुओं को मारकर कसाइयों ने अपनी दुकानों पर माँस लटका रखा था। जैसा आमतौर पर होता है। इनका मन करुणा से भर गया। अपार पीड़ा की अनुभूति की इनके संस्कारी मन ने। पर अब क्या हो सकता था? मित्र के कहने से छोटा रास्ता लिया था।

इन्होंने अपनी पीड़ा को इन शब्दों में पिरोया और मित्र से बोले—"तुम मुझे ऐसे रास्ते से क्यों लाए?"

मित्र बोला—"मुझे नहीं मालूम था, कि तुम इतने संवेदनशील हो। तुम्हें यह दृश्य देखकर पीड़ा हुई, अब ऐसा नहीं होगा। दोबारा कभी इस रास्ते से नहीं गुज़रेंगे।"

मित्रों की बातें तो यूं पूरी हो गईं। किन्तु इस वीभत्स दृश्य का इनके मन पर बड़ा गहरा असर पड़ा। शाम को घर लौटे। तब भी वही दृश्य इनके मस्तिष्क में तैरता रहा। भोजन का समय हुआ, तो उस दिन भोजन भी ग्लानि से नहीं किया जा सका।

संस्कार कण :

संस्कार अंतर्जागृति या अन्तर्चेतना की ज्योति है। संस्कार की ज्योति का प्रकाश व्यक्ति में, दूध में श्वेतिमा की तरह, घुला-मिला होता है।

रामकृष्ण जी तब छठी कक्षा के विद्यार्थी थे। छठी कक्षा की इतिहास की पुस्तक में कोल-द्रविड़ों का सचित्र इतिहास था। चित्रों में देव-प्रतिमाओं की मूर्तियां देख-देख कर ये उनपर मुग्ध हो जाते। घर पर आते, तो हर्षित मन से परिचितों को दिखाते। भावविभोर होते और उनकी विशेषता का वर्णन करते।

एक दिन पुस्तक-गत देव-मूर्ति को निर्निमेष देख रहे थे, तभी पिता जी आ गए। उन्होंने देखा तो कुछ सोचते से रह गए। रामकृष्ण जी से पूछा, तो गद्‌गद् होकर बोले—'पिताजी! इन देव प्रतिमाओं को देखकर मेरा अंतर पूजा, उपासना के लिए उत्सुक हो आता है।' पिता ने सुना तो स्नेह से पुत्र को अंक लगा लिया, बोले—'बेटा! ऐसे भावों का जन्म सहज ही नहीं होता। ये तुम्हारे मंगल संस्कारों की प्रेरणा की अभिव्यक्ति है। तुम्हारी मां भी घर में चित्रालय रखा करती थीं। उसे मंदिर जाने का समय नहीं होता था, तो घर में ही उपासना किया करती थी।'

मित्रों के मित्र :

रामकृष्ण पिता के आदेश निर्देशों में चलते परम उदार और सहृदय हो चले थे। निर्धन विद्यार्थी इनका अधिक गहरा मित्र होता था। कारण था—संस्कारों ने इन्हे इतना सवेदनशील बना दिया था कि साधारण स्थिति के विद्यार्थी इनके अधिकाधिक आत्मीय हो जाते थे। ये उन विद्यार्थियों की कुशल पृच्छा करते। अभावग्रस्त छात्र को अपने जेब-खर्च की कटोती कर उसकी पूर्ति करते थे।

सम्पन्न परिवार के दादा टाइप विद्यार्थी, सामान्य ग़रीब विद्यार्थियों को तरह-तरह से पीड़ा देते थे। इन्हे जब भी पता चलता तो इनकी सहानुभूति सदा गरीब विद्यार्थियों के पक्ष में होती थी। मन के छोटे छात्र चाहे धन की दृष्टि से सम्पन्न हों—वे गरीब छात्रों को तरह-तरह से तंग करते त्रास पहुंचाते। रामकृष्ण जी थे कि इनका समर्थन गरीब छात्रों को प्राप्त होता था। यही कारण था कि रामकृष्ण सब विद्यार्थियों प्रिय थे। नाम के अनुभव ही इन्हे विद्यार्थी रामकृष्ण मूर्ति कहते थे।

मैत्री क्यों टूटी :

रामकृष्ण जी का विद्यार्थी काल था। एक सम्पन्न घर के विद्यार्थी ने रामकृष्ण जी से कहा—चलो बाजार चलते हैं, मिठाई उड़ाएंगे। इन्होंने कहा—मेरे पास आज पैसे नही है। खर्च हो गए। मैं नहीं जाऊंगा। वह बोला तुम्हारे पास नही है तो क्या हुआ। तुम मेरे साथ चलो तो। आज पेट भर मिठाई खाएंगे।

रामकृष्ण जी उसके साथ तो चल दिए। परन्तु मन ही मन सोचते रहे। आज यह इतना उदार कैसे हो गया है। साथ ही यह भी कह रहा है कि भरपेट मिठाई खायेंगे।

रामकृष्ण बोले—आज इतने अधिक पैसे कहां से पा गए हो ? जो तुम स्वयं भी उन पैसों से मिठाई खाना चाहते हो और मुझे भी कह रहे हो कि भरपेट मिठाई खिलाऊंगा।

'अरे ! बस यही मत पूछो कि कहासे आए। आते कहां से ? आज पिताजी कही चले गए थे, सुबह ही सुबह। उनकी अलमारी में

ताला यों ही लटका था। मैंने चुपके से अलमारी से पैसे उड़ा लिए हैं।

रामकृष्ण गुस्से में भरकर बोले—दोस्त! तुम चोरी भी करते हो! ये पैसे तुम पिता जी की अलमारी से चुरा कर लाए हो? इन पैसों की मुझे मिठाई खिलाना चाहते हो? मैं ऐसा नही करुंगा।

रामकृष्ण उल्टे पैर लौट चले। लौटते हुए निमिष भर को रुके और मित्र को आगाह किया—"आज से तुम मेरे दोस्त नहीं हो। मैं ऐसे लड़के से दोस्ती नही रखता जो चुराए हुए पैसों से दोस्तों को मिठाई खिलाना चाहता हो।" —इस प्रसंग विशेष में ज्ञातव्य यह है कि उक्त विद्यार्थी आज भी वर्तमान है। जब रामकृष्ण जी मुनि रामकृष्ण बन गए तो वह भी बड़ा हो गया था। वह आया। इनके चरण भेंटे और बोला विद्यार्थी काल में तो मुझ से दोस्ती तोड़ दी थी। पर इस समय तो मैं आपका शिष्य हूं। अब तो रुष्ट नहीं हो न मुनि प्रवर?

अनूठा भ्रातृ-भाव:

पाठकों को याद होगा? रामकृष्ण जी के बड़े भाई थे—मातादीन! लाला दौलतराम जी के दो पुत्र मातादीन और रामकृष्ण दोनों में अनूठा स्नेह था। आदर्श भ्रातृप्रेम का प्रसंग उपस्थित होने पर सीधे राम-लक्ष्मण, भरत-शत्रुघ्न, लव-कुश की तलाश की जाती है। मातादीन और रामकृष्ण के इस प्रसंग को भी इसी संदर्भ में पढ़ देखिए!

मातादीन और रामकृष्ण खेल रहे थ। खेल की मस्ती में घर की कई चीजें टूट गईं। पिता बाहर से लौटे। घर में टूट-फूट का दृष्य देखा तो रुष्ट होना स्वाभाविक ही था। मातादीन सामने पड़ गए उन्हें खूब डांट पिलाई। मातादीन की चुप्पी ने वातावरण में और भी तेजी ला दी। पिताजी ने मातादीन को एक तमाचा जड़ दिया।

कमरे में रहे रामकृष्ण यह सब सुन रहे थे। उन्होने सोचा—इस के लिए अकेले मातादीन ही तो जिम्मेदार नहीं है। मैं भी तो था सब मातादीन पर ही डांट क्यों पड़े?

रामकृष्ण तभी कमरे से निकल चौक में आये। बोले—यह फूट-फूट और बखेर मैंने भी की है। पिता का आवेश अभी शांत नहीं हो पाया था। उन्होंने रामकृष्ण को भी खूब धमाका दिया।

धमका तो उन्होंने भावावेश में दिया परंतु तभी उनका पितृत्व हृदय सोचने लगा—दौलतराम ! तुमने बहुत बड़ी गलती कर डाली। रामकृष्ण ने तो सच बोला था। उसने तो अपना दोष स्वीकार कर लिया था। उसे डांटना नहीं चाहिए था। सच बोलने पर हुई मेरी भूल मुझे परिताप देगी। सत्य का पुरस्कार रामकृष्ण को डांट नहीं प्यार या आर्शीवाद मिलना था। आज रामकृष्ण चाहे मेरे इस कृत्य पर विचार न करे किन्तु जिस दिन इसकी चेतना में चिंतन-सूर्य उदित होगा उस दिन यह सोचेगा सत्य बोलने से मनुष्य को जो प्राप्त होता है वह इतना आधारहीन और तुच्छ है कि हम उसके प्रति निष्ठा रख कर कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकते।

पिता का हृदय वैचारिक स्तर पर उन्हें कचोटने लगा तो स्नेह में भर कर दौलतराम जी ने रामकृष्ण से कहा—डांट तो बहुत हो चुकी। लो ! तुम्हें पैसे देता हूं। जाओ ! बाजार में और मन चाहा खा-पी आओ।

रामकृष्ण बोले—'पिताजी ! मुझे पैसे मत दीजिए। भाई मातादीन को दीजिए। बड़े भाई का मान बड़ी बात होती है।' मातादीन को पैसे मिले। रामकृष्ण और मातादीन बाजार गए। मनचाही वस्तु ले आए।

कैप्टन रामकृष्ण :

रामकृष्ण जी का 5 वर्ष से मैट्रिक तक अध्ययन का पूरा समय, पिता के कुशल नेतृत्व में बीता था। पढ़ते-गुनते हुए भी इनके चिंतन में ठहराव था। अध्ययन करते होते तो अध्ययन की बात सोचते। खेल के मैदान में होते तो उस समय खेल के बारे में ही पूरा चिन्तन-केन्द्र खेल और उसके सभी पक्षों पर होता था।

वैश्य हाई स्कूल में इनका खेल के क्षेत्र में नाम था। साथी लोग भी इन्हें श्रेष्ठ खिलाड़ी के रूप में मानते थे। इनके दो प्रिय खेल थे—

हाकी और क्रिकेट । खेल के प्रति तत्परता चुस्ती-फुर्ती को देख कर वैश्य हाई स्कूल का इन्हें हाकी टीम का कैप्टन चुन लिया था ।

एक बार स्कूलों के पारस्परिक खेल हुए । दूसरे स्कूलों के अनेक विद्यार्थी उपस्थित हुए । अनेक प्रकार के खेल संयोजित होते जा रहे थे । हाकी टीम की बारी आई । जाट स्कूल और वैश्य स्कूल का मुकाबला था । जाट स्कूल के खिलाड़ी लड़के बड़े तो थे ही देखने में, बलिष्ठ भी थे । जाट स्कूल के खिलाड़ी वैश्य स्कूल की टीम को, बनियों को टीम कह कर खिल्ली उड़ा रहे थे । समय साध कर धीरे से धमकी भी दे देते थे—आओ मैदान में कैसी धुनाई होती है ।

खेल-शिक्षक ने कैप्टन रामकृष्ण को बुलाया । पूछा—बोलो क्या कहते हो, हाकी खेल के मैदान में मुकाबला कर पाओगे ?

कैप्टन रामकृष्ण बोले -सर ! आप शायद भय अनुभव कर रहे हैं । खेल में बल उतना काम नहीं करता जितना ट्रिक से काम निकलता है । साहस और ट्रिक इन दोनों के बल-बूते पर ही खेल की हार-जीत निर्भर है । जाट स्कूल के लड़कों की बड़ी उम्र मेरी ट्रिक के हौसले पस्त नहीं कर सकती । खेल शिक्षक ने कैप्टन रामकृष्ण के बुलन्द हौसले को दाद दी ।

दोनों टीमें मैदान में उतरीं । डट कर मुकाबला हुआ । अंत में कैप्टन रामकृष्ण की टीम ही विजयी हुई । शील्ड जीती । प्रधानाध्यापक को कैप्टन रामकृष्ण ने शील्ड जीत कर दी तो अध्यापक गद्‌गद हो गए । फिर तो इस टीम और कैप्टन पर पुरस्कारों की बौछावर ही होनी प्रारम्भ हो गई ।

कैप्टन रामकृष्ण की टीम की जीत वर्षों तक चर्चा का विषय रही । पुरानी पीढ़ी के अनुभवी अध्यापक एवं तत्कालीन सहपाठी आज भी वैश्य स्कूल के कैप्टन रामकृष्ण की चर्चा करते हैं । कहते हैं—जाट स्कूल के बड़े-बड़े खिलाड़ियों की टीम को कैप्टन रामकृष्ण की टीम ने हौसले से खेल कर करारी मात दी थी ।

कलाकार-अभिनेता : रामकृष्ण

'अभिनय' सभी जानते हैं—अभिनय करने वाला कलाकार, तदाकार होता है। वह अभिनेय चरित का प्रतिनिधित्व कर रहा होता है। जन-सामान्य से ऊपर अभिनेता में अतिरिक्त विशेषता होती है, इसी लिए उसे कलाकार कहा जाता है। परंतु सच्चा कलाकार या अभिनेता वह होता है जो अभिनेय चरित को अंदर मे जी लेता है। जी कर अभिनेय चरित को आत्मसात कर लेता है—तभी मंच पर वह सफल अभिनय दे पाने में समर्थ हो पाता है और तभी दर्शक दीर्घा उल्लसित मन से कलाकार को स्नेह, आदर और सौहार्द देती है।

लिखे जा रहे चरित-पुरुष प्रज्ञा-पुरुषोत्तम तब मैट्रिक में पढ़ते थे। बाबरा मोहल्ले की युवा मण्डली ने सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित किया। मंडली निर्माताओं में रामकृष्ण भी थे। अत: सभी इनके बहुमुखी व्यक्तित्व से परिचित थे। अतः इनसे कहा गया...'कर्ण नाटक' का मंडली मंचन करने जा रही है। कर्ण को पढ़ कर देख लो, तुम्हें कौन-सा पात्र पसन्द है। रामकृष्ण जी उमगित हुए। कर्ण पढ़ा और तुरन्त स्वीकृति दी—मैं 'अर्जुन' का अभिनय करूंगा।

आज से लगभग 50-60 वर्ष पूर्व जन-जीवन मे ऐतिहासिक नाटकों के प्रति निष्ठा और आस्था का प्राधान्य था। धर्म, न्याय, नीति के सांस्कृतिक, ऐतिहासिक नाटक का मंचन होगा जब यह सुना तो तत्कालीन रोहतक निवासियों का मन खुशियों में भर उछल पड़ा। उमंग व चाव में भरा रोहतक का जन-मानस कर्ण नाटक का मंचन देखने को निकल पड़ा। इसमें नगर के गणमान्य-बुद्धिजीवी से लेकर सामान्य नागरिक तक बड़ी संख्या मे उपस्थित हुए।

निश्चित समय पर अभिनय प्रारंभ हुआ। रामकृष्ण जी 'अर्जुन' की वेषभूषा में मंच पर आए। वाद, संवाद और भावाभिव्यक्ति को देख कर हजारों करतल की सामूहिक ध्वनि करता जन-मानस उछल पड़ा। जैसे-जैसे चरित उभरा वैसे-वैसे जन-समूह मंत्र-मुग्ध होता चला गया।

नाटक पूरा हुआ। पात्र परिचय होने लगा। उपस्थित जनता ज्यों की त्यों चुप बैठी रही। सब के मन में तीव्र लालसा जागी हुई थी कि

'अर्जुन' का अभिनय करने वाला कौन कलाकार है। सचमुच इसने तो कृष्ण-युग के अर्जुन को जी कर दिखा दिया है।

नाटक के मंच संयोजक एवं समीक्षक ने सभी पात्रों का क्रमशः परिचय देकर कहा—कर्ण नाटक के सफल मंचन का संपूर्ण श्रेय 'अर्जुन' का अभिनय करने वाले वैश्य स्कूल के होनहार बहुमुखी प्रतिभा-सम्पन्न छात्र रामकृष्ण को है। अतः इस नाटक का सर्वोत्कृष्ट छात्र कलाकार रामकृष्ण को घोषित किया जाता है।

छात्र की प्रतिभा अधिकाधिक उन्नत एवं विकसित हो इस शुभाशा से दर्शक-दीर्घा से कुछ नाम और कुछ अनाम रूप से इन्हें धन राशि पुरस्कार स्वरूप प्रदान की।

पात्र-परिचय समाप्त होते ही रामकृष्ण जी स्कूल वर्दी में पुनः मंच पर उपस्थित हुए। और जन-समूह के समक्ष घोषणा की—

आप लोगो ने आवश्यकता से अधिक महत्त्व दिया है। मैंने मंच पर कोई विशेष कार्य नही किया है। जिस दिन से अर्जुन का पूर्वाभ्यास प्रारम्भ हुआ था तब से अब तक मैं मात्र इतना सोचता रहा हूं—मैं अर्जुन हू। मच पर जो कुछ कहूंगा वह अर्जुन का कहा हुआ होगा, रामकृष्ण का कहा नही। बस, मैने ऐसा ही किया है और कुछ नहीं।

"आप लोगो ने जो धन-राशि अर्जुन नामक अभिनय-कर्ता को प्रदान की है, वह धन-राशि अभिनय-कर्ता वैश्य स्कूल को प्रदान करता है।"

– तो चरित-पुरुष रामकृष्ण मैट्रिक में पढ़ते समय भी वैचारिक दृष्टि से कितने सम्पन्न थे यह कर्ण नाटक के अभिनय के बाद इनके द्वारा की गई घोषणा से स्पष्ट है। सच है, जिसमे कुछ होने का उत्स होता है वह महत्वपूर्ण निर्णयों को क्षणो में कर देता है। क्षण भर मे किए निर्णय मे जो हो सकने की सम्भावना रहती है उसे ऐसे उत्स-सम्पन्न व्यक्ति लम्बा समय चिंतन-मंथन करते घुला नही देते है।

हाथ को हाथ समझता है :

मन के सोचे को आंखों ने पढ़ लिया तो सोचना व्यर्थ हो जाता है। हाथ के किए को साथ का समझ जाए तो सारा चातुर्य धूल में

मिल जाता है। उपकृत होने वाला उपकारी के कृत्य को समझ जाए तो उसका व्यक्तित्व भूमिसात हो जाता है। ऊपर का सारा कथन उलझन भरी गुत्थी लग रही है हम सबको !

यह उलझन सुलझ रही है गुरुदेव मुनि श्री रामकृष्ण जी म० की युवावस्था की इस घटना के माध्यम से।

रामकृष्ण जी का एक मित्र था। पढ़ा करता था कभी ? पढ़ाई छोड़ दी तो क्या ? मैत्री की रज्जू में बंधे थे दोनों। रामकृष्ण जी अभी पढ़ रहे थे। साथी मित्र के पिता दूर प्रदेश में सर्विस करते थे। साल में एक बार या कभी-कभी तीन-तीन वर्ष हो जाते, घर नहीं आते थे। जिस वर्ष वे घर नहीं आते थे उस वर्ष का उन्हें एक माह का अतिरिक्त वेतन मिलता था। इस वर्ष भी वे प्रदेश से नहीं आए थे। घर की कड़की ने उन्हें ऐसा करने को मजबूर कर दिया था।

रामकृष्ण का मित्र जा रहा था, अपने पिता के पास। गांव से चला सांझ ढल चुकी थी। झुटपुटा होते-होते वह रामकृष्ण जी से आ भेंटा। वार्ता हुई। मैत्री-काल की भूली-बिसरी यादें ताजा हुईं। कुछ इस ओर कुछ उस—दोनों घरों की गृह-स्थिति की भी चर्चा की गई।

स्पष्ट था—मित्र अपने पिता से मिलने और नौकरी की तलाश में जा रहा था। मित्र को बड़ी सुबह रोहतक स्टेशन से गाड़ी पकड़नी थी। रामकृष्ण जी मित्र को स्टेशन तक विदाई देने गए। समय पर गाड़ी अग्रपद हुई। रामकृष्ण अपने घर लौट आए।

मित्र को विदाई दिए चार दिन बीत चुके थे। पाँचवें दिन पोस्टमैन ने द्वार पर दस्तक दी। दरवाज़ा खोला गया तो डाकिए ने रामकृष्ण जी के हाथ मे लिफाफ़ा थमा दिया। लिफाफ़ा खोला तो लिखा गया पत्र यूं था—

मित्रवर,

तुमने रोहतक में अपने घर ठहराया। कृतज्ञ हूं। तमाम पिछली-अगली सभी स्मृतियां ताजा हुईं। दुःख और सुख बांटे से बंटता है मित्र, और गोपन करने से बढ़ता है।

मैं यहां अच्छी तरह पहुंच गया हूं। सच जानना रास्ता तुम्हारे सौहार्द और मैत्री के बारे में सोचते हुए, पलक झपकते बीत गया। जैसा मैं गाड़ी बिठाया था वैसा ही बैठा रहा। 24 घंटे बीतते-बीतते यहाँ पहुंचा। नहा-धोकर कपड़े पहनने के लिए अपना थैला संभाला तो मित्रवर, मेरे आश्चर्य का ओर-छोर न रहा। झोले/थैले में एक पाकेट निकला। इसमें 50 रुपए भी थे।

मित्र! सच कहना यह सब कैसे हो गया? मैं नहीं मानता कि तुम्हारे सिवा कोई और व्यक्ति ऐसा कर सकता है। मित्र, अब मैं प्रतिकार तो क्या कर सकता हूं। अपने घर से दूर बैठा हूं परन्तु मेरा मस्तक तुम्हारी इस उदारता को देख श्रद्धावनत है।

तुम्हारा मित्र
—मैं

रामकृष्ण जी ने पत्र पढ़ा तो कृत्य-कृत्य हुए। यह जान कर कि मित्र के झोले में रखे गए रुपए उसी को ठीक से मिल गए। प्रति-उत्तर दिया।

मित्रवर,

तुम्हारा पत्र मिला। पत्र पाकर वैसे मुझे बेहद प्रसन्नता हुई कि पाकेट तुम्हें प्राप्त हो गया परंतु इससे बेइन्ताह तकलीफ हुई कि तुमने नतमस्तकता स्वीकारी। क्या तुम मुझे नहीं जानते या मैं तुम्हें नहीं जानता? तुम्हारी परिस्थिति का मुझे परिबोध है। घर छोड़कर बाहर गए हो। पता नही कब नौकरी लगे। तब तक क्या हवा के फांके लगाओगे—यही सोचकर पिताजी की अनुमति पूर्वक मैंने तुम्हारे झोले में यह रख दिये थे।

तुम्हारे चले जाने पर पिताजी ने मुझे कहा था—जब तुम मित्र हो तो बता कर ही दे देना था उसे। चलो जैसा किया ठीक है। पर इसमें असावधानी की पूरी गुंजाइश बनी रहती है। भीड-भाड़ में थैले से कुछ निकालते रहते वे स्लिप भी तो हो सकते हैं।

तो मित्रवर, कृतज्ञता ज्ञापन करने की औपचारिता को मत छूओ। मैत्रीयथार्थ के धरातल पर ही टिकती है। औपचारिकता न दीख

सकने वाला, न छू सकने वाला क्षितिज है। मैत्री धरती मां का वह सुखद स्पर्श है जहां रहते-सहते, पढ़ते-बढ़ते और आदर्श स्थापित करते हैं हम।

तुम्हारा अपना
—मैं

—रामकृष्ण के मन में सोचे को मित्र न पढ़ पाया। रामकृष्ण के हाथ से किये को मित्र न देख पाया। रामकृष्ण के हाथ से दिये को मित्र अनुभव न कर पाया। जब अनुभव किया तो कृतज्ञता से भर गया। पर मैत्री उस अमर सत्य का नाम है जो हृदय में अंकित होकर सांसों में समा जाती है। सांस के साथ ही प्रवेश पाती है और सांसों के आखिरी टुकड़े में ही विसर्जित होती है।

एक नया मोड़ :

श्री दौलतराम जी, शिक्षा और ज्ञानार्जन के महत्व को सम्यक् प्रकार से जानते थे। उन्हें अपने पुत्र रामकृष्ण के अध्ययन काल की उपलब्धि, अभ्युदय और विचारात्मक शील सौजन्य तथा विशिष्ट-विचार पद्धति के विकास से परम संतोष था परन्तु युवावस्था के प्रस्फुटित होते-होते, रामकृष्ण के अंतरजगत् में एक क्रांति और उद्भावना जन्म ले चुकी थी। अब तक की चिन्तन पद्धति एक बालक की सोच प्रणाली थी। पिताजी की आज्ञा यहां सर्वोपरि थी।

किशोरावस्था अतीत की सलवटों में समा चुकी। यौवन का आगमन हुआ। जीवन के द्वार पर यौवन ने दस्तक दी। अंतर्चेतना ने एक नया मोड़ लिया। इस मोड़ पर ही सच पूछा जाये तो मनुष्य की जीवन-दिशा का निर्धारण होता है। यौवनागमन ही वह संधिकाल होता है जहां जीवन में किस प्रकार गतिमान होना है, इसका अंतिम और भीष्म निश्चय-निर्णय होता है।

मैट्रिक पास करते ही रामकृष्ण जी ने कह दिया—"अब मैं आगे नहीं पढ़ना चाहता। दौलतराम जी के लिए यद्यपि इस निश्चय से कोई समस्या पैदा नहीं हुई। उनके सोचने के अनुसार बालक राम-

कृष्णी अब युवा रामकृष्ण हो चुका था। वे इस निश्चय से स्तंभित हुए न आश्चर्यान्वित हुए। उन्होंने इस निश्चय श्रुति के तत्काल बाद सोचना प्रारम्भ कर दिया—"रामकृष्ण को सर्विस दिला दूं या सर्विस में रुचि न हो तो व्यवसाय में लगा दूं !"

दौलतराम जी का ऐसा सोचना रामकृष्ण जी के चिन्तन से भिन्न था। रामकृष्ण अध्ययन छोड़कर अध्ययन करना चाहते थे। शाला छोडकर शाला में प्रवेश लेना चाहते थे। अपनी अध्ययन-शाला का साक्षी या मार्गदर्शक ये स्वयं बनना चाहते थे। इसी का नाम तो यौवन है। यौवन वह आहट या आवाज़ होती है जहाँ दूसरी सब आवाज़े, पुकार समाप्त हो जाती है। यौवन की पुकार में सब पुकार तिरोहित हो जाती हैं। दूसरों की पग-ध्वनि सुनने से यौवन इंकार कर देता है।

यौवन सर्वोच्च स्थिति पर पहुचे ऋषि की वह समाधि-अवस्था है जहां ससार के सारे प्रलोभन, सारी कामनाये लुप्त हो गई होती हैं। इस अवस्था में ऋषि आत्मा की आवाज़ को सुनता है। संसार का पूरा का पूरा कोलाहल वह मन से नष्ट कर देता है। उसका मन इतना सबल हो चुका होता है कि उसकी अस्वीकृति-स्वीकृति सर्वोत्कृष्ट हो जाती है।

रामकृष्ण जी के जीवन के द्वार पर युवावस्था की ऐसी ही दस्तक थी। इन्होंने सब कुछ सुनने से इंकार कर दिया था। इस समय बचपन के सारे सस्कार-सूत्र एक-एक कर व्याख्यायित हो रहे थे। कहना चाहिए—इनके अंतर मे मनीषी, ऋषि जन्म ले चुका था। यौवन का आगमन चितनशील ऋषि बनकर आया था। संसार की आवाज को सुनने वाला किशोर मन अतीत की ओट हो गया था।

इनका ऋषि सोचता था –ईश्वर क्या है ! ईश्वर कब प्रकट होता है ! मृत्यु क्या है ? जीवन क्यों मिल गया ? मनुष्य क्यों है ? पशु की आत्मा और मनुष्य की आत्मा मे क्या अंतर है ? मनुष्य अन्य आत्माओ से क्यों श्रेष्ठ है ? मनुष्य जन्मता है और मर जाता है ; इस शाश्वत व्यवस्था के पीछे कौन-सी सत्ता काम कर रही है ?

कोई सत्ता काम कर रही है तो उसकी रचना प्रक्रिया में साम्य क्यों नहीं है ? एक सुविधा सम्पन्न है दूसरा अभाव में दग्ध क्यों हो रहा है ?

—यह सब कुछ इसी तरह कब से हो रहा है ? क्या इनमें कुछ अन्तर नहीं किया जा सकता ? इसमें एकरूपता साधी जा सकती है ? एक रूपता कौन साध सकता है ? इस व्यवस्था का ध्वंस या नवनिर्माण भी हो सकता है ? इस नवनिर्माण में क्या कोई शक्ति अवतरित होगी ?

ये और इस प्रकार की अनंत जिज्ञासाओं का जन्मोत्सव एक साथ रामकृष्ण जी के अन्तर में हुआ। दौलतराम जी के पास इन सबका समाधान नहीं था। इसी चिंतन-प्रणाली में एक समय माँ की शिक्षा भी स्मृतिस्थ हो आई— बेटा, तू बड़ा हो जाएगा तब तुझे सब कुछ समझ आ जाएगा। इन्होंने अदृश्य मां के सामने अदृश्य भित्ति पर एक प्रश्नावली लिखकर टांक दी—मां ! तुमने कहा था बड़ा होने पर तुझे सब कुछ समझ में आ जाएगा। पर मां, अब तो मैं बड़ा हो गया हूं, अब तक मेरी समझ में तुम्हारा समाधान नहीं उतरा है।

मृत्यु, वैराग्य की जननी :

भारत ऋषि-मुनियों का केन्द्र है। भारत के ऋषि जो पा सके, दूसरी धरती के मनीषी वह अब तक नहीं प्राप्त कर सके। क्यों ? भारत का ऋषि आत्मा की आवाज को सुनता है। उस आवाज़ को पकड़ता है। उसी को पाता है। आत्मा की आवाज़ को सुनकर वह जिस ओर अग्रपद होता है, उस तरफ जितने विघ्न या बाधाएं उत्पन्न होती हैं उन्हें वह ठुकरा देता है ! आवाज़ को पकड़ना उसका काव्य होता है।

दौलतराम जी के सामने विकट समस्या थी। रामकृष्ण न जाने क्या सोचता रहता है। न जाने क्यों यह बोलते-बोलते चुप हो गया है। चलते-चलते क्यों रुक गया है ? क्या खो गया है ? जिसे आंख गढ़ाकर एक ही जगह तलाश रहा है। यह पहले वाद-प्रतिवाद भी

करता था। अब यह वाद-प्रतिवादों से मुक्त हो चुका है। कुछ पूछो तो चुप। कुछ करने को कहो तो चुप। पता नहीं इसकी इस चुप में क्या उभर आया है। यह क्या पाना चाहता है या क्या पा चुका है कि और पाने या करने को सब उत्तर इसके मौन हैं।

रामकृष्ण जी को रुचि रह गई थी आत्मा-परमात्मा, लोक-परलोक देह-देही की चर्चा में। अंतर में अनंत-अनंत प्रश्न उभरते। प्रश्नों के समाधान का धूमिल-सा रास्ता दिखाई देता था—वह था संत महात्माओं के प्रवचन-सत्संग। जहां-तहां होते कीर्तन-संकीर्तन इन्हें आकर्षित करते। उधर तुरन्त ये उमंगित होकर बढ़ते। परन्तु इनकी जिज्ञासाओं को क्षणिक समाधान मिलता था तभी ये पुनः अपनी 'मौन' दुनिया में स्थिर हो जाते।

पिता दौलतराम जी सोचते ही रहते—"पता नही रामकृष्ण को किसने विमुख कर दिया है क्यों यह मौन रहने लगा है।"

+ + +

विवाह होना आवश्यक है या, अनावश्यक है ? इस पर रामकृष्ण ने क्षणभर भी खड़े होकर नही सोचा था कभी। यौवन के आगमन ने इन्हें गहरा चितक बना दिया था। मार्गदर्शक न मिलने के कारण इनका चितन स्थितिप्रज्ञता की कोटि मे न पहुंच सका था।

पिता दौलतराम ने रामकृष्ण की मनःस्थिति पर अपने हितैषी और मित्रों से प्रसंग उपस्थित कर मंत्रणा की। रामकृष्ण को किस प्रकार सामान्य स्थिति में लाया जाए। मित्रों की मंत्रणा उन्हें समझ आई। स्वय की भी हितैषियों की भी सुझाई राह पसन्द आई। उन्होंने शीघ्रातिशीघ्र रामकृष्ण का विवाह कर देने का निश्चय कर लिया।

रामकृष्ण को चूंकि कोई मार्गदर्शक गुरु तब तक न मिल पाए थे। अतः इनकी इच्छा न होते हुए भी इनका विवाह कर दिया गया।

दौलतराम जी ने निश्चितता का अनुभव किया कि अब पुत्र रामकृष्ण गृही-व्यवस्था में रुचि लेगा। अपने दायित्व को धीरे-धीरे समझेगा। परन्तु उन्हें यह पता नहीं था कि विवाह ही रामकृष्ण के अंतर्घट में निर्वेद भर देगा।

दो वर्ष के स्वल्प समय में ही जीवन-संगिनी, रामकृष्ण के महाभिनिष्क्रमण पथ से दूर हट गई। पत्नि का स्वर्गस्थ हो जाना था कि रामकृष्ण के जीवन में वैराग्य का दिव्य द्वार उद्घाटित हो गया।

पिता ने दोबारा विवाह रचाने का जी तोड़ प्रयास किया किंतु रामकृष्ण के निर्वेद में डूबे विचारों ने उन्हें आगे नहीं बढ़ने दिया। और एक दिन कहा—पिता जी! विवाह क्या है? संगिनी क्यों आवश्यक, अनावश्यक है? इस पर मुझे सोचने का अवसर दिया होता। आपने शीघ्रता में वह रच डाला परन्तु दोबारा ऐसी भूल को दोहराने का प्रयास व्यर्थ है।

विवाह आप की दृष्टि में बहुत कुछ हो सकता है परन्तु मैं इसे बालू के ढेर पर खड़े किये गये भवन से अधिक कुछ नहीं मानता।

विदेश निमंत्रण :

पिता श्री दौलतराम जी के एक विदेशी मित्र थे। तब ब्रिटिश शासनकाल था। दोनों की मैत्री ब्रिटिश शासन के कारण जुड़ी थी। एक अंग्रेज महोदय रेलवे विभाग में उच्चाधिकारी थे। तब इन दोनों की मैत्री जुड़ी थी और अभिन्न मित्रों के रूप में परिणत हो गई थी। लाला दौलतराम जी भी तब रेलवे में सर्विस कर थे। अंग्रेजीयत मैत्री के नीचे दब गई। विधि-संयोग ऐसा बना अंग्रेज मित्र को स्वदेश जाना पड़ा। दोनों में पत्राचार होता रहा।

एक बार श्री दौलतराम जी ने अपने अंग्रेज मित्र को पत्र लिखा। उसमे उन्होंने रामकृष्ण जी की मनः स्थिति, वैराग्य, संसार से अन्यमनस्कता का जिक्र किया। पत्र का उत्तर इसी तरह आया—

मित्रवर !

तुम वहां हो और मैं यहां । भौगोलिक दूरियाँ कितनी ही क्यों न हो जाएं । भौगोलिक दूरी बढ़कर और भी आगे से आगे पहुंच जावें किंतु हम दोनों के हृदय की धड़कनें एक साथ जुड़ चुकी हैं । सच मानना तुम पर किसी प्रकार का कष्ट आता है तो उसका प्रतिबिम्ब यहां ब्रिटेन में—मेरे दिल में आईने दिखाई देता है । तुम्हें भी ऐसा ही प्रतिभासित होता होगा ?

तुम रामकृष्ण को लेकर चिंचित हो । किन्तु खिन्नता क्यों अनुभव करते हो...?

तुम रामकृष्ण को यहां बर्मिंघम सिटी (ब्रिटेन) में मेरे पास भेज दो । कभी-कभी देश-विदेश भ्रमण भी इन्सान का मन बदल देने में कारगर सिद्ध होते हैं ! और उसका मन हुआ तो कार्य भी मैं यहां पर ही सट करवा दूंगा ।

तुम स्वस्थ सानन्द रहो ! 'गॉड' से यह प्रार्थना करता हूं !

तुम्हारा हितैषी

....

लाला दौलतराम जी ने रामकृष्ण को अपने विदेशी मित्र का पत्र थमा दिया । बोले—मन हो तो विदेश ही चले जाओ । अपने मित्र हैं ! किसी बात की कमी नहीं रहने देंगे । जैसा मैं वैसा वह ।

रामकृष्ण ने पिता की बात को ध्यानपूर्वक सुना और बोले— "मैं राम और कृष्ण के देश को छोड़ कर विदेश कभी नही जाऊंगा !

रामकृष्ण जी में यह भी एक संस्कार बीज था जो युवावस्था के साथ-साथ ही पल्लवित हो चला था । नहीं कहा जा सकता है— इन्होंने विदेश में बुलाने के स्नेह निमन्त्रण को क्यों ठुकरा दिया था । पिता के अभिन्न मित्र का निमंत्रण रामकृष्ण के लिए था, वह भी एक पितृ हृदय का ही तो निमंत्रण था ।

हम और आप इस अस्वीस्कृति को किसी रूप में ले सकते हैं ? किन्तु प्रज्ञापुरुषोत्तम से मैंने वैचारिक स्तर पर इसका उत्तर पूछा तो

उन्होंने कहा—"भारत में क्या कमी थी या है जो मैं विदेश चला जाता। यह भारत तपोधन ऋषि-मुनियों, तपस्वियों और तीर्थंकरों का देश है। ऐसा मैं उस समय भी मानता था। आज के सन्दर्भ में कहूं तो कहूंगा भगवान् महावीर जैसी महान् और पवित्रात्मा का देश छोड़कर विदेश जाना निरर्थक नहीं तो और क्या था ? अगर मैं विदेश चला गया होता तो योगियों के योगी योगिराज गुरुदेव श्री रामजीलाल जी म० जैसी महान् आत्मा का चरण सामीप्य मुझे कभी प्राप्त न हो सकता था ?

करुणा और हृदय :

करुणा मानव हृदय का वह भाव है जो कभी-कभी अभाव व पीड़ा में व्यक्ति को देख कर स्वयं उत्पन्न हो आता है। कभी चिंतन-शील व्यक्ति द्वारा पूछे गए प्रश्नो के उत्तर में तैरती दिखाई दे जाती है। दोनों प्रकारों मे किसी भी माध्यम से करुणा जन्मी हो ! प्रश्न यह खड़ा होता है कि उपजी करुणा ने आपको बरसने के लिए प्रेरित किया या नही। आप बरसे-सरसे या नही। पीड़ित को देखकर भी आप करुणा विगलित नही हुए तो समझ जाइए महावीर या बुद्ध, राम या कृष्ण- इनके रास्ते से आप कोसों दूर हैं !

रामकृष्ण, अपने जीवन में किस प्रकार करुणा विगलित हुए हैं, स्मृति में उभर आए इस घटना प्रसंग से आप समझ सकेंगे—

रामकृष्ण नगर से स्टेशन की ओर भोजनोपरांत परिभ्रमण को जा रहे थे। रास्ते मे कभी परिचय में आया 'कल्ली' मजदूर मिल गया। सर्दी के दिन थे। ठंडी हवा चल रही थी। रामकृष्ण उसको देखते ही बोले—"अरे, कल्ली !

कल्ली बोला – हां, बाबूजी ! क्या हुक्म है ?

"कहां से आ रहा है ! अब तो घर ही जाओगे।"

'हां, मै घर ही जा रहा हूं।'

'कुछ मजदूरी बनी ?'

'हां खाने भर की तो बन ही गई।'

यह तो अच्छा है पर इस सर्दी में तुमने तन पर सिवा इस कबले के कुछ और नहीं ओढ़ा है। यह ठीक नहीं है। शरीर की हिफाजत के लिए कुछ और भी ओढ़े रहना चाहिए।

"बाबू जी! ओढ़ना तो चाहिए पर क्या करूं! पेट के दोनों जून की ओर देखूं तो यह सब कुछ ही पाना बड़ा कठिन है। ज़माने को देखते हुए रोटी की गुज़र हो जाये तो यही काफी है।"

युवक रामकृष्ण को अपने सवालों का जवाब कल्लो द्वारा बड़ा सटीक प्राप्त हुआ। मंथन चला। करुणा से हृदय भीग गया। सोचने लगे—कल्ली से मैंने जो कुछ पूछा उसका सचोट समाधान उसने दिया। जब मैंने उसे सब तरह से पूछ-परछ कर यह पाया है कि वह मात्र दो वक्त की रोटी कठिनाई से जुटा पाता है। सर्दी से बचने के लिए एक कम्बल भी खरीद सके इतना पैसा इसके पास नहीं जुट पाएगा। ऐसी परिस्थित मे मेरा क्या कर्तव्य वनता है?

इस प्रश्न के उत्तर मे छात्र-जीवन में पढ़ी, टालस्टाय की पुस्तक 'हम क्या करें' के उत्तर के अनुसार आपके पास दो कोट है तो एक कोट सर्दी झेल रहे गरीब को पहना दीजिए। आप के पास दो कम्बल हैं तो एक कम्बल उसे दे दीजिए। आप के पास एक रोटी है तो आधी रोटी, रोटी के लिए फैले हुए हाथ पर रख दीजिए।

रामकृष्ण जी ने अपने तन पर ओढ़ी हुई शाल उतारी और कल्ली को ओढ़ाते हुये कहा—इस सर्दी में अपने जिस्म को इससे ढको और तब घर जाओ।

योगिराज जी से प्रथम भेंट

'संग-साथ और वातावरण का जीवन में कोई हस्तक्षेप नहीं है' कुछ लोग ऐसा कहते हैं। संग-साथ, और मित्र जिस प्रकार के वातावरण में जाते हैं और अपने साथी को ले जाते है, उसका प्रभाव ऐसा पड़ता है कि पूरे जीवन की धारा ही बदल जाती है।

सहसा निमिषि भर में कैसे सत्य का सूर्य फूट कर उदय हो आता है। योगिराज श्री रामजीलाल जी म से रामकृष्ण जी की प्रथम भेंट वार्ता में पढ़ें।

रामकृष्ण जी का मित्रवर्ग सभी जाति और वर्गों में था। जैन समाज के समवस्यक भी इनके मित्र थे। एक बार जैन मित्रों में से एक मित्र ने कहा—'रामकृष्ण ! तुम्हारे प्रश्न इतने जटिल और गहन होते हैं कि उनका समाधान हमारे पास नहीं होता है। यदि तुम कहो तो हम तुम्हें एक ऐसे महामुनि से मिलवाते है जो तुम्हारी सभी समस्याओं का समाधान तो करेंगे ही साथ ही तुम्हें आश्चर्य भी होगा कि क्या सचमुच ऐसा त्याग, तपस्या एवं ज्ञान का प्रभास्वर ज्योति—पुरुष भी हो सकता है ?

मित्रों की बात सुनकर रामकृष्ण जी ऐसे महामुनि के दर्शन करने को उमंगित हो गये। पूछ बैठे—'कहां जाना होगा ऐसे महामुनि को पाने के लिए ?' मित्रों में से एक ने कहा—कहीं नहीं। यही बाबरा मोहल्ले में स्थित जैन स्थानक में।

योगिराज श्री रामजीलाल जी म० अपने अग्रज मुनियो की संनिधि में लम्बे समय से स्थिरवासी थे। अनुदिन प्रवचन सत्संग का क्रम चल रहा था। जैन—अजैन सभी वर्गों के श्रद्धालु बड़ी संख्या में उनकी सेवा में उपस्थित होते थे। प्रवचनो से लाभान्वित होते थे। रामकृष्ण अपने मित्रों के साथ गुरुदेव योगिराज जी के प्रभामंडल में पहुंचे तो सदा-सदा के लिए उनके हो गये।

जहां मन अर्पित हो जाता है वहां मनुष्य के पास अपना कहने को रह भी तो कुछ नहीं जाता। रामकृष्ण के पास भी योगिराज जी के प्रभास्वर व्यक्तित्व-दर्शन के बाद अपना कहने के लिए कुछ भी न बच पाया। कहना चाहिए--योगिराज मे जागी श्रद्धा इनके जीवन की स्थायी निधि बन गई, और इस प्रकार न टूटने वाली एक धारा का महानद बहने लगा। अतः रामकृष्ण प्रतिदिन श्री योगिराज जी म० के सानिध्य में जाते और शका समाधान का आनन्द रस पाने लगे। इसी क्रम में एक दिन अति उत्साह में उमंगित होकर रामकृष्ण ने अपना भीष्म निश्चय श्री योगिराज जी म० को सुनाया। गुरुदेव ! मैं निश्चय कर चुका हूं, अपना जीवन आपको अर्पित करने का। मेरे पास अब अपना कहने को कुछ शेष नहीं रहा है।



गुरुदेव श्री के जीवन निर्माता:
योगिराज श्री रामजीलाल जी महाराज

श्री योगिराज जी म० बोले—रामकृष्ण ! शिष्यता की प्राप्ति तभी होती है जब शिष्य के पास अपना कहने का कुछ शेष नहीं रह जाता। इससे आगे का सत्य यह है कि तब शिष्य, गुरु की आध्यात्मिक विरासत का उत्तराधिकारी हो जाता है। परन्तु रामकृष्ण यह समझ लेना शब्दों में सत्य नहीं ठहरा करता है। सत्य भावों के अमृत घट में स्थापित होता है। कहा जाता रहा है कि सिंहनी का दुग्ध स्वर्णपात्र मे ठहरता है, शेष पात्र उसे धारण कर सकने में असमर्थ होते हैं।

शिष्यता ऐसा ही सत्य है। तुम्हारा निश्चय स्वर्णपात्र साबित हो सकेगा ? रामकृष्ण ने कोई प्रमाण उपस्थित नही किया, अपितु परमशांत भाव से कहा—गुरुदेव ! आपने ही कहा है न कि सत्य को शब्द नहीं वहन कर सकते। वह भावों के अमृत घट में ही ठहर सकता है। जब आपको लगे भावों के अमृत घट मे सत्य स्थापित हो चुका है तो तब आर्हती दीक्षा का गुरुमंत्र प्रदान कर देना।

गुरुवर योगिराज जी म० ने रामकृष्ण को कहा—तुम्हारे कहने की पद्धति में धैर्य उतर आया है। ठीक है, निरंतर साहचर्य बनाए रखो ! जब योग्यता का घट छलकता दिखाई देगा। तुम्हें शिष्यता का मंत्र भी मिल जाएगा।

\+ + +

रामकृष्ण जी, श्री योगिराज जी म० की चरण-वन्दना करने हर दिन आने-जाने लगे। एक दिन योगिराज ने कहा—रामकृष्ण तुम हमारे वर्ग के अन्य मुनिराजों की सन्निधि भी प्राप्त करो। आचार्य श्री काशीराम जी म०, उपाध्याय श्री आत्माराम जी म०, महान् संयमी श्री बनवारीलाल जी म०, व्याख्यान वाचस्पति श्री मदनलाल जी म०। सभी के पास जाओ, दर्शन करो। रामकृष्ण जी, गुरुदेव की आज्ञा से अन्य मुनिवरों के संपर्क में भी आने लगे। इस तरह जैनत्व इनके मन-प्राण में रच-बस गया।

अन्य मुनिराजों ने देखा—श्री योगिराज जी म० के जगाए, प्रतिबोधित शिष्य रामकृष्ण वीतराग मार्ग पर अग्रसरित होने वाले अंतर जागरण से परिपूर्ण हैं। इसकी शिष्यता ओढ़ी हुई शिष्यता नहीं है।

यह वस्तुतः वैराग्य में रचा हुआ, शिष्यमन है। इस मन को साधना-पथ की भविष्य बाधाएं रोक नहीं पाएंगी।

थके हुए प्रयास :

रामकृष्ण जी, श्री योगिराज जी म० के सान्निध्य में न जा सकें, इसके लिए अनेक प्रयास घर-परिवार जनों की ओर से किये गये। पिता तो इनका पुनः विवाह रचाने का प्रयत्न कर रहे थे। वे थक गये समझा बुझाकर। उनका विदेशी मित्र रामकृष्ण को विदेश आने का निमंत्रण दे रहा था। उसकी न सुनी गई। और तो क्या समीप मोहल्ले में रहने वाली एक मुस्लिम महिला ने अपने ढंग से अपनी बात कही। एक दिन उसका घर के समीप से गुजरना हुआ। उसे पता चल चुका था—रामकृष्ण फकीर हुआ चाहते हैं। वह बोली—माशे अल्ला! ये जवानी और ये खूबसूरती! फकीर बनकर क्या करोगे? ये दौलत दोबारा मिलनी बहुत मुश्किल है। अब्बाजान जैसे कहते हैं, वैसे करो।

रामकृष्ण ने कहा—बहिन! मेरा तो विचार यह है—यदि इस जिंदगी को इबादत में लगा दिया जाए तो इससे बड़ी खुश-किस्मत और इन्सान की क्या हो सकती है?

अन्य सगे सम्बन्धी मित्र-परिचित और स्कूल के शिक्षा गुरु भी साधुत्व स्वीकारने की वर्जनायें खड़ी कर थक, चुके थे। पर वैरागी रामकृष्ण के निश्चय को बदल पाने में सभी लोगों के प्रयास, थके हुए प्रयास ही सिद्ध हुए।

दीक्षा कब, कैसे ?

रामकृष्ण, गुरुदेव श्री योगिराज जी म० के अंतर जागरण-प्राप्त, वैरागी हो चुके थे। पूरा वर्षावास इन्होंने प्रतिदिन आते-जाते योगिराज की संनिधि में व्यतीत किया था। बीच बीच में अन्य त्यागमूर्ति मुनियों के सानिध्य में भी उपस्थित होते रहे। वर्षावास की अवधि पर समय की रेखा फिरी। श्री योगिराज जी म० ने रोहतक से विहार किया। रामकृष्ण वैरागी के रूप में योगिराज जी के साथ प्रति-

छाया की तरह जुड़ गये। गांव-दर-गांव साथ-साथ चल कर मुनि-जीवन को प्रत्यक्षतः समझने लगे।

वैराग्य-काल में विहार यात्राओं ने इनके अंतर वैराग्य में और भी प्रगाढ़ता ला दी थी। एक बार श्री योगिराज जी म० सहित श्रद्धेय श्री मदनलाल जी म० आदि मुनिमण्डल विहार-रत था। पत्थरों व कांटों भरा रास्ता! तिस पर कड़ाके की सर्दी के दिन! रामकृष्ण जी ने श्री मदनलाल जी म० से कहा—महाराज, मंजिल अभी दूर है। कुछ कदम बढ़ाकर चलिये--मंजिल तभी पकड़ में आ पाएगी। वाचस्पति जी महाराज बोले—बाबूजी, तुम जूते पहने हो। नंगे पैर होते तो तब पता चलता यात्रा का। बाबूजी (सभी मुनिराज इन्हें बाबजी कहते थे) ने सुना, मुनिवर की बात को! ये रुके। जूते-जुराब उतारे और सड़क पर रख दिये। फिर कदम बढ़ाकर साथ-साथ चलने लगे। मंजिल के करीब पहुचे। किसी मुनि ने पूछा—तुम्हारे जूते कहां है? कही भूल आए क्या, बाबूजी?

रामकृष्ण जी ने कहा—भूला नही हूं। जूते, छोड़ने ही थे, छोड़ दिये। चलते-चलते छोड़ दिये। किसी के काम आएंगे। जिसका त्याग ही करना हो तो उसके लिए घर, गांव और जंगल एक ही तो बात है, कही भी छोड़ दिये जाएं।

श्री योगिराज जी म० गांव-दर-गांव होते हुए नालागढ़ (तब का पंजाब अब हिमाचल प्रदेश) नगर पहुचे। यात्राकाल मे सन्तों ने रामकृष्ण जी के मन को गहराई से समझा। अनेक प्रत्यक्ष घटित प्रसंगो ने भी श्री योगिराज जी म० को इस ध्रुव निश्चय पर ला दिया कि रामकृष्ण को तुरन्त दीक्षा दी जाए! वरिष्ठ संतों ने विमर्श कर दीक्षा की सहमति व्यक्त की। पिता दौलतराम जी सहित सभी ने इनके दृढ़ निश्चय के सामने अपनी अनुज्ञा प्रदान की।

रामकृष्ण जी के दीक्षा के समय राजा-महाराजाओं का युग था। तब नालागढ़ के राजा जोगेन्द्रसिंह थे। ये महाराजा पटियाला के दोहते थे। राजा जोगेन्द्रसिह जी के खजांची थे—लाला बधाऊमल जी जैन।

थे संतों के अनन्य अनुरागी और भक्त थे। इनके पूरे परिवार एवं जैन संघ नालागढ़ के अत्यधिक आग्रह से नालागढ में रामकृष्ण जी की जिन दीक्षा श्री योगिराज जी म० श्री आत्माराम जी म० श्री मदनलाल जी म० आदि संतों को स्वीकार करनी पड़ी।

स्थानीय संघ ने पंजाब, हरियाणा के सभी नगरों और दूर-सुदूर सभी स्थानों पर दीक्षा-उत्सव में आने का नेह निमंत्रण दिया। दूर-निकट नगरों से हजारों की संख्या में लोग नालागढ़ पहुंचे।

दीक्षावसर पर आचार्य प्रवर श्री आत्माराम जी म०, व्याख्यान वाचस्पति श्री मदनलाल जी म०, भण्डारी श्री बलवन्तसिंह जी म० स्वामी श्री फूलचन्द जी म०, भण्डारी श्री पद्मचन्द जी म०, प्रसिद्ध वक्ता श्री ज्ञानमुनि जी म० आदि मुनिराज विराजित थे।

रामकृष्ण जी की दीक्षा पर धर्मपिता होने का गौरव ला० प्यारेलाल जी जैन (सुपुत्र ला० बधाऊमल जी जैन) एवं धर्म-माता श्रीमती शीलादेवी जैन को प्राप्त हुआ। इन्होने ही दीक्षा का सर्व व्यय वहन किया। विशाल शोभा यात्रा का आयोजन किया। नालागढ़ नरेश स्वयं शोभायात्रा में सम्मिलित हुए। अपने हाथों राम-कृष्ण जी को हार पहनाया और रुपयों की 'बखेर' करी।

अस्तु, इस प्रकार उत्साह उमंग व आनंद के क्षणों में 12 अप्रैल सन् 1938 तदानुसार वि० सं. 1995 चैत्र शुक्ला त्रयोदशी (महावीर जयंती) के दिन श्री योगिराज जी म० के प्रथम शिष्य होने का इन्हें गौरव प्राप्त हुआ। उक्त तिथि से इन्हें योगिराज श्री रामजीलालजी म० के शिष्य मुनि रामकृष्ण जी कहा जाने लगा।

गुरु चरणों में श्रद्धार्पण :

गुरु, गुरु है। शिष्य, शिष्य है! शिष्य जब स्वयं को गुरु मान बैठता है और गुरु की अवहेलना करने लगता है तो उसमे गुरुत्व तो क्या प्रकट होगा, शिष्यता भी नष्ट हो जाती है। गुरु व्यक्तित्व की अपनी गरिमा होती है। शिष्य का अपना वैशिष्ट्य होता है। जैनागमों मे गुरु के महत्व का उल्लेख करते हुए कहा गया है—'शिष्य, गुरु में



युवावस्था में

अपने अस्तित्व को विलीन कर देता है तब उसमें गुरुता उगती है। शिष्य बोधि-बीज है। बीज का अंकुरण गुरु-करुणा-संपूरित हाथों से संरक्षित होता है। गुरु यदि संरक्षण की सुरक्षा प्रदान नही करता है तो सहस्राधिक असुरक्षा की आंधियों में शिष्यता का बोधि बीज जल कर भस्म हो जाता है।

मुनि रामकृष्ण जी का गुरु चरणों में श्रद्धार्पण साधु-समाज में अद्वितीय उपमान रहा और है। इन्होने गुरुदेव को सदैव साधक-जीवन की सर्वोच्चता प्रदान करने वाले महनीय पुरुष के रूप में पूजा-अर्चा का आराध्य स्वीकार किया। यही कारण है गुरु और गोविद के श्रद्धा, समर्पण और नतमस्तक होने के प्रसगों पर पुराने सन्त, मुनि रामकृष्ण का उदाहरण देकर शिष्य-वर्ग को उत्प्रेरणाएं प्रदान किया करते थे।

सामान्यतः ऐसा होता, देखा जाता है कि शिष्य थोड़ा-बहुत इधर-उधर से पसरे-फैले, पल्ले-झोली मे आनुसागिक योगवश कुछ प्राप्तव्य को आधार बना कर जनरजन करने में जुट जाते है। गुरु को एक ओर अनदेखा कर, छोड बैठते है। जन-सामान्य का मेला जुडने लगा कि बस समझ लिया अपने को गुरु से आगे पहुचा व्यक्ति। मुनि रामकृष्ण ने जीवन मे कभी ऐसी भूल नही की। इन्होने 'गुरु-गोविद दोनों खडे' में गर्भित आदर्श से आगे गुरु, गुरु होता है शिष्य, शिष्य होता है, के यथार्थ को जी कर, ज्ञान, विदग्ध शिष्यो के सामने आदर्श, यथार्थ को प्रस्तुत किया।

स्थानकवासी परंपरा मे प्रायः शिष्य जब कछ लोगो को जोड लेने की क्षमता प्राप्त कर लेते है तो समझ लेते है हम गुरु हो गए। मुनि रामकृष्ण जी का कहना है शिष्य गुरु के अनन्त उपकारो से बिधा होता है। अढ़ाई करोड शरीर की रोम राशि गुरु के उपकारो से विद्ध होती है। ऐसी अवस्था मे शिष्य गुरु को ओझल कर कैसे सकता है। यदि शिष्य गुरु की गुरुता को भुला बैठता है तो समझना चाहिए उसने शिष्यता को ही भस्म कर दिया गुरुता तो प्रकट होगा ही कहां से।

द्रष्टा आज तक मुनि रामकृष्ण में रहे गुरु के प्रति समर्पण भाव को और श्रद्धार्पण को व्यक्त कर ही नहीं पाया है। उनके समर्पण और भक्ति को नेति-नेति कह कर निषेध तो किया जा सकता है परन्तु स्वीकृति का एक शब्द भी वह नहीं कह पाता है।

गुरु-भक्ति की आदर्श स्वीकृति में लोकमान्यता को भी मुनि रामकृष्ण जी एक क्षण में तोड़ते हुए स्थान-स्थान पर दिखाई देते हैं। गुरुवर्य श्री योगिराज जी म० के वर्षावास की विनती के लिए अनेक स्थानों के संघ-संगठन प्रयास करते थे। उस समय कछ लोग मुनि श्री के प्रति निवेदित होते और कहते—'महाराज, आप ही हमारे क्षेत्र में वर्षावास की स्वीकृति दिलवाने में सहयोग कर दीजिए। शिष्य तो बादशाह का वजीर/मंत्री/सलाहकार/सहयोगी होता है। उसकी बात पहले मानी जाती है।'

मुनि श्री जब भक्तजनों से इस प्रकार की शब्दावलि सुनते तो इनका शिष्यत्व आहत हो उठता था। ये कहते तुम लोगों ने कैसी मूढ़ता पाल रखी है। गुरु जैसे उच्चासिहासनासीन विभूति पुरुषों के लिए बादशाह, वजीर, मंत्री जैसे तुच्छ शब्दों का प्रयोग करते हो! मेरी दृष्टि में गुरु, गुरु है। वे जैसा चाहेंगे करेंगे। जैसा इष्ट होगा वैसा स्वीकार करेंगे। साधु को साधना व संयम की मर्यादा को भी देखना होता है। उन्हें बादशाहत नही देखनी है। उनकी दृष्टि में वजीरगिरी या दीवानगिरी जैसी कोई वस्तु नही होती।'

उक्त उत्तर से आप,हम सभी अनुमानित हो सकते है कि मुनि रामकृष्ण जी अन्तर् जगत् मे गुरु का क्या स्वरूप था। उन्होंने गुरुदेव योगिराज श्री रामजीलाल जी म० की स्तुति सोते, बैठते, उठते, जागते चलते फिरते जीवन के प्रत्येक क्षणों में शताधिक पद्य रचनाओं में की है। व्यक्ति, समाज, देश, धर्म, अध्यात्म, आत्मा, परमात्मा आदि के चिन्तन क्षणों के अतिरिक्त कोई क्षण जी कर देखा है तो उसमें गुरु-चरणों में श्रद्धार्पण किया है।

साधु/मुनि/ऋषि/योगी भी तो समाज का मार्ग दर्शक प्रमुख घटक है। उसे भी समाज व्यवस्थाओं की अनेक रीति और मान्यता

को आधार बना कर जीना होता है। साधना-पथ पर अग्रगामी होना पड़ता है। अनेक प्रसंगों पर ये देखते सामाजिक गृहस्थ या साधु जन किस-किस प्रकार के कार्य करते हैं। ये समझते और आंकते हुए भी हस्तक्षेप नहीं करते थे। कभी अनुकूलता देखी तो गुरु-चरणों में मात्र निवेदन भर कर देते थे। गुरुदेव योगिराज उचित परामर्श पर मोहर लगाते है या नहीं इसकी भी ये अपेक्षा नहीं करते थे। इस प्रकार केवल गुरु के प्रति श्रद्धा व्यक्त कर जीना ही इन्होंने अपनी शिष्यता का मूलाधार माना है।

गुरु ने जब भी इन्हें आंख भर निहारा कि ये निहाल हो जाते। गुरु की भृकुटि में सलवट पाते तो आत्म-निरीक्षण में डूब जाते—ऐसा श्रद्धार्पण और आज्ञा-पालक भाव रहा है इनकी शिष्यता का।

भावात्मक शिष्यता के अतिरिक्त व्यवहारिक शिष्यता के नाते भी गुरुदेव इनके तन मन नयन मे किस प्रकार गहरे उतरे हुए थे? लेखक ने स्वयं देखा है, श्री योगिराज जी म० यात्रा रत होते, गांव-दरगाव विहार करते थे। मुनि श्री उनके गांव में पहुंचने से पहले ही पहुच जाते। उनके लिए ठहरने की उचित व्यवस्था जुटाते। आहार-पानी से लेकर अन्य सभी प्रकार की वस्तुगत व्यवस्था करना भी इनकी उत्कृष्ट गुरु भक्ति, गुरु-सेवा का असिधारा व्रत होता था। यद्यपि स्वय लम्बे समय से अस्वस्थ होते हुए भी गुरु-सेवा के सम्मुख अपनी अस्वस्थता को गाण करके मानते। गुरु-सेवा-भक्ति को प्रमुखता प्रदान करते। अनेक वार हम मुनियो ने इनसे निवेदन किया, स्वय योगिराज जी महाराज ने कहा—आप अपने स्वास्थ्य का भी ध्यान रखा करो! तो तत्काल इनका उत्तर होता है मेरी स्वस्थता और अस्वस्थता से क्या तात्पर्य है। मैं अस्वस्थ हूं तो इसका अर्थ यह तो नही हो सकता कि गुरु-सेवा को ओझल कर दू। गुरुसेवा जितनी हो जाय उतनी कम है। अनन्त भवकोटि कर्मों का दहन गुरुसेवा, गुरु-आज्ञा और गुरुश्रद्धा से होता है। अपनी स्वस्थता और अस्वस्थता का गुरुसेवा के प्रसंगो पर आडे लाते रहने का अर्थ है—अनेक जन्मों के लिए नए-नए भवकोटि कर्मो का संचय!

प्रज्ञा-पुरुषोत्तम मुनि रामकृष्ण

'गुरु चरणे जीव सातारे पावें' जैसे पद्यों का प्रणयन मुनि रामकृष्ण जैसे गुरुचरणारविंद नमित कवि द्वारा की अभिव्यक्ति ही हो सकती है ।

इसी के साथ गुरु-चरणों में अर्पित प्रज्ञापुरुषोत्तम मुनि रामकृष्ण के कवि-हृदय को भी पढ़ चलें—

पूज्य गुरुदेव की अर्चा में हम,
आग्रह खड़े हैं नतमस्तक ।
तुमने बोधि-दीप जलाया,
भूतार्थ हुआ मुक्ति-पथ द्योतक ।।

अध्येता मुनि रामकृष्ण :

मुनि होना या शिष्य होना एक ही बात है। जो शिष्यत्व के भावों मे भीग चुका होता है वही मुनि कहलाने का अधिकारी होता है। जो मुनित्व का अधिकारी है वही शिष्यता को जी सकता है। मुनि कहने, पर शिष्यता बची रहती हो या शिष्य कहने पर मुनित्व बचा रहता हो ऐसा नही है।

तो रामकृष्ण मुनि बन चुके थे। मुनि, गुरु का छायानुगामी होता है। उसका जीवन गुरु चरणो में अर्पित हो जाता है। गुरु के आदेश, निर्देश आकांक्षा और भावना ही शिष्य की आकांक्षा और आशा होती है। यूं कहना चाहिए —गुरु के लिए जीने-मरने का व्रत स्वीकार कर लेना ही शिष्यता, मुनिता हो जाती है उसके लिए। ऐसा होता है शिष्य का शिष्यत्व भाव।

गुरु शिष्य को छूना नही है। अपने प्राणो से उसे स्पर्श करता है। ऐसा होता है गुरु। गुरुदेव योगिराज श्री रामजीलाल म० ने शिष्य प्राप्त कर अभिमान अनुभव किया हो, ऐसा नही। उनके योगयुक्त मन-प्राण में रामकृष्ण को शिष्यत्व के उच्चशिखर पर पहुंचा देने का शुभ संकल्प तो जागा पर ठहर जाने वाला ममत्व का रेतकणों पर खड़ा होने वाला प्रासाद उन्होंने कभी खड़ा नही किया।

यही कारण है कि श्री योगिराज जी म० ने एक बार मुनि रामकृष्ण से कहा साधुत्व की ऊंचाई प्राप्त करने के लिए तुम्हें धर्म-दर्शन

का सूक्ष्मता से अध्ययन करना है। गवेषणापूर्ण अध्ययन कर चुका, तब प्रवचन-मंच पर महावीर या वीतराग-धर्म का प्रतिपादन करना। महावीर ने अनेकांतवाद/स्याद्वाद का प्रतिपादन किया है। इसके पीछे उनके अनंत कैवल्यज्ञान का सार समाया हुआ है। अनेकांतवाद को समझकर जन-जन तक प्रस्तुत करने के लिए सभी दर्शनों का अनु-संधित्सु बनकर अध्ययन करना आवश्यक है।'

गुरुदेव श्री योगिराज जी म० के आदेश को सिरसा स्वीकार कर मुनि रामकृष्ण जी मन.प्राण से अध्ययन में लग गये। सर्वप्रथम संस्कृत का अध्ययन प्रारभ किया। इस चलते प्रसग मे यह बताना आवश्यक लग रहा है कि उस युग मे महामुनि श्री मायाराम जी म० की शिष्य-परपरा में मुनि रामकृष्ण ही पहले अपवाद थे जिन्होंने संस्कृत का विधिवत् अध्ययन प्रारम्भ किया था। इनके द्वारा सस्कृत अध्ययन प्रारम्भ करने के बाद तो फिर सस्कृत पढने के लिए एक स्वस्थ प्रति-स्पर्धा सी उठी थी, साधु समाज में।

+ + +

सन् 1939 का प्रसग है। रायकोट (पजाब) में व्या० वा० श्री मदनलाल जी म०श्री योगिराज जी म० उपा० श्री अमर मुनि जी म० एव अन्य सतो का सयुक्त चतुर्मास था वहा मुनि रामकृष्ण जी ने उपा० श्री अमर मुनि जी म० से सस्कृत व्याकरण 'लघुसिद्धात कौमुदी' का अध्ययन प्रारम्भ किया। कवि श्रीजी ने कहा—"रामकृष्ण मुनि ! तुम सस्कृत पढना प्रारम्भ कर रहे हो। मुझे तुम्हारी निष्ठा और लगन पर गर्व है। यह गर्व तुम सत्य प्रामाणित कर के दिखाना।" यद्यपि कविजी का साधु-जीवन सम्बन्धी कारणो से अधिक सान्निध्य नही बन सका। परन्तु इसी प्रारम्भिक सस्कृत अध्ययन के प्रेरक, अध्यापन के नाते आज भी कवि जी के प्रति इनके हृदय में विपुल आदर भाव है।

मुनि रामकृष्ण जी सस्कृत पढने लगे। थोडे ही दिनो मे इनका यश बढने लगा। 'चर्चावादी और तार्किक 'मुनि' के रूप मे इनकी सर्वत्र चर्चा होने लगी। अतः तत्कालीन मुनि-परपरा के अन्य वरिष्ठ

मुनिराजों सहित अनेक मुनियों ने मुनि रामकृष्ण जी को प्रेरणा मान कर लघुसिद्धांत कौमुदी का अध्ययन प्रारम्भ कर दिया। वरिष्ठ संत जिन्होंने उत्तराध्ययन सूत्र, नंदीसूत्र आदि आगम ग्रंथों का पाठ प्रतिदिन कर लेना अनिवार्य माना हुआ था वे भी 'इकोयणची' का ज्ञान प्राप्त करने के लिए उत्कंठित और समर्पित हो गये।

अध्ययन की बाधाएं और प्रेरणाएं :

मुनि रामकृष्ण का अर्थ है—धुन का धनि मुनि ! गुरुदेव योगिराज जी ने इन्हें एक बार सामान्यतः कहा था, ' रामकृष्ण मैं तुम्हें उच्च-कोटि का विद्वान् मुनि देखना चाहता हूं। मुझे तुम आनन्द उस दिन दे पाओगे जिस दिन मेरी योग साधना, मेरे संयम और मेरे चरित्र को अपने ज्ञानालोक में विलोक पाओगे। मैं समझूंगा—तुम शिष्यत्व के उच्च शिखर पर आरोहण कर चुके हो। मैं उसी दिन अपने गुरुत्व को तुममें देख कर योग की परम अवस्था में लुप्त हो रहूंगा।"

श्री योगिराज जी म० ने एक बार मुनि रामकृष्ण को यह संकेत दिया था तो तभी से इन्होंने आवश्यक दैनिक कार्यानन्तर दस-दस घंटे तक अध्ययन करना प्रारम्भ कर दिया। इस क्रम को 8 वर्ष के सुदीर्घ काल तक अविराम अहर्निश बनाए रखा।

किसी भी भाषा को पढ़ने का इनका अपना मौलिक ढंग था। ये कहते—किसी भी भाषा का सर्वांगीण ज्ञान प्राप्त करने के लिए तद् विषयक व्याकरण के तल को छूना आवश्यक है। व्याकरण पाठी यथार्थ परक सौन्दर्य के सत्य को समझ सकता है। व्याकरण-बोधी का चित्रांकन सिद्धाताधारित होता है। उसका रेखाओं पर रंगों का संयोजन, चित्रकला का वह मूलभूत ज्ञान होता है 'जैसे दूर की वस्तु छोटी दिखाई देती है। जैसे-जैसे व्यक्ति उसके समीप पहुंचता है वैसे-वैसे वह स्थूल होती चली जाती है।' चित्रांकन में क्या होता है ? चित्र जिस कागज पर अंकित है वह सपाट कागज ही तो होता है। किन्तु चित्रकला के सैद्धांतिक आधार पर भरे गए रंग आप को अभिभूत कर देते है। व्याकरण ज्ञान भी यही सब कुछ करता है।

मुनि रामकृष्ण जी के लिए अध्ययन की प्यास होना ही पर्याप्त नहीं होता था। अध्ययन में जो बाधाएं उपस्थित होती थी उनको पीते हुए अध्ययन-रत रहना बड़ी बात थी। इनके युग में योग्य विद्वान् का मिलना ही कठिन था। "हस्तिना ताड्यमानेऽपि न गच्छेत् जैन मन्दिरम्' के विषदंश से मुक्त पंडित का मिलना बड़ा दुर्लभ था। ढूंढे से कोई विद्वान् मिल भी जाता तो मुनि रामकृष्ण जैसे सतर्क विद्यार्थी को पढ़ा पाना सहज न होता था। एक बार एक पंडित को बुलाया गया। उसने मुनि रामकृष्ण जी से भेंट-परिचय-चर्चा की। रात के समय एक पत्र लिखकर छोड़ गया और बिना सूचना के ही चला गया। पत्र मे लिखा था राम-कृष्ण मुनि इतना कुशाग्रबुद्धि अध्येता और तार्किक है कि मैंने अपनी योग्यता और क्षमता को नापा तो इन्हे अध्ययन कराने में अपने को असमर्थ पाया। अतः मैं बिना सूचना दिए ही जा रहा हूं।

एक ओर अध्यापक के मिलने की कठिनाई थी दूसरी ओर उस समय साहित्य भी सर्व सुलभ होना दुष्कर था। एक पुस्तक की आवश्यकता की पूर्ति महीनो मे हो पाती थी। य और इस प्रकार की अन्यान्य कठिनाइयो को लाघते हुए इन्होने अपनी धुन, लगन श्रम और निष्ठा के द्वारा जो पाया वस्तुतः वह अद्भुत एव अद्वितीय था।

मुनि श्री के संस्कृत अध्ययन मे पंडित श्री शुकदेव जी पाठक (बिहार) तथा श्री गगेश मिश्र (बिहार) का अध्यापन उल्लेखनीय है।

आठ वर्ष के अनवरत श्रम द्वारा इन्होने सस्कृत, प्राकृत, पालि, अपभ्रंश, हिन्दी, उर्दू, फारसी, अग्रेजी, पजाबी और गुज्राती आदि भाषाओ को व्याकरण के आधार पर शुद्ध पढना, बोलना और लिखना तो सीखा ही। इन भाषाओ के ठोस बोध के बाद इनके साहित्य, छद, न्याय और सभी भारतीय दर्शन, पाश्चात्य दर्शनों का भी गहन अध्ययन किया।

मुनि श्री रामकृष्ण जी ने अध्ययन, सर्वांगीण एव सर्वव्यापक रूप से किया। सस्कृत व्याकरण के सिद्धान्त कौमुदी, व्युत्पत्तिवाद, शब्द-शक्ति प्रकाशिका, महाभाष्य के अष्टाह्निक आदि ग्रन्थो का पूर्ण

चिन्तन और मनन के साथ अध्ययन किया। साहित्य-दर्पण, ध्वन्यालोक, रसगंगाधर आदि साहित्य ग्रन्थों का अवलोकन किया। कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्रकृत प्राकृत व्याकरण तथा अन्य प्राकृत व्याकरणों का एवं पाली व्याकरण को गुरुदेव ने स्वयं ही अधिगत किए।

वेद, उपनिषद्, पुराण, ब्राह्मण-ग्रन्थ तथा बौद्ध साहित्य को सूक्ष्मता से पढ़ा। समस्त जैनागमों का टीका, चूर्णी, निर्युक्ति, भाष्य आदि सहित गम्भीर अध्ययन किया। दशवैकालिक सूत्र, उत्तराध्ययन सूत्र, नन्दी सूत्र, आचारांग सूत्र, सुखविपाक सूत्र, तत्वार्थ सूत्र, प्रभृति शास्त्र इन्होंने मुखाग्र किए।

षड्दर्शन का अध्ययन तो सम्पन्न किया ही किन्तु न्याय दर्शन इन्हें विशेष रूप से प्रिय रहा। मुक्तावली, पचलक्षणी, सिद्धान्त-लक्षण, अवच्छेदक निर्युक्ति, पक्षता आदि न्यायदर्शन के अनेक ग्रन्थों को सूक्ष्मता से आत्मसात् किया जैन-दर्शन के ग्रन्थों का अध्ययन तो इनके लिए आवश्यक और सहज था ही।

इन सबके साथ आंगल भाषा के शैक्सपीयर, वर्डस्वर्थ, कीट्स प्लेटो, एरिस्टोटल आदि मान्य दार्शनिकों को इन्होंने पढ़ा। रवीन्द्र नाथ टगोर, टॉल्स्टाय इन्हें प्रिय रहे। बाईवल, कुरान के साथ-साथ उर्दू भाषा के गालिब, जौक, इकबाल जैसे कवियों का साहित्य भी अछूता न रहा।

राजनीति-शास्त्र, अर्थ-शास्त्र, समाज-शास्त्र, मनोविज्ञान, शैक्षणिक समाज विज्ञान आदि का पठन इनके अध्ययन की विशालता का सूचक है।

इनकी इस निष्ठा, लगन और परिश्रम को देख कर आचार्य प्रवर श्री आत्माराम जी म० व्याख्यान वाचस्पति श्री मदनलाल जी म० पजाब केसरी श्री प्रेमचन्द जी म० प्रभृति मुनिराज अपने मुक्त कण्ठ से इनकी प्रशंसा करते थे और अध्ययन करने वाले मुनियों को कहते थे अध्ययन करना है तो मुनि रामकृष्ण की तरह मेहनत करो!

मुनि रामकृष्ण जी ने जो पढ़ा, जो पाया वह इतना विद्वत्तापूर्ण व निर्मल है जसे अंजली में भरा हुआ पानी।

सच भी है—ज्ञानार्जन उसी का नाम है कि आंजुरी में पानी भरा है कोई भी देखे। समझे-कही कोई रुकावट या छुपाव होता ही नहीं है।

ज्ञान का पाचन :

ज्ञान पाना एक बात है। उसे पचा पाना दूसरी बात है। थोड़ी-सी जानकारी हुई कि विनय व नम्रता के अभाव मे ज्ञानरसायन मनुष्य को अहंकार के विस्फोटक पहाड़ पर लाकर खड़ा कर देती है। कहना चाहिए--विनय, सेवा और गुरु भक्ति के भाव के अभाव में थोड़ा-सा ज्ञान भी मनुष्य को अहंकारी बना देता है। मुनि श्री रामकृष्ण जैसे-जैसे अध्ययन करते गये, ज्ञान पाते गये, गुरुदेव योगिराज जी म० के प्रति एव अन्य अग्रज मुनियों के प्रति विनम्र से विनम्रतर होते गये। इन्होंने जैसे-जैसे पाया वैसे-वैसे गुरु के प्रति अधिकाधिक श्रद्धार्पण किया। इनके चिन्तन की दिशा ही दूसरी थी। ये प्रतिपल अनुभव करते रहते कि मैं जो कुछ पा रहा हूं, पाया है और पाऊंगा यह सब गुरु की अपार कृपा का ही तो फल है। गुरु ने जितनी कृपा—वर्षा की है उसके अनुसार तो मुझे और भी बहुत कुछ, अब तक पा लेना था। महावीर ने अप्रमत्त सूत्र में जो कहा है वह गुरु-कृपा होने पर वैसा और उतना मुझे पा लेना चाहिए था। मैंने जो पाया है वह अत्यन्त स्वल्पतर है। अनन्त संभावनाओं के द्वार अभी बहुत दूर है।

प्रवचनकार मुनि रामकृष्ण :

मुनि श्री रामकृष्ण जी म० रोहतक में जन्मे-जाये। यही सलौना सरल बचपन बीता। उल्लासों और उमंगों भरी किशोरावस्था आकर अतीत में सरक गई। युवावस्था की पद-ध्वनि भी रोहतक में सुनी। पिता जी की मान-मनुहार और मां का वात्सल्य भी रोहतक में ही पाया। वैराग्य अकुरण भी यही हुआ। वैराग्य के बाद दीक्षा! दीक्षा

के पश्चात् लगभग आठ वर्ष के सुदीर्घ अंतराल के पश्चात् सन् 1946 का रोहतक में वर्षावास।

आठ वर्ष के लम्बे अंतराल में मुनि श्री रामकृष्ण जी ने समय के तेजी से सरकते पलों को पकड़कर किस प्रकार उन्हें सजीव व सार्थक किया, इसका प्रमाण है गुरुदेव योगिराज श्री रामजीलाल जी म० की यह आत्म-विश्वास भरी वाणी !

"मुनि रामकृष्ण ! यह (रोहतक) नगर तुम्हारी जन्मभूमि है। तुमने यही वैराग्य पाया था। इसी भूमि पर तुमने अंतर्-जागरण प्राप्त किया था—आज इसी तुम्हारी जन्मभूमि पर चतुर्मास हो रहा है। यहां पर तुम्हे प्रतिदिन प्रवचन तो करता ही है, इसके साथ-साथ ऐसा जन-जागरण उत्पन्न करो कि सब तुम से प्रेरणा पा सकें।"

मुनि रामकृष्ण जी ने गुरु-आज्ञा को सिरसा स्वीकार किया। रोहतक की जैन धर्मशाला के प्रांगण मे प्रतिदिन धर्म-दर्शन, आध्यात्म, नैतिक-जागरण, राष्ट्र के प्रति नागरिकों के कर्तव्य, शिक्षा और शिक्षा में आ गए दोष, विद्यार्थी-जीवन, डाक्टर, वकील, न्याय, न्यायधीशों की नैतिकता आदि विषयो पर सारगर्भित एव विद्वत्तापूर्ण प्रवचनों की अजस्रधारा प्रवाहित करने रहे पूरे वर्षाकाल में।

प्रवचन करना जैसे मुनि की नियति है। प्रवचन न करे तो उसका कल्याण-स्वरूप ही समाज की समझ मे न आएगा। प्रवचन देना तो आज मनि आचार में परिगणित हो गया है। प्रायः मुनिजन व्याख्यान, प्रवचन, उद्बोधन, प्रेरणा, उत्प्रेरणाए देने ही रहते है। मुनि श्री रामकृष्ण जी म० के प्रवचनो का अपना वैशिष्ठ्य था। इनके प्रवचनो म शुद्ध शब्द-प्रयोग, शालीन भाषा, शास्त्रों का गहन ज्ञान, व्याकरण सम्मत ललित-प्रयोग, व्यक्ति परक आलोचना का अभाव, विषय का सर्वांगीण प्रतिपादन होता था। यही कारण है कि रोहतक नगर निवासी जैन-अजैन, वर्ग और वर्ण भेद रहित होकर मुनि श्री की अनुदिन प्रवचन सभा मे उमगित तथा उल्लासित हृदय से आते थे। घर, मोहल्ले, पड़ोस, व्यापार-व्यवसाय के आधार पर परस्पर विचार भेद हों परन्तु प्रवचन-श्रवण के आधार पर सभी लोग भेद-भाव भुलाकर एक मत थे।



मुनि श्री रामकृष्ण जी म० का संदेश भी यही होता था—परमात्म उपासना, सत्संग जैसे आत्माभ्युदय के प्रसंगों पर तो सबको एक मत हो जाना चाहिए। बाह्य मतभेद वस्तु—आधारित होते हैं। व्यक्ति हित अहित से बंधा हुआ है। अतः सांसारिक सम्बन्धों को लेकर वह विकेन्द्रित भी होगा तो उसका काम चल सकता है किन्तु आत्माभ्युदय, उपासना या सद्मार्ग के रास्ते पर चलने के लिए तो सब का एक मत होना नितांत आवश्यक है। संसार में कुछ केन्द्र ऐसे हैं जहां मतभिन्नता हो ही नहीं सकती। जन्म, जीवन, वैराग्य, मृत्यु, आत्मा आदि विवाद के केन्द्र नहीं हैं। इनके सम्बन्ध में सभी धर्मों और दर्शनों ने इन्हें निर्विवाद केन्द्र घोषित किया है।

\+ \+ \+

गुरुदेव मुनि श्री रामकृष्ण जी म० के प्रवचनों में नित्य उपस्थित होने वाले रोहतक के सुप्रसिद्ध वकील बाबू साधुराम, बाबू लालचन्द एडवोकेट, बाबू रामस्वरूप एडवोकेट, बाबू मोतीसागर एडवोकेट प्रभृति वकीलों से मैंने (लेखक) वार्ता कर यह जानना चाहा कि आप लोग तो गुरुदेव मुनि रामकृष्ण जी म० के उन ऐतिहासिक वर्षावास के प्रत्यक्ष-दर्शियों में से हैं बताएं कि और किस प्रकार की गतिविधियां होतीं रहीं तब ?

उक्त महानुभावों ने अलग-अलग बैठकों में मुझे बताया—मुनि रामकृष्ण जी म० मात्र प्रवचन देकर ही इति-अलम् नहीं होते। समय-समय पर गोष्ठियों का आयोजन रखते थे। नगर के गण्य-मान्य व्यक्ति और बुद्धिवादी लोगों में विषय निर्धारित कर उनके भाषण या लिखित मंतव्य लेते थे। गोष्ठियों के बाद चर्चित विषयों पर शंका-समाधान का समय निर्धारित करते थे। इस प्रकार कहना चाहिए गोष्ठियों को सर्वांग पूर्ण बनाने का सुप्रयास भी करते थे।

गोष्ठी आयोजित होती तो डाक्टर, वकील, न्यायाधीश, अध्यापक और प्रोफेसर लोग निर्धारित प्रश्नों पर चर्चा करते इस तरह गोष्ठियों की सम्पूर्ति की जाती थी।

\+ \+ \+

मुनि श्री रामकृष्ण जी म० के अध्ययन-काल का युग एकप्रकार से विवादों व चर्चाओं का युग था। मुनि रामकृष्ण का युग कहना चाहिए समन्वय, सहिष्णुता, प्रेम सद्भाव और सामूहिक अभ्युदय एव भातृ-भाव का युगारभ था। अतः मुनि श्री रामकृष्ण जी ने अपने प्रवचनों में भी भातृभाव, समभाव सभी के प्रति आदरमान के भावों की जागृति के संदेश दिए। इनका प्रत्यक्ष प्रभाव यह हुआ कि वैष्णव धर्म परायण, आर्य समाज की विचारधारा से प्रवाहित व्यक्ति, दिगम्बर-श्वेताम्बर भेदों में बंटा जैन, व्यक्ति वर्ग-भेद को भुलाकर सभी इनके प्रवचनों में आते थे। इससे औदार्य और सौहार्द की प्रेरणा प्राप्त कर उदारता और सहिष्णुता के प्रति समर्पित भाव की दीक्षा लेकर जीवन का सच्चा दृष्टिकोण प्राप्त कर वे सहिष्णु और अन्य धर्मों के प्रति उदार भी हुए।

मुनि श्री जीवन की एक मूलभूत बात पर विशेष जोर देते थे। इनका कहना था—धर्म बदलने की या लेने-देने की वस्तु नही है। धर्म अंतर्-जागरण है। अनर्-जागरण दीवारो मे बधी होने वाली स्थूलता है ही नही। धर्म अमूर्त और अदृश्य है वह बदी नही बनाया जा सकता। इसलिए मै कहता हू धर्म बदलने वाला चोगा नही है। वह भावो की कदरा में चुपचाप तपरत बैठे तपस्वी का स्वरूप है। भावों की कंदरा से बाहर धर्म है ही नही तो बदला क्या जायेगा ?

हर्षोल्लास के क्षणो चातुर्मास सम्पन्न हुआ। रोहतक क इतिहास में यह चतुर्मास गौरवमय चतुर्मास था और रहेगा।

आंगल भाषा में प्रवचन

प्रवचनो की इस शृखला का एक उल्लेखनीय प्रसंग है—परम पूजनीय गुरुदेव योगिराज श्री रामजीलाल जी म० फरीदकोट [पंजाब] मे पधारे। यहाँ के स्थानीय जैन संघ ने महाराजा कालेज मे महावीर जयती का आयोजन किया। इस अवसर पर मुनि श्री रामकृष्ण जी म० ने अपना प्रवचन आंगल भाषा में प्रस्तुत किया। उपस्थित बुद्धिजीवी लोगों ने कहा- 'मुनि श्री की भाषा, भाषण-पद्धति और उच्चारण सौष्ठव सभी दृष्टियो से पुष्ट व प्रांजल था।

विषय प्रतिपादन तो इनके गहन-गंभीर अध्ययन को सूचित करता ही है।"

इस तरह मुनि श्री ने अपनी योग्यता, अध्ययन से सर्वत्र जैन-शासन की प्रभावना की।

स्वतन्त्रता-आंदोलन और मुनि श्री :

समूचे भारत का जन-मानस उस समय स्वतन्त्रता के लिए अकुलाहट से भर चुका था। भारतवर्ष में सर्वत्र नगर, ग्राम और कस्बों में स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए देश व्यापी लहर उठ आई थी। उस समय भी ज्ञान विदग्धों द्वारा एक प्रश्न उठाया जा रहा था -'**विरुद्ध रज्जाइ कम्मे**' अर्थात् स्वतन्त्रता-आन्दोलन राज्य विरुद्ध कार्य तो नहीं है?

मुनि श्री के सामने भी इस तरह के प्रश्न आये। किन्तु एक मेधा-सम्पन्न व्यक्तित्व ऐसे समय में चुप साध कर मौन-मुद्रा धारण कर कैसे रह सकता था? यह ठीक है मुनि-मर्यादा की विधिनिषेध रेखाओं में खड़े होकर ही इन्होंने स्वतन्त्रता-आन्दोलन मे वैचारिक यज्ञाहुति दी थी।

किसी भी जनांदोलन में विशुद्ध विचारों का गाम्भीर्य और तेज ही तो काम करता है। विचार-शून्य व्यक्ति न अध्यात्म साधना में प्रमुख हो सकता है न जन आन्दोलन-आरोहण में अग्रपद हो सकता है। स्वतन्त्रता आन्दोलन को आगे बढाने मे मुनि श्री ने कहा—जन-जन की स्वतन्त्रता अहिंसा का अंग है। यह आन्दोलन महावीर के सिद्धान्तों और उपदेशो को भविष्य में अधिकाधिक विकसित प्रसारित एवं प्रचारित करने का सुअवसर प्रदान करेगा। अत: जनता के लिए जनता द्वारा जनता का शासन प्राप्त करने में स्वतन्त्रता आन्दोलन में तन-मन-धन से सहयोग का अर्थ है अहिसा को मन, वचन और कर्मत: स्वीकार करना।

यदि अहिंसा आदि पंचशील की उपासना करनी है तो इस समय की आवश्यकता का सत्य यह कि तुम स्वतन्त्रता-आन्दोलन को

पूर्णता प्रदान करने में पूरी शक्ति से जुट जाओ। 'विरुद्ध रज्जाइ कम्मे' की यह दृष्टि नहीं है कि न्याय को छोड़कर अन्याय को स्वीकार कर लो। यह गम्भीरता से सोचने-विचारने का विषय है कि राज-धर्म क्या है ? राज-विरोधी कार्य क्या होता है। धर्माचरण की स्वतन्त्रता को छीनना—उसे छिन्न-भिन्न करना सुराज्य व्यवस्था को स्वार्थ में डुबो देना, दूसरे के जीवन को संकट में डाले रखना—ये हैं राज्य विरुद्ध कर्म। अन्याय को सहते रहना आत्महत्या अथवा वैचारिकहत्या है। महावीर न इस हिंसा को सबसे बड़ी हिंसा माना माना है। अतः स्वतन्त्रता-आन्दोलन में सक्रिय होना हिंसा नहीं अहिंसा की उपासना का साम्राज्य स्थापित करना है। अहिंसक राज्य की स्थापना को विरुद्ध रज्जाई कम्मे' नहीं कहा जा सकता।

+ + +

स्वतन्त्रता आन्दोलन को आगे बढ़ाने में मुनिश्री और गुरुदेव योगिराज श्री रामजीलाल जी म० ने वैचारिक दृष्टि से तो लोगों का मनोबल बढ़ाकर उत्प्रेरित तो किया ही, क्रियात्मक रूप से भी इस आन्दोलन में योगदान दिया। इस सत्य की साक्षी भरता निम्न घटित प्रसंग द्रष्टव्य है—

संवत 2003 ! फरीदकोट (पंजाब) !

योगिराज श्री रामजीलाल जी म० और विद्वद्रत्न मुनि श्री राम-कृष्ण जी म० विराजित थे। स्वतन्त्रता-आन्दोलन उस समय पूरे यौवन पर था। गुरु-युगल की सद्प्रेरणा से हजारों जैन अजैन गृहस्थों ने आन्दोलन को आगे बढ़ाने के लिए राष्ट्राभ्युदय के लिए धन अर्पित किया।

पूरे देश में स्थान-स्थान से सत्याग्रहियों के जत्थे स्वतन्त्रता के लिए मर मिटने का व्रत लेकर बढ़ते जा रहे थे। उस समय फरीदकोट शहर में सत्याग्रहियों के लिए निषेधाज्ञा लागू कर दी गई थी। सत्या-ग्रही जत्थे हज़ारों की संख्या में सड़कों और मैदानों में स्वतन्त्रता प्राप्ति के वीरव्रती हो कर डटे हुए थे। उसी समय प्रकृति-प्रकोप हुआ। तेज आंधी वर्षा प्रारम्भ हो गई। श्री योगिराज जी म० और

मुनि श्री रामकृष्ण जी म० ने तुरन्त जन-चेतना जागृत की और लोगों को प्रेरणा का मंत्र दिया—"सत्याग्रहियों के वस्त्र भीग चुके हैं। उन्हें दूसरे वस्त्र दिए जाने चाहिए।" इस प्रकार गुरु-युगल के द्वारा लोगों का उत्साह-वर्धन हुआ। लोगों ने यथाशक्ति सत्याग्रह-व्रतियों का वस्त्र और भोजन पहुंचाये।"

इसी समय पंडित जवाहरलाल नेहरु फ़रीदकोट पहुंचे। तत्कालीन अधिकारी ने नेहरु तक को एक लिखित आदेश प्रेषित कराया, जिसमें नेहरु के लिए नगर-प्रवेश की निषेधाज्ञा थी। नेहरु ने उसकी उपेक्षा करते हुए उसे फेंक दिया। सत्याग्रही जवानों को पुरजोर शब्दों में कहा—"जवानो, देखते क्या हो ? आगे बढ़ो !"

अपने प्रिय नेता नेहरु का संकेत पाते ही, सत्याग्रहियों ने निषेधाज्ञा की सीमा को लांघा। नगर में प्रवेश करते चले गए। निषेधाज्ञा का भंग होते ही नगर के प्रमुख स्थलों पर राष्ट्रध्वज फहरा दिए गए। सारा फ़रीदकोट तिरंगे झंडों से सज उटा।

इस समय कुछ व्यक्तियों ने यह सोचकर स्थानक के द्वार बंद कर दिए, कि सत्याग्रही लोग कहीं स्थानक में न घुस आये। गुरु-युगल ने देखा, तो तुरन्त लोगों को आदेशित किया और सत्याग्रहियों के लिए द्वार खोल दिए गए। ऐसे मे सत्याग्रहियों में से कुछ लोग स्थानक मे प्रविष्ट हो गए। तब मुनि रामकृष्ण जी म० ने कहा—तुम लोग सत्याग्रह-व्रती हो। अपने उत्साह को संकट की भयंकर वेला में भी भंग मत होने देना। आगे बढ़ते जाओ। अपने लक्ष्य को प्राप्त करो।

स्वतन्त्रता आन्दोलन के उन जलते-जागते वर्षो में केवल फरीद-कोट में ही नहीं, अपितु जहां पर भी गुरुदेव का पदार्पण हुआ, वही पर मुनि श्री रामकृष्ण जी म० ने व्यक्तितः स्वतन्त्रता-आन्दोलन को आगे बढ़ाने में नवयुवकों को उत्साहित किया। उनके विचारों को अहिंसा और स्वतन्त्रता का महत्त्व प्रतिपादित कर, स्वस्थ बनाया।

रोग का आक्रमण :

रोग का आक्रमण होता है। व्यक्ति को आहत करता है, व्यथा पहुंचाता है और लुप्त हो जाता है। हम अनुभव करते है—रोग के

[illegible]
है। इतिहास साक्षी देता रहा है, श्रुतियाँ विद्यमान् हैं—बड़े-बड़े महापुरुष भी रोग से युक्त हो गए। कृत कभी-कभी इतने प्रगाढ़ व क्लिष्ट, निकाचित होते हैं, कि द्रष्टा समझ नही पाता; सोच-सोच कर भी समाधान नहीं ढूढ पाता, कि आखिर परोपकार-रत, ज्ञानोपासक, संयम, त्याग, वैराग्य-निरत गुरुभक्त भव्य-विमल मन/आत्मा को भी किस प्रकार कर्म कष्ट देते है!

परम पूजनीय गुरुदेव, विद्वद्रत्न मुनि श्री रामकृष्ण जी म० को सन् 1948 (सवत् 2006) में 'मैंटल नर्वसनैस' का भयंकर आक्रमण हुआ। यह आक्रमण हुआ कैसे? इसका भी एक वृत्त है। उसी वृत्त को प्रस्तुत कर रहा हूं—

'सन् 1948 का वर्षाकाल श्री मदनलाल जी म०, श्री योगिराज जी म० का अपने शिष्य समुदाय-सहित मालेर कोटला (पंजाब) स्वीकृत हो चुका था। मालेर कोटला से लगभग 15 मील दूर स्थित गूजरवाल नगर का जैन-संघ अपने नगर में चातुर्मास्य-हेतु श्रद्धा-भक्ति-पूर्ण प्रार्थना लेकर आया, गुरुदेव के चरणो मे।

"गूजरवाल-संघ का स्नेहाग्रह पराकाष्ठा का था। वर्षावास स्वीकार कर चुकने पर गूजरवाल मे चातुर्मास्य हो सकने की कोई सभावना बन ही नही पा रही थी। उक्त सघ ने प्रस्ताव किया—हम विद्वद्रत्न मुनि श्री रामकृष्ण जी म० का वर्षावास अपने नगर में चाहते है। सात सत एक स्थान पर वर्षावास बिताए गे। क्या हर्ज है, दो मुनि गूजरवाल मे भी वर्षावास कर ल। श्री योगिराज जी म० ने संघ के अति आग्रह को ध्यान मे रखते हुए मुनि श्री रामकृष्ण जी म० के साथ श्री शिवचन्द्र जी म०-सहित वर्षावास की स्वीकृति प्रदान कर दी। सघ हर्षित हो गया।

स्वीकृत-वर्षावास-हेतु मुनि श्री, गूजरवाल पहुचे। प्रवचन होने लगा। मुनि श्री ने इसके पूर्व के वर्षावासो मे जैसे-जैसे कार्यक्रम किए, वैसे-वैसे यहां भी आयोजित किए। प्रातः प्रवचन, मध्याह्न मे कथा-वाचन, तीसरे प्रहर युवा पीढ़ी में धार्मिक शिक्षण, रात्रि में चर्चा-वार्ता। इसके अतिरिक्त सार्वजनिक प्रवचन, धार्मिक-शिक्षण, अध्यापन

पूरा समय जन-अभ्युदय आदि कार्यों में नियोजित कर रखा था। पर्यूषण-काल में तीन-तीन घण्टो के शास्त्र-वाचन, केशलुंचन के साथ-साथ अत्यधिक शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक परिश्रम के कारणो का संयोजन हुआ।

केशलुंचन के बाद भिक्षार्थ गए। गृहिजनों ने सयोग से सर्वत्र ही इन्हे खीर-दूध लेने की प्रार्थना की। साधु-मन ' विचार हुआ। कही आहार-ग्रहण में मुझे निमित्त-दोष तो नही लगेगा? अतः बिना आहार लिये ही लौट आए और अपने दैनिक कार्यों में संलग्न हो गए।

जिस समय यह रोग आक्रामी हुआ, उस समय मुनि श्री प्रवचन-रत थे। रोग का इतना उग्र प्रकोप हुआ, कि मुंह से एक शब्द बोल पाना भी दुष्कर हो गया।

मालेर कोटला नगर मे विराजित पूज्य गुरुदेव के पास समाचार पहुचा। उन्होने तभी सेवार्थ मुनि श्री रणसिंह जी को भेजा। रोग की गम्भीरता को देखते हुए दो-एक दिन के अन्दर ही श्री मदनलाल जी म० व स्वामी श्री फूलचन्द जी म० गूजरवाल पहुचे।

तदनन्तर उपचारार्थ मुनि श्री को चातुर्मास्य मे ही अहमदगढ मण्डी लाया गया। मुनिश्री का स्वास्थ्य अतीव भीषण कष्ट से गुजर रहा था। चातुर्मास्यान्तर भी वहा रुकना हुआ! मालेर कोटला से अन्य सन्त भी वहा पहुच गए थे।

गुरुदेव की अस्वस्थता लम्बे समय तक चली। महीनो तक मुनि श्री के मुख से शब्दोच्चारण भी संभव न हुआ।

इस भीषण रोग ने मुनि श्री के तन को तो आहत किया, परन्तु मनोबल को वह छू न सका। इसीलिए चिकित्सा-हेतु उपस्थित चिकित्सक कहा करते थे—इन मुनि मे पराकाष्ठा की सहनशीलता है। इनका यह मनोबल है, जो इस रोग में अविचल बने है। इतना भर नही, अपनी सयम-चर्या मे भी ये पूर्ण सतर्क बने रहे।

मुनियों, श्रावकों के सहयोग, असहयोग के अनेक दौर इस समय में देखने, अनुभव करने में आए, परन्तु मुनिश्री के अन्तर् में सभी के प्रति करुणा एवं मैत्री का भाव प्रवाहित होता रहा।

लगभग सात वर्ष के पश्चात् गुरुदेव योगिराज जी का हाथरस (उ०प्र०) पदार्पण हुआ। वहाँ पर वैद्य हरिनारायण जी ने उपचार किया, तब मुनि श्री कुछ स्वस्थ हो पाए।

यह स्वस्थता भी इतनी भर थी, कि मुनि श्री 15-20 मिनट तक पुनः प्रवचन करने लगे थे।

इस स्वल्प समय के प्रवचन पर भी, बौद्धिक लोगों का यह अभिमत होता था, कि मुनि श्री रामकृष्ण जी म० 15 मिनिट में इतना अधिक और गहन कह देते है, जिसे अन्य मुनि घण्टों में भी कह नहीं पाते !

गुरुदेव का लेखकीय स्वरूप :

गुजरवाल (पंजाब) के चतुर्मास्य के पश्चात् मुनि श्री रामकृष्ण जी म० का तन अस्वस्थ चलता रहा। तन भले ही बीमार रहे, परन्तु मुनि के 'स्व-पर-कल्याण की साधना तो अनवरत चलती ही रहती है। यही कारण है, कि जब भी मुनि जी का शरीर सहयोग देता, तभी ये समाज-अभ्युत्थान-परक कार्य में लग जाते। जन-जागरण, प्रतिबोध स्वाध्याय, लेखन और चिंतन में निरत हो जाते।

उन वर्षो मे ये प्रवचन तो नही कर पाते थे, किन्तु समय-समय पर अपने विचारों व चिंतन को लेखन-द्वारा अभिव्यक्त करते रहते। गुरुदेव के लेखन को हम तीन भागों में बांट सकते हैं—गद्य, पद्य और चिंतन ! प्रस्तुत में आप गुरुदेव के तीनों स्वरूपों का अवलोकन करें।

मुनि श्री रामकृष्ण जी महाराज के लेखकीय स्वरूप पर विचार करने पर हमें स्पष्ट लगता है—अंतर्बाह्य की एकरूपता का साधक, लेखक, दार्शनिक, स्थितप्रज्ञ, निस्पृह, आशा, आकांक्षा से दूर और कवि, विचारक, चिंतक—ये सारे स्वरूप एक साथ प्रतिबिम्बित हो गए हैं, मुनि श्री रामकृष्ण जी म० के लेखनों में !

लेखक के लिए कभी-कभी लिख पाना बस से बाहर हो जाता है, तो कभी न लिख पाना भी उसके बस से बाहर हो जाता है। यानि लिखना ही उसकी नीयति बन जाती है। न लिखना, उसके बस से बाहर हो जाता है। मुनि रामकृष्ण जी के साथ भी ऐसा ही होता रहा है। लम्बे समय की अस्वस्थता ने यद्यपि उन्हें नियमित तो कभी नही लिखने दिया, परन्तु उनके सामने यह विकट स्थिति प्रायः आती रही है, कि लिखना उनकी विवशता बनती रही। विवशता के दुरूह क्षणों में उन्होंने जो कुछ लिखा, वह उनके (निबन्ध-खण्ड) व्यक्तित्व को स्पष्ट प्रतिबिम्बित कर रहा है। उनका लेखन कितना प्रौढ़, प्रांजल, गहन, तल-स्पर्शी और अकाट्य है। विचारक पढ़कर चिंतन करेगा तभी पाएगा, कि इनके लेखन का विषय हमेशा दर्शन का दुर्गम बोध ही नही रहा। मामाजिक, ऐतिहासिक जन-भोग्य विषय भी उनकी लेखनी के आधार बनते रहे है। इनके लेखन को संख्या की शृंखला में बांधना चाहें, तो कह सकते हैं, शताधिक निबन्ध राष्ट्रीय स्तर के दैनिक, माप्ताहिक पत्रों में प्रकाशित होते रहे। विषयों की दृष्टि से उनका पृथक्करण करें, तो इन्होंने सामाजिक विषयों से लेकर चुनाव पद्धति जैसे विषय को भी अपनी लेखनी का आधार बनाकर, देश को स्वस्थ दृष्टिकोण प्रदान किया।

धार्मिक जगत् के अधिकार-क्षेत्र मे तो धर्म, दर्शन, इतिहास, साहित्य पुरातत्व, मानवता-मूलक दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करने वाले लेखो की बडी संख्या है। मैत्री-संदेश, मानवता का जयघोष, महावीर के मर्वोदय-तीर्थ का लम्बा लेखन विद्वन्-समाज मे चर्चा का विपय बना रहा।

इनके लेख विषय-प्रतिपादन की दृष्टि से गम्भीर और विद्वत्ता-पूर्ण हैं। ठोस और सघन लेखन, इनके गाम्भीर्य का उद्घाटन करता है। भाषा की दृष्टि से विचार करने पर, इनके निबंधों में शब्दों का सौष्टव तो है ही, साथ ही संस्कृतनिष्ठ शुद्ध शब्दों का प्रयोग ही इनके लेखन-स्वरूप को प्रतिबिम्बित करने में समर्थ हुआ है।

वार्तालाप में अनेक सुधी पाठकों ने इनसे प्रश्न पूछे हैं—गुरुदेव ! आपके लेख सघन भी हैं, कठिन भी। आप के लेखों को चलते-

चलते तो पढ़ा ही नहीं जा सकता। कभी-कभी शब्दों के हम अर्थ ही तलाशते रह जाते हैं। क्या ही अच्छा हो आप सामान्य शब्दों के माध्यम से ही अपनी अभिव्यक्ति को रूपायित करें।

ऐसे प्रसंगों पर इनका स्पष्ट उत्तर होता—"छोटे और सामान्य शब्दों का प्रयोग मुझ से नहीं होता। सामान्य शब्दों में कुछ लिखने का प्रयत्न करता हूं, तो मुझे स्वयं ही संतोष नहीं होता। मुझे स्वयं ही अनुभव होता रहता है, जो कहा जाना था, वह नही कहा गया। जो न कहने से काम चल सकता था, वह कहा गया है। जब मन में चुभी टीस ही लेखन से न मिटे, तो लिखा न लिखा मिट्टी है।

टीस का मिट जाना, लेखन का सार्थक सुख है। प्रशंसाओं का अंबार लेखक की वेदना की खाई है। लेखन प्रसशाओं को बुलबुलाहट नहीं है। वह प्रकाश का स्वय और सामाजिकों का अरुणोदय है।

गुरुदेव का कवि-स्वरूप :

कवि अपने भावों का सम्राट् होता है। कवि का जन्म दरिद्र की कुटिया में भी होता है और सम्राट् के प्रासाद में भी। दारिद्र्य मे जन्मा कवि भावों का राजकुमार या सम्राट् बन जाता है। प्रासादो का कवि ऋषि बन जाता है। मुनि रामकृष्ण को हम किस कोटि का कवि कहें ? ये सुकुमार भावों के गायक सम्राट् भी है और ऋषि भी। ये सम्राट् इसलिए हैं, कि शब्द-दारिद्र्य इन्हें पसद नही। ऋषिकवि इसलिए है, कि भगवत्-स्तुति-भक्ति, वैराग्य और निर्वेद इन्हे प्रिय है। कवि मुनि श्री रामकृष्ण जी म० ने शाश्वत आराध्य पुरुषों की स्तुतियों को संस्कृत और हिंदी भाषा मे रचकर नया स्वरूप प्रदान किया। इनकी नव्य-भव्य कल्पना से कविता सार्थक और जनभोग्य बनी है।

इस चलते प्रसंग में यह उल्लेख करना भी अनिवार्य प्रतीत हो रहा है, कि चिर अस्वस्थता के रहते हुए भी इन्होंने खण्ड-काव्य और स्फुट काव्यों का सम्यक् प्रणयन किया। स्वतंत्र रचित स्तुतियां, प्रार्थना और समाज-सुधारात्मक कविताओं का भी अपना मौलिक महत्त्व है। गुरुदेव-द्वारा रचित काव्य-कृतियों की जन-प्रियता ही यह प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त है, कि उन में शब्द और भावों का लालित्य किस कोटि का है ?



[illegible]

अनेक स्तोत्रों का हिंदी में पद्यानुवाद रचना तो महत्त्वपूर्ण है ही, परन्तु यत्र-तत्र इनकी मार्मिक कल्पनाओं ने उसमें अद्‌भुतता का अवतरण कर दिया, जो भक्त-पाठक नियमित इसका रस लेकर छंद-लयात्मक पाठ करते हैं, उन्हें पता है, कि मुनि श्री द्वारा रचे पद्योंमें वे किस प्रकार एकात्म-भाव का अनुभव करते हुए रस-विभोर हो जाते हैं।

अपने प्रवचनों में और गद्य-रचनाओं में जब-जब भी कविता का प्रसंग उपस्थित हुआ, तब-तब गुरुदेव श्री ने स्वरचित पद्यों का उल्लेख, उद्धरण, अवतरण प्रस्तुत कर प्रतिपाद्य विषय को रसवत्ता प्रदान की। इनकी कविता अनुकरण और प्रतिकृति के दोष-दारिद्रय से सर्वथा मुक्त और मौलिक है।

चिंतक-स्वरूप :

चिंतक विश्व की विभूति होता है। चिंतक बनाया नहीं जाता। चिंतक कुम्भकार के चाक में आकार पाती मिट्टी की आकृतियों का खेल भी नहीं होता। चिंतन जन्मता है। चिंतन उगता है।

प्रज्ञा-पुरुषोत्तम मुनि श्री रामकृष्ण जी म० जहां कवि और लेखक हैं, वहां वे चिंतक भी है। यूं तो प्रत्येक लेखक और कवि में चिंतन होता है। तभी कुछ लिखा जाता है। लेकिन एक चिंतन इनसे भी ऊपर होता है। वह ऋषि-प्रज्ञा से अवतरित होता है। इसी से आध्यात्मिक और दार्शनिक धाराओं का अमृत बहा करता है।

चिंतन आत्मा की जागृतावस्था है। यही ऋषित्व है, यही मुनित्व है। मुनि श्री रामकृष्ण जी म० का चिन्तन सदैव नव-नवोन्मेषगामी है। कहना चाहिए—इनके अन्तर् से चिंतन की अजस्र त्रिपथगा सदैव बहती रहती है।

ऋषियों या मुनियों के चिंतन में कालजयी होने का अपौरुषेय गुण होता है। वह इसलिए होता है, कि मुनि आंखे बन्दकर, कान बन्द कर और अपने मन को अगति बनाकर दुनिया से दूर एकांत में जो काल की धड़कनों को सुनकर, देखकर, छूकर अनुभव कर लेते हैं, उसके बाद ध्यान खोलकर जग-कल्याण के जो सूत्र देते हैं, उन्हें हम

करते और उनमें संस्कार-निर्माण की दृष्टि से, वैज्ञानिक पद्धति से अध्यापन व शिक्षा का मूलभूत कार्य करते। नियमित संबोधि-सभा का कक्षा-स्तर पर आयोजन करते। बालवर्ग में बच्चों के मापदण्ड के आधार पर नवकार मंत्र, सामायिक-पाठ, गुरु-वन्दन-पाठ की संबोधि प्रदान करते। युवा-वर्ग में जैनत्व के स्थायी संस्कारों के रोपण के लिए पच्चीस बोल, नवतत्त्व बोध, छब्बीस द्वार, तत्त्वार्थ-सूत्र का विवेचन प्रतिक्रमण की आवश्यकता आदि विषयों की संबोधि देते

इस प्रकार पीढ़ियों के युग-संधि मोड़ पर उन्हें संस्कारों की दृष्टि से जैनत्व में स्थिर व दृढ़तर रखने का महनीय कार्य किया। इस क्रम में उल्लिखित माध्यमों को कंठस्थ कराना भी होता था। साथ ही उनका नियमित वाचन और आवर्तन भी परिगणित था। अध्येता अधिगृहीत कितना आत्मसात् कर पाया है, इस दृष्टि से समय-समय पर प्रतियोगितायें भी आयोजित करते। कभी सामायिक-दिवस, कभी सामूहिक आयंबिल आदि उत्सव के रूप में संयोजित कर उनमें धर्म-निष्ठा व संस्कारों के बीजारोपण का कार्य करते रहे।

इस प्रकार के कार्यों की सर्वाधिक विशेषता यह होती थी, कि संबोधि के समय में कोई विद्यार्थी हंस पाने तक के निषेध को स्वीकार कर, कक्षा में प्रवेश लेता था। यह क्रम इन्होने लम्बे समय तक चलाए रखा। जीद, रोहतक, मूनक, पटियाला, खरड़ आदि विविध क्षेत्रों में इनसे संबोधि-प्राप्त गृहि-जीवन मे प्रवेश पा गए पीढ़ियों के दशको में खडे लोग आज भी जब-तब मिलते है, तो गुरुदेव का गुण-कीर्तन करते नही थकते। उनके मुंह से लेखक ने स्वयं अनेक बार सुना है, कि गुरु महाराज ने हम लोगो को जिन संस्कार-बीजो से समृद्ध किया है, उन्ही का परिणाम है, कि हम भटकाव के हर प्रसंगों को दृढ़तापूर्वक ठेल कर अपने धर्म में दृढ और स्थिर रह पाते है।

\+ + +

संस्कारों के इस बीजारोपण के साथ-साथ गुरुदेव ने अपने संपर्क में आने वाले युवकों को आगे बढने की प्रेरणा भी दी। कई व्यक्ति जो लेखक के परिचित हैं, असमय में ही अध्ययन छोड़ बैठे थे, उन्हें गुरुदेव ने संम्प्रेरित कर पुनः अध्ययन में लगाया।

प्रज्ञा-पुरुषोत्तम मुनि रामकृष्ण

चिंतन कहते हैं। तो चिंतन में यह शक्ति सन्निहित होती है, कि वह अनन्त आगे आने वाले काल-क्षणों की धड़कनों को पहले सुनते हैं तब कहे जाते हैं। मुनिरामकृष्ण का चिंतन भी ऐसा ही है। आप अनुभव करेंगे, कि चिंतक गुरुदेव ने काल की धड़कनों को सुनकर उन्हें किस प्रकार अपने चिंतन में आरोपित किया है। और वह चिंतन धर्म और दर्शन की कैसी अद्भुत परिभाषा बन गया है !

चिंतक मुनि श्री रामकृष्ण जी म० के चिंतन-कणों को मस्तिष्क में अंकुरित होने के क्षण तलाश लीजिए ! आप फिर देख पायेंगे, चिंतन बीजों की जीवंतता !

जन-जन के आश्रय, अभ्युदय, तथा सुख को बरसाने, सघन छाया वाले, मधुर रसाल की अनुभूतियों को जगाने वाला कल्पवृक्ष है मुनि श्री का चिन्तन !

संस्कार-दीक्षा :

प्रज्ञापुरुषोत्तम मुनि श्री रामकृष्ण जी म० ने पीढ़ियो के भटकाव को अत्यन्त गम्भीरता से अपने मानस मे आंका। इन्होंने अनुभव किया कि व्यक्ति में सस्कारों का बीजारोपण अन्यन्त आवश्यक है। जैन-कुल मे किसी भी व्यक्ति का जन्म ले लेना ही पर्याप्त नही है। जब तक उसमें पूरे जीवन को किस प्रकार के ध्रुव विचारो को केन्द्र बनाकर जीने का गांभीर्य नही आएगा, तब तक वह पद-पद पर भटकाव के रास्तो पर अपने को खड़ा पाएगा और भटक भी जाएगा। अतः पीढ़ियों में जो दशकों का वयसधी मोड़ है उस पर सद्विचार, सद्-आचार, शुभसंकल्प, सहिष्णुता, निष्ठा, श्रद्धा आदि की अंतः सुखात्मक हरितिमा नही लहलहाती दिखाई देगी तो पीढ़ियाँ संस्कारो की दृष्टि से भटक जाएंगी। यही कारण है, कि गुरुदेव ने पीढ़ियो के युग-बोध को अपने चिंतन की निकष पर परख, कतिपय कार्यक्रम निश्चित किये। उन कार्यक्रमों मे क्या-क्या करणीय था, क्रमशः उसी का उल्लेख किया जा रहा है···

श्रद्धेय योगिराज श्री रामजीलाल जी म० जहाँ-जहाँ वार्षावासी होते, वहाँ-जहाँ पर मुनि रामकृष्ण युवा-वर्ग और बाल-वर्ग को संयोजित

आज कितने ही व्यक्ति जो देश-विदेश में इंजिनीयर, डॉक्टर जैसे सम्मानित पदों पर प्रतिष्ठित हैं। वे गुरुदेव की कृपा से ही इन पदों पर पहुंच पाए हैं।

अर्थाभाव के कारण जो विद्यार्थी अध्ययन छोड़ बैठे थे, उन्हें छात्र-वृत्ति दिलवा कर, गुरुदेव ने आगे बढ़ने को प्रेरित किया। बी०ए०, एम०ए० तक के विद्यार्थियों को इन्होंने स्वयं अध्यापन कराया। स्कूल कॉलेज के छात्र जब विषय को अधिगत न कर पाते थे, ऐसे विद्यार्थी गुरुदेव से पढ़ने को आते थे। संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी, व्याकरण, छन्द-अलंकार आदि विषय अनेक विद्यार्थियों ने गुरुदेव से अधिगत किये हैं।

नारी-वर्ग को भी गुरुदेव ने शिक्षा के क्षेत्र में आगे बढ़ाया। जिन छात्राओं के माता-पिता रूढ़ संस्कारों के कारण अपनी बालिकाओं को अधिक शिक्षा दिलाने के हक में नहीं थे, उन्हें समझा कर सम्यक् दृष्टिकोण दिया।

भौतिकवाद के इस भटकाव के युग में गुरुदेवश्री, द्वारा किया गया संस्कार बीजारोपण का कार्य आने वाली मुनि-परम्परा की पीढ़ी भी करे। गुरुदेव आज भी ऐसा सोचते-विचारते हैं और मुनियों को संप्रेरित करते रहते हैं।

शिष्यता की दीक्षा :

शिष्यता बांटी जाती है। गुरुत्व नहीं। बांटने वाला, लुटाने वाला गुरु होता है। ग्रहण करने वाला शिष्य होता है। कुछ गुरु गुरुमंत्र देकर शिष्य बनाकर, दक्षिणा की अपेक्षा करते हैं। उन्हें गुरु नहीं कहा जा सकता। उन्हें भिक्षार्थी कहना सार्थक है। जो लुटाने बैठा है, उसे प्रभुता, सम्पन्न माना जाता है। जो ग्रहण करने को सन्नद्ध है, वह दीक्षार्थी है। लुटाने की क्षमता, योग्यता, पूर्णता उसमें होती है, जो आर्षवाणी के अमृत में रचा हुआ है। वह कितना ही लुटाए फिर भी अखूट, अक्षय और अनंत रहता है। उस प्रभुता-सम्पन्न महापुरुष को हम गुरु कहते हैं।

महावीर जैसे महापुरुषों के विचारों में जिसके मन का अणु-अणु भीगा हुआ है, उसी को अधिकार होता है शिष्यता प्रदान करने का। मुनि रामकृष्ण जी ने महावीर और उनकी वाणी को आत्मसात् किया। उसे अन्तर् में जीकर देखा। पाया कि यह अमृत अकेले पचाने के लिए नही है। इसे हजार हाथों व शत मुखों से बखेर कर, कहकर, जो पाया है, उसकी खुशी को, आनंद को लुटाकर उत्सव आयोजित करना चाहिए। इसी अमर प्रेरणा को प्रसारित करने की दृष्टि से गुरुदेव प्रज्ञा-पुरुषोत्तम मुनि श्री रामकृष्ण जी म० ने महावीर की वाणी को 'सच्चे गुरु' सच्चे देव और सच्चे धर्म की दीक्षा (गुरु धारणा) देकर जन-जन को महावीर एवं उनकी जगत्-कल्याणी वाणी में आस्थावान् बनाना शुरु किया। इसी शुभ सकल्प से अनुप्रेरित होकर इन्होंने इस कार्य को एक अभियान, आन्दोलन, क्रांति, मिशन का रूप दिया।

यही कारण है, कि इन्होंने इस अभियान को असीम बनाया। पुरातन और अद्यतन मुनि भी इस कार्य को करते रहे, परन्तु जन-जन मे प्रसारित करने का अभियान उन्होंने नही किया। मुनि श्री राम-कृष्ण जी म० ने इस अर्जन-वर्ग मे भी प्रभत मात्रा मे किया। जन-जन तक महावीर प्ररूपित देव, गुरु-धर्म को त्रिधारा को 'गुरुधारणा' के सगम के माध्यम से अजस्रधारा के रूप में अव्याबाध प्रवाहित किया। यही कारण है, कि अजैन-वर्ग मे ये गुरुदेव' नाम से अभिहित किए जाते है। इसकी 'गुरु-धारणा' से अभिमंत्रित वर्ग जितना सम्प्रदाय व जाति-भद के द्वन्द्वो से रहित है, उतना शायद अन्यत्र कही देखने को मिले ?

इन्होने 'गुरु-धारणा' देते समय यह नही देखा, कि देव-गुरु-धर्म मे दीक्षित किया जाने वाला, अग्रवाल है, ब्राह्मण है, या कुछ और है। जाति-कुल की दृष्टि से वह जैन है, अजैन है, क्षत्री है, ब्राह्मण है। जुलाहा है, मोची है, हरिजन है, खटीक है, सवर्ण या फिर अवर्ण है ·· इनके विमल मानस मे बस एक ही लक्ष्य रहा है, कि सच्चे देव, सच्चे गुरु और सच्चे धर्म मे व्यक्ति को दीक्षित-शिक्षित किया जाये।

कतिपय लोगो ने मुनि श्री रामकृष्ण जी म० के इस अभियान की आलोचना भी की। परन्तु आलोचना-प्रत्यालोचनाओं से जो प्रभावित,

कम्पित हो जाए, ऐसा इनके अंतर् का साधुत्व नहीं है। इसीलिए हजारों-हजार जन-समूह तक को इन्होंने गुरु-धारणा के माध्यम से महावीर की आत्म-कल्याणी वाणी से उन्हें परिचित कराया। उनके हृदयों को अहिंसा-सत्य करुणा, परोपकार मानवता से आप्लावित किया। उनकी चिंतन-पद्धति में अनेकांत को प्रतिष्ठित कर उन्हें सच्चा जैन बनाया। मनुष्यता को जागृत करने का मंगल-कार्य किया। इसी स्वीकृत का शुभ परिणाम है, कि ये जहाँ-जहाँ भी गए, जाते है, वहाँ-वहाँ पूरे-पूरे दिन जैनों की अपेक्षा शिष्यता-प्राप्त, गुरु-धारणा किए अजैन स्त्री-पुरुषो का जनार्णव-सा उमडता हुआ दृष्टिगत होता रहता है। ये जहाँ-जहाँ जाते है, वहाँ-वहाँ अजैन-वर्ग-समूह का जनार्णव क्यों न उमडे, जब उनके गुरुदेव उनके नगर, ग्राम में पधारे हों!

इस प्रकार जाति-भेदभाव-रहित निष्पक्ष भाव से इन्होंने शिष्यता प्रदान कर पुनः उस वर्ग-समूह से कोई वास्ता न रखा हो, ऐसा भी नही। समय-समय पर उन लोगों को बराबर धर्म-सदश प्रेषित कर, सम्पर्क सूत्र बनाए रखा। कतिपय लोगों ने इनके इन महनीय कार्य की छुपे तौर पर तो कभी प्रकट रूप में भी आलोचना की। इन्होंने इसे सुनकर भी अनसुना, न सुना इसी लिए किया, कि जिन लोगों को जैनत्व की दीक्षा दी है, उनसे समय-समय पर सूचना-साहित्यादि के माध्यम से सम्पर्क बनाए न रखा तो सम्बोधि-प्रदान करने का अर्थ ही क्या रह जाएगा? मुनि के लिए महावीर ने ग्राम-ग्राम, नगर-नगर में विचरण, विहार करते रहने का आदेश प्रदान किया है। उसका मूलार्थ भी यही है, कि मुनि जिसे जागरण प्रदान करता है उसे पुनः पुनः सजग करते रहने की दृष्टि से 'गामानुगाम विहरज्जइ' का निदेश दिया है महावीर ने।

ऐसे प्रसंगो पर गुरुदेव का दृष्टिकोण भी यही रहा—विश्व जो कहे, कहने दो, महावीर की देशनाओं को आत्म-साक्षी से प्राण-शक्ति से प्रचारित-प्रसारित करना है।

गुरुदेव-द्वारा प्रदत्त सबोधि का ही परिणाम है—हरिजन-महिलाओं ने जैनों के कठिन व्रत (अठाई) तक किए। जो हाथ शूकर आदि पशु-

हिंसा के रक्त से रंगे रहते थे, उन हाथों में आनुपूर्वी हो, सामायिक-पाठ की पुस्तक हो, नवकार मंत्र जपने के लिए मालाएं आ गई हों··· इससे बढ़ कर गुरु-धारणाओं की बखेर करने वाले गुरु की अंतहीन खुशी क्या हो सकती है ? इस आनन्द के सामने चुटकी भर आलोचकों की आलोचना में कोई गुरुता नहीं, वैचारिकता नहीं है, ऐसा मान कर चादर को झाड़ लेने की तरह उनकी आलोचनाओं को झाड़ कर ये अपने कार्य को करते ही चले गए।

पंजाब, हरियाणा, देहली उत्तर प्रदेश में आज भी देखा जा सकता है। दशकों के अंतर से जो पीढ़ियां तैयार होती हैं, उनमें गुरुदेव मुनि श्री रामकृष्ण जी म० के गुरु-स्वरूप का स्मरण करते, नाम जपते, इनके उपकार को स्वीकारते समूह-के-समूह उपलब्ध हो जाएंगे।

पतित-पावन गुरुदेव मुनि रामकृष्ण :

प्रश्न है—व्यक्ति पतित है या कर्म उसे पतित करते हैं ? व्यक्ति का अर्थ है 'आत्मभाव' ! आत्मा का स्वभाव अपतित है। 'परभाव' उसे पतित करते हैं। इसी परिभाषा ने एक दूसरा प्रश्न फिर खड़ा कर दिया—पतन का सम्बन्ध जन्म-जाति से है या कर्म से ! तीर्थंकर महावीर ने इस प्रश्न का उत्तर दिया था—व्यक्ति, आत्मा मूलतः अपतित है। किसी भी जाति में जन्म पतन का कारण नहीं है। इसी बात को दूसरे शब्दों में भी कहा गया है—व्यक्ति को अच्छा-बुरा कहने का हमें अधिकार ही नहीं है। अच्छे कर्म करने वाले को अच्छा और बुरा कर्म करने वाले को बुरा कहा जाता है, किन्तु किसी जाति-विशेष में जन्म लेना अच्छेपन और बुरेपन की कसौटी नही है।

—यह दृष्टि विश्व को महावीर ने दी ! इसी दृष्टि को मुनियों ने स्वीकार किया। अपनी मति और क्षमता के अनुसार वे जीवन भर इसको व्याख्यायित करते हैं। परन्तु आश्चर्य है, कि महावीर के जिस दृष्टिकोण को उनके अनुयायी वर्ग ने स्वीकार किया था कालांतर में, वह स्वयं जातिवाद के पंक में फंस गया।

आज जैन समाज भी कितने जाति व उपजातियों के विवर्त में फंसा हुआ है। महापुरुष जिस बात का विरोध करते-करते अतीत

[illegible] हैं। संत कबीर ने नगरों के गलो-चौराहों और भीड़भरे हाटों में चिल्ला-चिल्लाकर जातिवाद का विरोध किया। उनके अनुयायियों ने जातिवाद को अपना लिया। यह केवल कबीर के साथ नहीं सभी महापुरुषों के साथ ऐसा हुआ।

ऊपर हम महावीर के अछूतोद्धार सम्बन्धी एवं जातिवाद के विरोध की चर्चा को समझ कर आए हैं। गुरुदेव मुनि श्री रामकृष्ण जी म० के अंतर में महावीर के सिद्धांतों क प्रति कितनी आस्था और कार्य-क्षमता है? कतिपय घटना प्रसंगों के माध्यम से हम समझने का प्रयास करें और गुरुदेव को दृष्टि को महावीर-सम्मत बनाकर निर्मल बनाने का सुप्रयास करें।

○ ○ ○

मुनि श्री रामकृष्ण जी म० देहली के चांदनी चौक स्थित-महावीर भवन में रुके हुए थे। परिभ्रमण के लिए बाहर जाते, यह नित्य का क्रम था। वहां रास्ते में एक जमादार मिलता, वह सड़क पर झाड़ू लगा रहा होता, मुनि श्री को दूर से आता देखता, तो झाड़ू लगाना बन्द कर देता। मुनिवर जब उसके समीप आते वह सश्रद्ध नमस्कार मुद्रा में खड़ा हो जाता। मुनि श्री जब तक आखो से ओझल नही हो जाते, तब तक वह निरतर नमस्कार-मुद्रा में ही खड़ा रहता।

मुनि श्री ने देखा जमादार, जाति के प्रभाव व जन्म-सस्कार से विद्ध होने के कारण दूर-दूर रहता है। एक दिन मुनिवर उसके सामने रुक गए। बोले तुम्हारे मन में सत-चरण-स्पर्श की इच्छा हो, तुम चाहो, तो चरण छू सकते हो! इसमें मुझे कई आपत्ति न होगी।

जमादार ने मुनि श्री के स्नेह व वात्सल्य से भरे वचन सुने तो श्रद्धाभिभूत हो गया। बोला– "महाराज! मै जमादार हू। मैं चरण छू सकता हू –मुझे पाप तो नही लगेगा? और आपको भी पाप तो नही लगेगा?"

'बिल्कुल नहीं लगेगा। जब तुम सत-चरण छूना अच्छा समझते हो, तो पाप क्यों चढ़ेगा! रविदास व वाल्मीकि संत बन गए थे, तो

[illegible]
रहा !" जमादार मुनि श्री की बात सुनकर गद्‌गद् हो गया। प्रतिदिन मुनिवर के वह अपना काम छोड़कर चरण भेटता और अपने अंतर में धन्यता अनुभव करने लगा। अनेक दिन इस तरह बीत गए। एक दिन मुनि श्री ने अत्यन्त आत्मीय भाव से कहा—"मैं तुमसे एक बात कहना चाहता हूं। करोगे वैसा ?" जमादार तो जैसे खुशियों नहा उठा। बोला—महाराज ! क्यों नही ! आप तो हम लोगों के कल्याण के लिए ही कहेंगे।

मुनि श्री बोले—'तुम शराब पीना छोड़ दो। मांस खाना तज दो।' जमादार ने कहा—महाराज ! छोड़ दिया, आज से। पृथ्वी माता की सौगन्ध खाता हूं और आप के चरण छूता हूं।' फिर उसने दोनों हाथ कान से लगाए। बोला—आज से ऐसा नहीं करूंगा। मैं अपने परिवार को भी ऐसा न करने देने के लिए प्रयत्नशील रहूंगा।

ooo

अशोक विहार [दिल्ली] में गुरुदेव ठहरे हुए थे। जिस मकान में ठहरे थे, वहा सफाई करने एक जमादार आता था। गुरुदेव ने एक दिन उसे अपने समीप बुलाया। आत्मा-परमात्मा और सत्संग के महत्व का प्रतिपादन कर उसे शराब-मास का त्याग करवाया। मानव-जीवन का महत्त्व समझाया, गुरु मन्त्र दिया। जमादार ने गुरु महाराज का चित्र प्राप्त किया। अपने घर में लगाया। अब वह कहता है महावीर स्वामी मेरे आदि गुरु है। महावीर स्वामी ने अछूत-उद्धार का पहली बार संसार को उपदेश दिया था। गुरुदेव श्री रामकृष्ण जी म० की कृपा से मैं भी उनके संघ का सदस्य बना हूं।

ooo

हरियाणा के जीद नगर में, 1975 में सन् गुरुदव श्री वर्षावासी थे। प्रातः नर्म-नर्म धूप में नगर के कोलाहल से दूर परिभ्रमण के लिए जाना इन्हें प्रारम्भ से इष्ट रहा है। एक दिन परम निष्ठावान 'रामू' नामक

गृहस्थ शिष्य को साथ लेकर घूमने गए। लौटते में गुरुदेव हरिजनों के मोहल्ले की ओर मुड़े। साथ-साथ चल रहे रामू ने कहा—गुरुजी इधर चलना ठीक नहीं है, यह हरिजनों, जमादारों का मोहल्ला है।' गुरुदेव ने बड़े सहज भाव से कहा—"तो क्या हुआ ? हरिजन तो हरिभक्त होते हैं। महावीर ने तो कहा था—मानवता का महानद सभी आत्माओं में प्रवाहित हो रहा है।" इतना कहते हुए हरिजनों के मोहल्ले से अतीत होने लगे। कुछ वृद्ध हरिजन मुनि को आते देख, खाट छोड़कर उठे। नमस्कार किया। विनम्रता से बोले—महाराज ! उधर से पधारिये, वह रास्ता महाजनों के मोहल्ले का है।

मुनि श्री ने कहा—"रास्ता कहीं भी जाता हो। पर मैं इस मोहल्ले में तो मात्र तुम्हारे लिए आया हूं।" पलक झपकते-मोहल्ले के सभी स्त्री-पुरुषों की भीड़ जमा हो गई। गुरु महाराज ने खड़े-खड़े ही संक्षेप में अहिंसा का स्वरूप प्रतिपादित किया और कहा—प्रवचन सुनने आया करो। महावीर के सत्संग-सभागार में महाजन और हरिजन में भेद नही बरता जाएगा।

मोहल्ले के हरिजन बन्धु और वहनो ने कहा—"हमारे घर-आगन में आज तो भगवान् उतर आए है।" वे दूर तक गुरु महाराज को छोड़ने आए।

○ ○ ○

अमी नगर सराय (उ० प्र०) में सन् 1978 का वर्षावास काल था। नगर के मुहाने पर एक मोचो की दुकान थी। वह प्रतिदिन गुरुदेव को आते और जाते जब भी देखता जूता गांठना छोड़कर दूकान से नीचे उतरता और झुककर प्रणाम करता। जब गुरुदेव, ने बताया कि मुनि के चरण कोई भी छू सकता है। मुनि किसी को चरण छूने से रोकते नही है। वह चरण छूता और कहता महाराज हम पापियों के उद्धार की भी कोई बात बताइए। गुरु महाराज ने संक्षिप्त उत्तर दिया—'प्रवचन सुनने आया करो। औरों को भी सत्संग सभा मे लाना।' एक दिन लेखक ने देखा—लगभग 30-35 चर्मकार बन्धु प्रवचन के समय आए। बिछी हुई दरी से दूर कोने में सिमटे से वे बैठने लगे। तभी गुरु महाराज ने कहा—"तुम लोग वहां कोने में



कृपावर्षण करते- [illegible]देव

क्यों बैठ रहे हो ? दरी आने वाले सभी लोगों के लिए बिछाई गई है। यहाँ सामने आकर सब के साथ बैठो। यह महावीर के विचारों का सत्संग-स्थल है। इसमे व्यक्ति-व्यक्ति के भेदभाव को मिटाने का उपदेश दिया जाता है।'

गुरुदेव के आत्मीय वचन में बधे वे प्रतिदिन प्रवचन-सभा मे आने लगे।

○ ○ ○

इसी प्रकार एक अन्य स्थान पर भी ऐसा हुआ। गुरुमहाराज का सुधारक-उद्धारक मुनि-मन इधर-उधर आते जाते, गाव की पगर्दाडयो पर, स्थानकों से दूर की उपवस्तियों मे हरिजन, खटीक धीवर, चर्मकार या फिर कोई भी दरद्रिता मे घिसता हुआ साधारण, व्यत्ति मिलता जिसे जीवन जगत आत्मा-परमात्मा का कभी विचार तक नही आया हो, ऐसे व्यक्ति को भी प्रवचन सभा मे आने की प्रेरणा देते। एक दिन ऐसा हुआ, कि कुछ अपरिचित लोग प्रवचन मे उपस्थित हो गए। स्थानीय जैन लोगो को उनकी वेषभूषा देखकर उन्हे अपने बराबर मे बिठाने से भी गुरेज करते अनुभव किया, तो मुनि श्री ने तुरन्त उन लोगो को निर्भीक भाव से कहा—

यह महावीर के विचारो की समवसरण-सभा है। इसमें गरीब, अमीर, धनी, निर्धन जाति, उपजाति का भेदभाव-भरा भ्रम नही है। इस पर सभी को अभ्युत्थान करने का समान अधिकार है।

अस्तु, इस प्रकार गुरुवर मुनि श्री रामकृष्ण जी म० ने हरिजनों, खटीको के बाच जा-जाकर व्यक्ति-रूप से शराब-मांस-सेवन न करने की प्रतिज्ञाएं समय-समय पर दिलवाईं। धीवर, कहार आदि पेशे से मछली पकड़ने का धन्धा करने वाले लोगों को अहिंसक व्यवसाय अपनाने की प्रेरणा दी। हरिजनों को शूकरों व अन्य पशुओं का वध करने से रोका। देवी-देवताओं पर पशुओं के बलिदान को रोका और उन्हें सच्चे देव का स्वरूप समझाया।

व्यक्तिशः मुनि श्री ने महावीर के अछूतोद्धार अभियान को आगे बढाने में जितना काम किया है, उन सब का उल्लेख किया जाए, तो

'हरि अनंत हारकथा अनंता' की तरह कहते ही रहो। कार्यों के आंकड़े जुटाते रहो। घटित घटनाओं से पृष्ठ के पृष्ठ अंकित करते रहो, फिर भी 'हरि अनन्त हरिकथा अनन्ता' की तरह समाप्त नहीं हो सकता है, मुनि रामकृष्ण का, महावीर-द्वारा चलाये अभियान को अग्रसरित करने की दिशा में किया गया कार्य।

इससे बढ़ कर और क्या उत्कृष्ट उदाहरण हो सकता है? इस अभियान के प्रति कि मुनि श्री ने हरिजन बच्चों में साक्षरता के बोध से लेकर नमोक्कार मंत्र का अहर्निश पाठ करवाना प्रारम्भ करवा दिया। इस वर्ग की महिलाएं सामायिक उपासना करने लगीं। व्रत-उपवास भी सामान्य आचारवत करने लगीं। इतना ही नहीं, हरिजन-वर्ग की महिलाओं में कतिपय महिलाओं ने अठाई व्रत तक किया।

यहां एक संक्षिप्त समीक्षा करना इष्ट लग रहा है। मुनि श्री ने व्यक्तितः इतना सब कुछ किया, परन्तु सामाजिक दृष्टि से देखा जाए, तो मुनि श्री के द्वारा दी गई प्रेरणा व सम्बोधि के पश्चात् महावीर में आस्थावान् बने वर्ग को समाज ने कितना अपनत्व प्रदान किया? यह एक ऐसा प्रश्न है, कि महावीर की मुक्त आत्मा तक इसका समथन करेगी और कहेगी कि सामाजिकों को भी उन्हें अपनत्व प्रदान करना चाहिए था।

यहां ऐसे तत्त्व तो मिल जाते है जो यह कहते है—मुनि रामकृष्ण हर राहगीर, हरिजन तक को धर्माराधन एवं उपवास और आयंबिल करने को प्रेरित कर देते है। बेचारे वे क्या जानें आयबिल के महत्त्व को। प्रश्न खड़ा है—जो महत्त्व को जानते हैं, वे क्या करते है महावीर के मिशन को आगे बढ़ाने में?

समाज अभ्युदय

व्यक्ति और समूह!

ये दो अस्तित्व है। समूह या सघ व्यक्ति-व्यक्ति से जन्मता है। व्यक्ति के बिना समूह का अस्तित्व नही होता। समूह के अभाव में व्यक्ति का अस्तित्व तो बना रहता है परन्तु उसका हित समूह में पनपता है। समूह को प्रतिष्ठित करने का अर्थ है—व्यक्ति-व्यक्ति का हित, किन्तु व्यक्ति को प्रतिष्ठित करने का अर्थ है—शेष सबका

अहित। दूसरों के विनाश पर अपने सुख की खेती उगाना अधःपतन है।

मुनि श्री रामकृष्ण जी म० ने अपने जीवन में सामाजिक धार्मिक अथवा राष्ट्रीय जो भी कार्य किया, उसमें पहले इस दृष्टि से विचार किया, कि इस कार्य से लोकमंगल या समष्टि का हित कितना हो पाएगा। व्यक्ति-हितों को छोड़ कर इन्होंने सदैव समष्टि-हित को महत्त्व दिया।

यद्यपि लम्बी अस्वस्थता के कारण इनका विचरण-क्षेत्र भौगोलिक दृष्टि से बहुत विशाल तो नहीं है, किन्तु जितना है, उसमें समाज, अभ्युदय मूलक कार्यों का अपने आप में एक इतिहास बनता चला गया है।

लोक-कल्याण को ध्यान में रखते हुए, मुनि श्री ने पुस्तकालय खुलवाए, डिस्पेंसरियाँ खुलवाईं। इसके साथ-साथ कार्यकर्त्ताओं को दृष्टि प्रदान की —भेदभाव-रहित होकर लोक कल्याण को लेकर तुम चलो। अभावग्रस्त व पिछड़ी जातियों को भी इससे लाभान्वित किया जाए।

'आई-कैम्पों' की प्रेरणा और संयोजनों के पीछे भी इनका लोक-मंगलकारी चिंतन काम करता रहा। यही कारण है कि जैन स्थानकों के निर्माण और धर्मशालाओं के निर्माण की प्रेरणा के पीछे भेद-दृष्टि को स्वीकार नहीं किया। जैन स्थानकों के शिलान्यास हुए तब, और धर्मशालाओं के उद्घाटन-प्रसंग उपस्थित हुए तब, इन्होंने दोनों प्रसंगों पर एक ही व्यापक दृष्टि दी और कहा—स्थानकों में प्रभुपासना होनी चाहिए। स्थानक सामूहिक हित, अभ्युदय का साधना-केन्द्र है। धर्मशाला सामूहिक सुविधाओं के केन्द्र होते हैं। जिस दिन स्थानकों में भेदभाव की रेखाएं उभर आएंगी, उसी दिन इन स्थानकों और धर्मशालाओं का लोकमङ्गलकारी स्वरूप नष्ट हो जाएगा। उस अवस्था में ये निर्माण स्मारक, चिन्ह-तो बने खड़े रह सकते हैं, परन्तु इसमें से लोक-मंगल की आत्मा निकल जाएगी।

संघ के महत्त्व को और स्नेह-सौजन्यता को इन्होंने हमेशा प्रतिष्ठित किया। किसी भी क्षेत्र में अहंमन्यता से ग्रसित लोगो के टकराव के प्रसंग आए, तो हमेशा इन्होंने संघ-हित को प्रमुखता देकर उन लोगों को व्यक्ति रूप से समझाया, कि अहं तुम्हारा कभी कल्याण नहीं करेगा। मनुष्य सामाजिक प्राणी है। समाज को साथ लेकर वह आनन्दपूर्वक जी सकता है। अहं रेत की दीवार पर खड़ा खंडहर है। उसमें स्थायित्व नहीं होता। जिस कार्य के पीछे चुटकी भर लोगों का हित गर्भित होता है, वह ढह जाने के लिए ही है। समष्टि का हित जिस कार्य के पीछे गुम्फित होता है, वही कार्य स्थायी महत्त्व की कोटि में आता है। अत व्यक्ति-हित का दृष्टिकोण त्याज्य है। हेय को नही, उपादेय को अपनाओं।

विग्रह पूरे भारत की समस्या है। जैन समाज विग्रह से अलिप्त नही है। संख्या में स्वल्प होकर भी उसमें पारस्परिक द्वन्द्व प्रचुर-मात्रा में विद्यमान है। दिगम्बर, श्वेताम्बर, स्थानकवासी, तेरापथी आदि समुदायों मे तो वह विभक्त है ही। इन समुदायों के अनुयायियो में भी परस्पर समन्वय नही है। इस चर्चा मे स्थानकवासी समाज को लेकर कुछ सोचें—स्थानकवासी समाज के अधिकाश क्षेत्रीय संघों मे दो दो दल पनपते जा रहे है। परस्पर खींचतान बनी रहती है।

गुरुदेव विद्वद्रत्न मुनि श्री रामकृष्ण जी महाराज, जहां-जिस स्थान पर पधारते है, वहां समन्वय का सन्देश लेकर जाते है। कितने ही स्थानो के कलह इन्होंने मिटाए हैं। अपनी प्रतिष्ठा की अभिवृद्धि के लिए इन्होंने वैमनस्य को कभी प्रोत्साहन न दिया।

इस चर्चा में यह उल्लेख करना भी प्रासंगिक है—कि अनेक टूटते परिवार इनकी सम्यक् दृष्टि को प्राप्त कर अचल हुए है। यही कारण है, कि गुरुदेव के चरणो में आज साम्प्रदायिक भेदभाव को विस्मृत कर सभी वर्गो के, सभी जातियो के लोग पहुंचते है। गुरुदेव के चरणों मे समन्वय का अद्भुत संगीति लगती है जिससे समाज एवं राष्ट्र के अभ्युदय का सुमधुर स्वर प्रस्फुटित होता है।

संघ-संगठन और गुरुदेव

मुनि इस धरा पर जीने वाली अद्भुत सत्ता है। उसका पूरा जीवन ही जगत् की आंखों में उलटा है! गृही घर बनाने, बसाने की सोचते-सोचते थक आया है। साधु ने हमेशा ही कहा है—'जो घर फूंके आपनो चले हमारे संग।' कुछ इसी तरह का घटता चला जा रहा है गुरुदेव मुनि श्री रामकृष्ण जी म० के जीवन, साधना, त्याग, वैराग्य और सघ संगठन के सम्बन्ध में भी। भारत के एक सन्त ने कहा—

न काहू से दोस्ती, न काहू से वैर!

गुरुदेव मुनि श्री रामकृष्ण जी म० के सन्दर्भ में हम इसे कहें तो यूं कहेंगे—

सब काहू से दोस्ती, न काहू से वैर।

अपना मंडन चाहे व कीचड़ से सना ही क्यों न हो, अन्य का खंडन-चाहे वह संयम से मंडित ही क्यों न हो—साधुत्व नहीं हो सकता। साधु संघ-बद्ध हो तो उसमें साधुत्व घुला हुआ है और संघ-मुक्त हो तो उसकी साधुता धूलि-धूसरित है। यह अहंकार-बोध है। अहंकार-बोध, साधुत्व के शिखर पर उसे आरोहण करने से रोकता है। हमेशा उसे भूलुंठित करता रहता है।

सहना साधुता है। कहना असहनशीलता है। असहनशीलता की विजय का इतिहास है साधु। महावीर ने संचित को सहा। सहते रहे सहते रहे। 12 वर्ष तक सहा, तब संचित खत्म हुआ। साधु को तो न जाने कितना सहना है। कहना नहीं है। सहना साधु की वरेण्यता है।

सांघिक प्रसंगों पर गुरुदेव मुनि श्री रामकृष्णजी म० सहज भाषा में एक बात कहते हैं, जब किसी ने कभी कहा, आप संघस्थ हो जाइए तो वे सोचते हैं—संघ-संगठन।

व्यक्ति-व्यक्ति के मध्य रहे पारस्परिक भेदभाव-मनोभेद को मिटाने के लिए होता है। मन की आचार विषमता मिटे, एक व्यक्ति दूसरे के समीप आ जाए, इसके लिए संघ-संगठन की आवश्यकता होती है। राग-द्वेष को मिटाना साधुत्व का सत्य है।

यह सत्य गुरुदेव के जीवन में सहज उपलब्ध है। फिर भी इस प्रसंग के उपस्थित होने, यह कहना अप्रासंगिक नही लग रहा है कि संघ-युक्तता और संघ-पृथकता, इन दोनों में ही इनकी रुचि न रही ! इस पर इन्होंने कभी ठहर कर सोचा तक नही ! ऐतिहासिकता के नाते पाठकों को परिचत करवाने के लिए कुछ तथ्य कहूं—संघ-पृथकता इन्हें वंशानुगत प्राप्त हुई है। महामुनि श्री मायाराम जी म० के मुनियों ने श्रमण-संघस्थ होने-/रहने और मुनि-संगठन बनाने के प्रयास किये। यह अपने आप में एक इतिहास है।

मुनि श्री रामकृष्ण जी म० नव गठित श्रमण-संघ में रहे तो अग्रजों की छाया मे। संघ पृथक्ता स्वीकार की तो अग्रजों ने। मुनि रामकृष्ण जी तो पूरी तरह 'सब काहू से दोस्ती न काहू से बैर' के ज्योति-पुरुष मुनि है।

कालान्तर में महामुनि श्री मायाराम जी म० के मुनियो ने अपना अलग अस्तित्व बनाया। वे सघ से पृथक हो गए।

गुरुदेव मुनित्व को मानते है। मुनि को आदर और सम्मान देते है। क्योकि मुनि मात्र का मान ही उनके स्नेह और अपनत्व का आधार है।

साधक ने जिस साधुत्व की धरा पर चरण रखे हैं वे सबलता से स्थापित हुए हों, कभी पीछे मुड कर न देखा जाए। सदैव आगे बढ कर 'स्व' स्वरूप की ओर गतिमान हुआ जाए। सघ-बद्धता एक दूसरे के प्रति जब चित्त में द्वेष, सत्ता का अहं उत्पन्न करने लगे, तब वह मुनि धर्म मे सहयोगी सिद्ध नही हो पाती। गुरुदेव मुनि श्री रामकृष्ण जी म० का कहना है—सघ-युक्तता मे ही मुनित्व है, यह भी सत्य नही है और सघ मुक्तता में ही मुनित्व है, यह भी सत्य नही है। मुनित्व आत्म-धर्म है। जो जहां जिस आस्था मे उसकी साधना कर ले, वह ही निश्चय में महान् है। उसकी धन्यता को

संघस्थ हुए बिना भी स्वीकारा नहीं जा सकता है, यह मिथ्यात्व है। जो संघस्थ हैं, साधना निरत है, उनकी महानता में कोई कमी है, ऐसा भी नहीं है।

गुरुदेव मुनि श्री रामकृष्ण जी म० ने जब देश व्यापी एक लहर आई थी, संगठन और संघस्थ होने की तो इन्होंने अपनी मान्यताओं के आदर्श आलेखों द्वारा लम्बा लेखन कर, सुझाव भी प्रस्तुत किए थे। तब इन्होंने जो आज संघ में समस्या बन कर घटित हो रहा है, इसका आलेख किया था।

अस्तु, मुनि रामकृष्ण संघस्थ है? नही हैं। ये संघ-मुक्त है। नहीं है। इन्होंने न संघ-प्रवेश लिया न संघ-प्रवेश तजा। अतः एक लम्बा काल वर्तमान से अतीत बनता चला गया और तभी से इन्होंने एक ही नाद प्रति ध्वनित किया—समत्व मे मुनित्व रहा हुआ है।

तो इस शीर्षक के तले संघ के बारे में कहने को एक ही बात रही आती है, वह यह है कि नीति सम्बन्धी कुछ कारणों से श्री मदन लाल जी महाराज व योगिराज श्री रामजीलालजी म० ने अपने-अपने शिष्य वर्ग सहित श्रमण संघ से पृथक रहने की घोषणा की थी। श्रद्धेय श्री मदन लाल जी महाराज के स्वर्गवासी हो जाने पर सघ से पृथक हुए इन सभी मुनियों ने गुरुवर्य योगिराज श्री रामजीलाल जी म० को अपना मुनि सघ प्रमुख स्वीकृत कर उनके सान्निध्य में अपनी सयम यात्रा प्रारभ रखी।

आज दोनो ही पुरुषोत्तम मुनि नही है। गुरुदेव मुनि श्री रामकृष्ण जीम० न संघबद्ध थे। न संघ मुक्त हुए। संघत्व जैसे अनाम व्यक्तित्व सम्पन्न मुनि श्री मौन अपनी साधना मे लगे हुए है। सघस्थ होने पर साधुत्व में कोई अलौकिकता तो उतर नही आएगी। साधना का सत्य पाने के लिए न संघ-प्रवेश अपेक्षित है, न संघमुक्तता।

मुनि श्री रामकृष्ण जी म० को साधना मे रहते संयम को जीते और साधुता को पाते—कही भी उन्हे आवश्यक-अनिवार्यता अनुभव ही नही हो पाई कि वे सघ-प्रवेश या संघ-मुक्तता के सम्बन्ध मे सोचे और कालक्षेप करें।

संयम-दृष्टि :

संयम एक दृष्टि है। संयम ज्ञान का नेत्र है। दूसरे शब्दों में संयम जीवन का एक सक्षम व सबल दृष्टिकोण है। संयम वह दृष्टि है, जहाँ विष अमृत हो जाता है।

मन का संयम वचन का संयम कार्य का संयम। ये तीन संयम सध जाने पर विधिनियम और वर्जनाओं की दीवारें स्वयं अपना अर्थ खो देती हैं। वे खड़ी रहें तो रहें और भूसात् हो जायें तो क्या ? एक और तरह से कहें उनकी अर्थवत्ता नष्ट हो चुकी होती है जब त्रिविध संयम साधक के अन्तर और बाह्य में साकार हो जाता है तब कोई क्रिया हो ही नहीं पाती जिसे असंयम कहा जा सके।

शास्ता महावीर ने कहा, मन के पार, एक मन है। संयम के पार भी एक संयम है। बस, संयम जब घटित होता है तो साधक के अतर-जगत् और बाह्य जगत् को सराबोर कर देता है। तब विधि, विधि नहीं रहती। निषेध, निषेध नहीं रहता। संयम का दृष्टिकोण आचार संहिता की बाट में नहीं खड़ा रहता कि कोई साधक को सरकने को कहे तो वह सरके। खड़ा रहने को कहे तो खड़ा रहे। संयम की साकारता में वह स्वयं विहरित होता है। संयम की साकारता में ही विसर्जित होता है। ध्यानस्थ होता है।

साधक मुक्त और अप्रतिबद्ध विहग है। महावीर ने स्वयं साधक को अप्रतिबद्ध विहगचारी कहा है।

प्रश्न यहां यूं खड़ा हो रहा है कि विहग है जब साधक तो विधिनिषेधों का क्या मूल्य रह जाता है स निःसंदेह कोई मूल्य नहीं रह जाता परन्तु विहगाचारी में संयम का दृष्टिकोण आ चुका है या नहीं ? विवेक की आंख का उघड़ जाना ही संयम है। संयम की आंख में जो झलकता है वही अमृत है। संयम उस गति को या शक्ति को कहते हैं जिसमें होती न दिखाई देने वाली गति भी होती है स्थिरता भी होती है और न दिखाई देने वाली शक्ति भी होती है। संयमी चलता है तो चलते-चलते खड़े हो जाने और खड़ा होता है तो निर्णय का वह क्षण भी घटित होता है, जब पीठ मोड़कर वह पीछे की ओर गतिमान हो जाता है।

ध्यान टूटा कि असंयम में प्रवेश लिया !

तप का स्वस्थ दृष्टिकोण है आपके पास तो आप संयमी हैं। तप क्यों करना है। तप क्यों न किया जाये ? तप शक्ति संतुलन पूर्वक करना चाहिए इस समझ का नाम संयम है।

वचन बोलते समय यदि यह समझ बनी रहे कि मेरे कहे से सम्मुखस्थ व्यक्ति का हृदय तो नहीं दुख आएगा ? तो संयम उपस्थित है। बोल तो गए पर मान-मर्दन जन्म गया है अन्दर तो शरीर से शरीर का भले मर्दन न हुआ हो परंतु असंयम तो आ ही गया।

मन एक ऐसा दर्पण है जहां संयम और असंयम के हजार-हजार प्रतिबिम्ब अपने आप अंकित एवं प्रतिछवित होते हुए दिखाई दे जाते हैं।

संयम आत्मा की पहचान है। आत्मा की पहचान जहां है वहां संयम है। संयमो है। गुरुदेव मुनि रामकृष्ण कहते है संयमी में वह निर्णायक शक्ति होती है कि वह मन को आदेशित करता है तो उसके आदेश पर इधर मन थमकर ठहर जाता है इनके निर्देश पर ! आपका मन दौड़ने-दौड़ते कहने पर ठहर सकता है तो आप भी संयमी हो सकते हैं।

संयमी होने की एक परख है—आप तनावग्रस्त हो जाते हैं तो संयमी नहीं हैं। संयोग और वियोग के मिलने-विछुड़ने से आप जीना-मरना सार्थक मानते हैं तो गुरुदेव मुनि रामकृष्ण का कहना है, संयम की मंजिल तुमसे कोसों दूर है। दूरी मिटा दीजिए विवेक की आँख खोल लीजिए बस हो गए संयमी।

विवेक के उजले रास्ते में संयम से भेंट होती है। अविवेक अंधेरे के असंयम से भेटना है। वह निरंतर अंधेरे मे तुम्हें घसीट ले जाएगा विवेक प्रकाश की भेंट है। अविवेक अंधेरे की भेंट है। संयम की मंजिल पर पहुंचने के लिए विवेक से मैत्री करनी होगी !

विवेक से मैत्री का अर्थ है—संयम को पारांत तक पा जाना ! संयम का पारांत पा लेने पर क्या विधि-निषेधों के सभी अर्थ नहीं खो जाते ?

प्रज्ञा-पुरुषोत्तम मुनि रामकृष्ण

संयमी तो चलता ही अंतर की स्वीकृति से है, संयमी ठहरता हो अंतर की पुकार से है।

साधक सो रहा है तो असंयमी है—ऐसा नहीं है। साधक का सोना भी संयम को पाने के लिए हैं, संयम को जीने के लिए है। उसका बोलना प्रभु-स्तुति तभी बनता है जब वह अंतर की स्वीकृति से भर जाता है। संयमी को आप लाख प्रताड़ित करते रहिये वह पलकें तक झपकने को तैयार नहीं होगा। संयमी की आप एक हजार बार स्तुतियां कर डालिए वह आंख उघाड़ने तक को राजी न होगा। जब तक उसे अंदर से स्वीकृति का संकेत नही मिलेगा।

आपने देखा होगा, ? सुना होगा न देखा हो न सुना हो तो क्या हर्ज है। अब भी सुन-देख पढ़ सकते हैं। प्रासाद में कोई आगंतुक, राजा से भेंट करने को उन्मुख है। द्वार पर पहुंचा। अपने आये की सूचना राजा तक कैसे पहुंचे ? राजा ने अंतःपुर के बाहर, बाहर से आये कीसूचना देने वाला ध्वनि-यंत्र लगाया था। आगंतुक ध्वनि-यंत्र पर हाथ रखता है, राजा तक सूचना तो पहुंच जाती है। पर राजा का मन नहीं है आगंतुक से मिलने के लिए तो आगंतुक को उत्तर भी तो चाहिए। राजा ने एक प्रति ध्वनि यंत्र भी लगाया था वहीं। राजा उत्सुक होता मिलने के लिए तो प्रतिध्वनि होती मैं आ रहा हूं। तुम वही खड़े रहो।

इस प्रतिध्वनि की स्वीकृति है—संयमी की अंतर स्वीकृति। अंदर से प्रतिध्वनि होती है तभी संयमी की पलकें झपकती हैं या पलकें उघड़ती हैं।

गुरुदेव मुनि रामकृष्ण की मान्यता है संयम का दृष्किोण संयमी को जब-तब जहां जैसे-तैसे न बोले को विवश कर सकता है और बोलने को बाध्य कर सकता है।

संयम एक बिम्ब है। संसार के अनेकानेक प्रकार के प्रतिबिम्ब उसमें झलक आते हैं। बिम्ब का कुछ बिगड़ता या विकृत होकर नष्ट नहीं होता है। प्रतिबिम्ब अपने आप मिटते रहते हैं। नए प्रतिबिम्ब के लिए 'अवगाहन' देते रहते हैं।

आकाश विकासशील है। अवगाहन के लिए आकाश को कभी आगे पीछे नहीं सरकना होता है । उसमें अनतानंत संभावनाएं सम्भालने का वैशिष्ठ्य गुण है। संयम और संयमी आकाश के समान संभावनाओं की शक्ति से आकंठ आभरित है।

जिसके पास संयम दृष्टि है वह असंयम-असंयमी को पचा देता है। पचा कर असंयमी को संयमी बना जाना ही संयमी दृष्टि सम्पन्न साधक का संयम है।

व्यक्तित्वों के प्रतिबिम्ब

व्यक्ति जीवन में अनेक व्यक्तियों से मिलता है। कभी व्यक्ति, दूसरे व्यक्तियों को प्रभावित करता है तो कभी व्यक्ति स्वयं उनसे प्रभावित होता है। मिलन साक्षात् किसी भी प्रकार का हो, भेंट कर्ता स्वयं मंडित होता है—चाहे व्यक्ति उससे मिले या वह स्वयं व्यक्तियों से भेंटे।

नीचे कतिपय ऐसे ही मुनिराजों का उल्लेख किया जा रहा है, जिनको मुनि श्री रामकृष्ण जी महाराज ने श्रद्धा अर्पित की थी और उन विभूति-पुरुषों ने अपने स्नेह का अमृत मुनि श्री पर उंड़ेला था।

+ + +

तपस्वी श्री फकीरचन्द जी म० :

इनके व्यक्तित्व का प्रतिबिम्ब मुनि रामकृष्ण के हृदय-दर्पण प्रतिछवित हुआ। इन्होंने उनमें श्रध्दा व्यक्त की। श्रध्दा का अर्घ उनके चरणों पर चढ़ा दिया और उनकी छवि को अपने हृदय में स्थापित किया था।

तपस्वी श्री फकीरचन्द जी म० सच्चे तपोधन पुरुष थे। उनकी साधना और तपस्या के मूर्तिमान स्वरूप को देख कर यह कह पाने का लोभ संवरण कर पर पाना असंभव हो जाता है कि उन्होंने तप के लिए ही देह को धारण किया था। उनकी लम्बी और अनूठी तपस्याओं को देख कर यह कहने की विवशता हो आती है—तप उनके लिए था या वे तप के लिए थे। तप उनसे सार्थक था या वे तप द्वारा सार्थक हुए थे? वहां तप और तपस्वी की भेद रेखा खींच पाना बहुत कठिन लगता था।

वे तप के सूर्य थे; ऐसा कहें तो भी लगता है अभी उनके सम्बन्ध में बहुत कुछ अकहा रह गया है। ग्रीष्म ऋतु की दाहक सूर्य किरणों का वे देह बिछाकर स्वागत करते थे—वे जब 12 बजे

होते तो तप्त पृथ्वी पर देह विसर्जित कर सूर्यदेव के स्वागत में संध्या के चार बजे तक न्यौछावर हो जाते थे।

शीत ऋतु होती तो वे अपनी देह को कपड़ों में छिपाते नहीं थे। अपितु निर्वस्त्र होकर—जब सारा जग सोया होता वे मात्र देह को अनावृत कर खड़े हो जाते। दिशांतों में फैलाई उनकी भुजा मानों प्रकृति के शैत्य को अपने में समेट कर यह कहना चाहते थे—मैं तपरत हूं। न मैं तुम्हें कुछ दे सकता हूं न तुम मुझसे कुछ ले सकती हो। मेरा तप ऋतु बोध से शून्य है। हिमालय को हिलाने का बल तुम में नहीं है। तपस्वी भी हिमालय-पुरुष होता है। उसे भी तो तुम हिला पाने में असमर्थ हो।

—तो ऐसे तपस्वीराज श्री फकीर चन्द जी म० के मुनि रामकृष्ण जी म० ने श्रद्धार्थ द्वारा चरण पखारे थे।

○ ○ ○

तपस्वी श्री केसरी सिंह जी म० तपोनिष्ठ सन्त थे। ये पंजाब प्रदेश के जंगल देश कहे जाने वाले भाग में विचरण करते थे। अबोहर (पंजाब) में तपस्वी श्री के, गुरुदेव श्री राम कृष्ण जी म० ने प्रथम दर्शन किये थे। सरलता ने उनकी तपस्या को उजाल दिया था। वचन सिद्धि उनमें अंकित हो आई थी। अपने नियम और आचार ही में ऐसे घुल गये थे जैसे मधु घुल जाता है दूध में। मिश्री मिल जाती है पानी में। उनसे पूछा जाता साधुता की परिभाषा कर दी तो वे कहते साधुता कोई परिभाषा में बांधने वाली स्थूलता नहीं है। साधुता तो व्यक्ति के जीवन को परिभाषित करती है। जो स्वयं परिभाषित करती हो उसकी परिभाषा क्या शब्दों में बांध कर गठरी बनाई जा सकती है और कहा जा सकता है कि यह वही साधुता ही साधता सरलता से अलग आज तक हुई ही नहीं है। वह वहीं बंधी हुई है। वही वह भाषित है। परिभाषा चाहते हो तो हो तो मोह का भार राग-द्वेष का बोझ, कषाय कालुष्य मिटा दो और भेंट जाओ साधुता से।

यह साधुता तपस्वी मुनि श्री केसरी सिंह जी म० में अंकुश आई थी। इसी अंकुरता पर मुनि रामकृष्ण समर्पित थे।

(1) विशेष परिचय के लिये सरलता के महास्रोत, पुस्तक देखिये।
(2) देखें—लेखक की अन्य कृति अद्भुत तपस्वी।

प्रज्ञा-पुरुषोत्तम मुनि रामकृष्ण

भारतकेशरी आचार्य श्री काशीराम जी म० :

अपने समय के दिग् विजयी आचार्य थे। पूरे भारत वर्ष का जैन समाज उन्हें संयम और आचार का आदर्श-पुरुष मानता है। मुनि रामकृष्ण इनके आचार्यत्व और आचार के प्रति उनकी अनुपस्थिति में ही मनतः श्रद्धावनत हुए थे।

आचार्य श्री पंजाब से बम्बई तक स्थानकवासी समाज में धर्म-जागृति का धर्म चक्रप्रवर्तन कर लम्बे समय के बाद देहली लौटे तो पूरा पंजाब प्रांत उनके स्वागत में उमड़ पड़ा था। इस स्वागत अर्पण में योगिराज श्री रामजी लालजी म० श्रद्धेय श्री मदनलाल जी म० प्रभृति मुनिराज भी उपस्थित थे। इस सुदीर्घकालीन यात्रा में आचार्य के स्वास्थ्य को एक तरह से निगल ही लिया था।

पंजाब-प्रांतस्थ मुनि-संघ के भावी नेतृत्व का प्रसंग उपस्थित हुआ तो आचार्य प्रवर श्री काशीराम जी म० ने श्री मदनलाल जी म० योगिराज श्री रामजीलाल जी म० के सम्मुख विचार चर्चा में स्पष्ट भावाभिव्यक्ति में कहा था—पंजाब सम्प्रदाय में भावी आचार्य को दीप-शिखा को थाम सके ऐसे व्यक्तित्वों पर जब मैं सोचता हूं तो युवा-पीढ़ी में प्रतिभा-सम्पन्न ऊर्जस्वल व्यक्तित्व मुनि रामकृष्ण को देखता हूं।

कभी-कभी अज्ञात ही कुछ ऐसा घट आता है या घटित होने वाला होता है—तब व्यक्ति अनचाहे हो उस घटित व होने वाले प्रसंग अथवा व्यक्ति के प्रति मन से श्रध्दान्वित हो आता है। मुनि रामकृष्ण ने आचार्य श्री काशीराम जी म० को आचार्यत्व और आचार का आदर्श पुरुष माना था तो उन्हें क्या पता था कि आचार्य प्रवर ही एक दिन मेरे बारे में मुनि-समुदाय के समक्ष ऐसा कहेंगे ?

इसी को अज्ञात के प्रति अज्ञात का समर्पण कहा जाता है। अज्ञात कभी-कभी अनदेखा ही ऐसे उतर आता है जैसे आकाश से उठी विद्युत्-रेखा पृथ्वी पर उतर आती है।

धर्म-जागरण

मुनि की साधना 'स्व' कल्याण एवं 'पर' कल्याण की समानांतर चलने वाला साधना धारा है। मुनि केवल 'स्व' को साधने लगे तो जैन चिंतकों का कहना है तब नगर नहीं विजन का पथ ग्रहण करना होगा। अतः जिनकल्पेतर मुनि 'स्व' और 'पर' कल्याण की समानान्तर साधना करता है।

परमपूजनीय गुरुदेव विद्वद्रत्न मुनि श्री रामकृष्ण जी म० के धर्म साधना मूलक विचरण को हम दो भागों में बांट सकते है। प्रथम— श्री योगिराज जी म० के साथ। दूसरा गुरुवर्य योगिराज जी के स्वर्गवासान्तर स्वतन्त्र रूप से।

गुरुदेव के विचरण क्षेत्र को समझने के लिए पहले चातुर्मास— तालिका पर ध्यान दें—

संवत्	1995	स्थान	रावलपिंडी (पंजाब)
"	1996	"	रायकोट (पंजाब)
"	1997	"	पटियाला (पंजाब)
"	1998	"	अहमदगढ मंडी (पंजाब)
"	1999	"	साढौरा (पजाब)
"	2000	"	चान्दनी चौक देहली
"	2001	"	अमी नगर सराय (उ०प्र०)
"	2002	"	कैथल (हरियाणा)
"	2003	"	अमृतसर (पंजाब)
"	2004	"	सरदूलगढ़ (पजाब)
"	2005	"	रोहतक (हरियाणा)
"	2006	"	गुज्जरवाल (पजाब)
"	2007	"	जीन्द (हरियाणा)
"	2008	"	अमीनगर सराय (उ०प्र०)
"	2009	"	चान्दनी चौक देहली

संवत्	2010	स्थान	जीन्द (हरियाणा)
"	2011	"	फरीदकोट (पजाब)
"	2012	"	जीन्द (हरियाणा)
"	2013	'	आगरा (उ०प्र०)
"	2014	"	अमीनगर सराय (उ०प्र०)
"	2015	"	जीन्द (हरियाणा)
"	2016	"	रोहतक मण्डी (हरियाणा)
"	2017	"	मूनक (पजाब)
"	2018	"	पटियाला (पजाब)
"	2019	"	जीन्द (हरियाणा)
"	2020	"	जीन्द (हरियाणा)
"	2021	"	रोहतक शहर (हरियाणा)
"	2022	"	अमी नगर सराय (उ०प्र०)
"	2023	'	काधला (उ०प्र०)
"	2024	'	अमी नगर सराय (उ०प्र०)
"	2025	"	दरियागज, देहली
"	2026	"	कैलाश नगर, दहली
"	2027	"	चिराग् देहली, दहली
"	2028	"	शश्ति नगर, देहली
"	2029	"	शान्ति नगर, देहली
"	2030	"	सदर बाजार, देहली
"	2031	"	माडल टाउन, देहली
"	2032	"	जीन्द (हरियाणा)
"	2033	"	नरवाना मण्डी (हरियाणा)
"	2034	"	रोहतक मण्डी (हरियाणा)
"	2035	"	अमीनगर सराय (उ०प्र०)
"	2036	"	माडल टाउन, देहली
"	2037	"	कैलाश नगर, देहली

	2038		[illegible], देहली
	2039		[illegible], देहली
"	2040	"	माडल टाउन, देहली

...क्रमशः

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि पूज्य गुरुदेव का विचरण क्षेत्र पंजाब, हरियाणा, देहली एव पश्चिमी उत्तर प्रदेश तक रहा है।

जैन मुनियों का यह क्रम है कि वे वर्षा के चार मास किसी एक स्थान पर व्यतीत करते हैं। इसी को चातुर्मास कहते हैं। उपरोक्त तालिका में जिन स्थानों का नामोल्लेख हुआ है, इन स्थानों पर गुरुदेव ने वर्षा काल बिताया है। इसके अतिरिक्त समय में मुनि गांव दर-गांव विचरण/भ्रमण करते हैं। मुनि जहां भी जाते है वहां धर्म का सन्देश लेकर जाते। अहिंसा, सयम, वैराग्य तप त्याग और सह अस्तित्व आदि के बीज मन्त्र बखेरते चलते है। यह बखेर कभी समाप्त नहीं होती।

गुरु और शिष्य ये दो भिन्न व्यक्तित्व होकर भी इनके कार्य और उद्देश्य एक होते हैं। इस तालिका में सवत् 2024 तक के चातुर्मास गुरुदेव योगिराज एवं शिष्य मुनि रामकृष्ण के संयुक्त चातुर्मास है। सवत् 2024 में गुरुवर्य योगिराज जी अमीनगर मे स्वर्गवासी हो गये। इसके अनन्तर गुरुदेव के स्वतन्त्र चातुर्मास होते आ रहे है

इसके साथ-साथ भी बताना आवश्यक लग रहा है—इन स्थानों के समीप-दूरवर्ती जो भी ग्राम-नगर आता है, वहां पधार कर गुरुदेव जनता को धर्म का सन्देश देते हैं।

[illegible] अतीत [illegible] वर्तमान का कार्य होता है। जो घटकर अतीत हो गया वह वर्तमान बन जीवित रहे इसके लिए संस्मरण साहित्य लेखन का बहुत बड़ा महत्व है। संस्मरण लेखन अतीत होते हुए भी पुष्पो को वर्तमान के सूची-सूत्र में पिरोकर पुष्पाहार गुम्फित करने के सदृश्य है।

गुरुदेव मुनि श्री रामकृष्ण जी म० से सम्बन्धित अतीत हो चुके कुछ प्रसंगों को संस्मरण रेखाओ में रेखांकित कर रहा हूं—

○ ○ ○

गुरुवर्य श्री योगिराज जी म० अपने शिष्य समहू सहित आगरा जा रहे थे। रास्ते मे एक गांव था—रूनकता। जिस मकान में ठहरे थे उसके सामने एक वृक्ष था। गर्मी का मौसम था। सभी मुनिजन वृक्ष की शीतल छांह मे बैठे थे। एक युवक कुर्सी उठाए आया। वह मुनिजनों के सामने कुर्सी डाल कर बैठ गया। बगल में अंग्रेजी का अखबार दबाये था—उसे उलटने-पलटने लगा। बोलने का सिलसिला न उसने शुरू किया और मुनि भी उसकी ओर मुखातिब न हुए। कुछ देर बाद उसने अखबार समेटा और कुर्सी उठा कर चलने लगा। मुनि श्री रामकृष्ण जी म० ने उसके बारे मे जो चितन, चित्र बनाया था उसे प्रकट करते हुए अंग्रेजी मे बोले—

"जो व्यक्ति बाहर से शिक्षित और सभ्य दिखाई देता है, यह आवश्यक तो नही कि अतर से भी वह शिक्षित और सभ्य हो।" किसी को सम्बोधन कर जब कुछ कहा जाता है तो मनुष्य का स्वभाव है वह पहले उस वाक्य के अर्थ को अपने से जोड कर देखता है। युवक ने मुनि श्री द्वारा कहे वाक्य को अपने से नापा तो वह चौका? आश्चार्यान्वित तो हुआ ही कि जिन (मुह बधे) साधुओ को मै अशिक्षित मान रहा था, वस्तुत. वे शिक्षित तो हैं ही साथ ही उन्होंने मेरी अशिष्टता को नब्ज को भी पकड लिया है।

जाता हुआ युवक लौट पडा। उसने मुनि श्री से जैन धर्म के सम्बन्ध मे आग्ल भाषा में लम्बे समय तक वार्ता की। अंत में उसने

[illegible] बोला—[illegible] मानता-जानता था कि मुंह-मुंधे (मुंह पर पट्टी बांधने वाले साधु) अशिक्षित होते हैं। ज्ञान और विचार से इनका कोई वास्ता नही होता। न इनमें कोई योग्यता व वैचारिकता होती है फिर इनसे वार्ता भी क्या की जाए। इसलिए मैं अशिष्ट बनकर आप मुनियों के सामने कुर्सी पर बैठा रहा। किन्तु आप से वार्तालाप के बाद मेरा भ्रम नष्ट हो गया।

जैन मुनियो की भिक्षाविधि के सम्बन्ध में जब उसे बताया गया तो वह साथ-साथ चला और आहार दिलाने मे मदद की।

○ ○ ○

सन् 1972 का अतीत हुआ प्रसंग प्रस्तुत कर रहा हूं। गुरुदेव त्रिनगर (दिल्ली) में वर्षावासी थे। राजस्थान से एक मुनि-दर्शनार्थी संघ त्रिनगर पहुंचा। गुरुदेव की संनिधि में संघ-जन बैठ गए। गुरुदेव ने वार्ता मे पूछ लिया—"सब दैनिक धर्म, उपासना तो करते ही होगे।" संघ में एक व्यक्ति था जो हर बात का जवाव वह स्वय आगे बढ-बढ कर देने लगा। वह कहने लगा—हां सभी धर्म-ध्यान खूब करते है। सभी को प्रतिक्रमण आता है। सामायिक, सवर बराबर करते है।' मुनि श्री को उसका आगे बढ-बढ कर बोलना अखरा। गुरुदेव ने पुनः पूछा—कुछ स्वाध्याय आदि भी करते होगे? इतने मे वह तपाक ने कहने लगा एकदम बराबर करते है स्वाध्याय। गुरुदेव ने सबसे पहले उसी से कहा—"अच्छा, इच्छामि खमासमणो..." सुनाओ।' अब तो उस पर घडो पानी पड गया। बढ-बढ कर बोलना गायब हो गया। बोला—'महाराज, आ पाटी तो कोनी आवे।' अच्छा तो नमोत्थुण का पाठ सुनाओ। वह और भी झेपा। उसे यह भी नहीं आता था। इस पर उसने अपने को स्पष्ट किया गुरु महाराज म्हें तो कोनी जाणू! इसके अनन्तर फिर वह व्यक्ति बीच मे न बोला।

तब मैंने अनुभव किया—कभी-कभी सही दृष्टि देने के लिए तेज पकड़ भी आवश्यक हो जाती है।

वैयाकरण और वैयाकरणी :

मुनि रामकृष्ण का अध्ययन लगभग पूर्णत्व के शिखर को छू चुका था। सर्वत्र उनके भाषा-ज्ञान और विद्वत्ता की चर्चा से महामनीषो विद्वान् मुनि का स्वरूप प्रतिबिम्बित हो आया था। एक संस्कृत अध्ययनरत मुनि ने इनसे पूछना चाहा। वे मुनि प्राय: व्याकरण सम्बन्धी परीक्षात्मक प्रश्न पूछा करते थे। अपने ज्ञान को अतिरंजित ढंगमे व्यक्त करते कहा—"आप तो बहुत अच्छे वैयाकरणी है। मुनि रामकृष्ण जी बोले—"मैं वैयाकरण हूं, वैयाकरणी नहीं। उक्त मुनि ने कहा—वैयाकरण और वैयाकरणी में क्या अंतर है? एक ही तो बात है। मुनि श्री रामकृष्ण जी ने कहा—व्याकरण का परिबोध प्राप्त पुरुष वैयाकरण होता है। स्त्री को व्याकरण को परिबोध प्राप्त हो तो वह वैयाकरणी कहलाती है।

○ ○ ○

एक मुनि को निशीथ सूत्र के अध्ययन का अभिमान हो गया। वे बात-बात में निशीथ सूत्र का उदाहरण देते थे। उनकी समझ में यह आ चुका था, निशीथ सूत्र का मैंने ही बारीकी से अध्ययन किया है। मुनि रामकृष्ण के समक्ष भी एक वार्ता में निशीथ सूत्र की नसीत सूत्र कह कर उच्चारण किया, तभी मुनि रामकृष्ण ने कहा—निशोथ सूत्र में क्या लिखा है, क्या नहीं? इसके विवाद की चर्चा करने से पहले निशीथ और नसीत शब्द का भाषा-बोध प्राप्त कर लो। यह निशीथ शब्द है नसीत नहीं। गुरुदेव श्री ने कहा—परीक्षात्मक प्रश्न पूछने से ज्ञान नहीं बढ़ता। किसी ने कितना सीखा है यह ज्ञान का अन्धापन है। तुमने क्या और कितना सीखा है? यह जीवन की निर्मल दृष्टि है।

अहं ग्रसित एक युवा पंडित मुनि श्री के पास आया और कहने लगा—मैं संस्कृत और अंग्रेजी धाराप्रवाह बोल सकता हूं।

गुरुदेव बोले—बोलो, तुम्हें रोका किसने है। जो इन भाषाओं का ज्ञाता होगा वह समझ लेगा। नही होगा वह तुम्हारी अनभिज्ञता को भी जान जाएगा।

आवेश मे भर कर वह बोला—अनभिज्ञता कैसे ?

अंग्रेजी भाषी के लिए हिन्दी भाषी जितना अज्ञ है, हिन्दी भाषी के लिए अंग्रेजी भाषी भी उतना ही अज्ञ है—यदि वे एक दूसरे की भाषा से अज्ञ है।' गुरुदेव बोले।

पंडित बोला—और जिसे दोनों का बोध हो तो ?

इसीलिए मै कह रहा था जो तुम्हे आता है वह बोलो। जो जानता है वह समझेगा। जो न जानता होगा वह तुम्हारे लिए अज्ञ है। वैसे ही तुम उसकी दृष्टि में अज्ञ रहोगे।

O C O

पांडूपिडारा (समीप जोद: हरियाणा) हिन्दुओं का प्राचीन तीर्थ क्षेत्र है। यहां वर्ष में अनेक बार मेले लगते है। तीर्थ यात्रियों के लिए सुविधा सम्पन्न बहुत-सी धर्मशालाएं है। विचरण करते श्री योगिराज जी म० पांडूपिडारा पहुंच गए। वहां एक धर्मशाला में ठहरे। सयोग देखिए! उसी धर्मशाला मे पहले से भागवत-सप्ताह का पाठ-वाचन चल रहा था। अनेक पडित वहां आए हुए थे।

पडितों ने देखा—धर्मशाला मे जैन मुनि भी आकर ठहर गए। मुनियो को देख, सतों को सुनाने के मन से वे परस्पर कहने लगे—"दुनिया मे ढोग और ढोगियो का अन्त नही है। नाना वेश में नाना पाखण्ड पनप रहे है।" योगिराज स्वाध्याय मे बैठने वाले थे। पडितों का व्यंग्य समझते उन्हे देर नही लगी! उन्होने मुनि रामकृष्ण जी से कहा...रामकृष्ण! जरा इनसे बात तो कर! ये क्या कहना चाहते है।

मुनि श्री ने समीप से गुजरते पडितो को संस्कृत भाषा मे सम्बोधित किया! और पूछा...पंडितजनों मे जैन मुनियों को लेकर

क्या चर्चा हो रही है। सम्बोधन सुना तो वाद-विवाद या व्यंग्य का नशा हरिण हो गया। सामान्य होते हुए बोले···बात तो कुछ भी नही है। हम तो आपस में बात कर रहे थे कि हमारे भारत वर्ष में धर्म को पूजा कम होती है। यहा ढोंग अधिक पूजा जाता है।

मुनि श्री ने उनसे भावगत पर चर्चा-वार्ता की! वार्ता में अन्य भी कितने ही प्रश्न उगे। सभी का समाधान मुनि रामकृष्ण ने किया। अन्त मे जैन धर्म ओर जैन साध्वाचार के बारे मे उन्हे कुछ जानकारी दो। जैन मुनियो की सम्पूर्ण दिन-चर्या और आचार-विचार की बारीकियो से सम्यक् परिचय कराया तो वे अत्यधिक प्रभावित हुए। मुनि श्री के सस्कृत आदि भाषाओ के गहन ज्ञान के प्रति नत हुए पडित बोले...मुनीश्वर ! आप के भोजन-पानी की क्या व्यवस्था है। हमारे निवास को पवित्र कीजिए। हम से कुछ ग्रहण कोजिए। हमारा प्रथम साक्षात्कार कम से कम अन्न नही तो मिष्ठान्न लेकर ही मधुर बनाइए।

मुनि रामकृष्ण जी ने गुरुवर योगिराज जी म० से अनुमति प्राप्त की और पंडितो के कमरे मे पहुचे। उनके हाथ से आवश्यकतानुसार मिष्ठान्न ग्रहण किया।

अग्रेज साधु :

साधु बन जाने पर भी कोई अग्रेज या भारतीय नही रह जाता है।साधु बन जाने पर भी भारत की धरती साधुत्व-ऋषि-मनीषी और चिंतक को तो उगा देती है परन्तु किसी साधु को अंग्रेज साधु या काला-गोरा साधु नही बनाती। तप पूत ऋषियो की यह धर्म-धरती अष्टावक्र ऋषि को तो पूजती आ रही है पर अग्रेज साधुता को इसने नही उपजाया।

किन्तु आश्चर्य की बात है कि मुनि रामकृष्ण को साधुजन अग्रेज मुनि क्यो कहने लगे थे? इसके पीछे भी एक आवृत रहस्य है। आइए इस रहस्य की यवनिका को भी उठा कर देखे। इस यवनिका के पीछे जो दृश्य चित्र है, वे आप को विवश करेगे कि साधुओं से लेकर सामान्य जन तक इन्हें अंग्रेज साधु क्यों कहते थे ?

मुनि रामकृष्ण खरड़ (चण्डीगढ़) में गुरुदेव योगिराज जी म० के साथ ठहरे थे। यहां एक ईसाई मिशनरी स्कूल था। मैकलाउड नामक अंग्रेज उसमें अंग्रेजी के टीचर थे। इसी मिशनरी स्कूल में मास्टर पन्नालाल जैन भी अध्यापन कराते थे। इन दोनों अध्यापकों में अक्सर ईसाई धर्म और जैन धर्म के सिद्धांतों की गहराई को लेकर चर्चा छिड़ जाया करती थी। एक दिन मास्टर पन्नालाल जी ने मैकलाउड से कहा—हमारे गुरु जी के पास भी किसी दिन चलिए। वे अंग्रेजी भाषा के लिटरेचर और पाश्चात्य दर्शन के भी अध्येता है।

मैकलाउड ने पन्नालाल जी के मुंह से एक जैन मुनि के बारे में इतना सब कुछ सुना तो उसकी उत्सुकता चरम उत्कर्ष पर पहुंच गई। एक दिन पन्नालाल जी के साथ मैकलाउड खरड़ जैन स्थानक स्थित मुनि रामकृष्ण की संनिधि में आए। अंग्रेजी भाषा में दोनों का काफी देर वार्तालाप होता रहा। ईसाई धर्म और जैन धर्म के सैद्धान्तिक पक्षों की तुलनात्मक प्रस्तुति से मैकलाउड अत्यधिक प्रभावित हुआ। बोला—मैं तो जन्मतः ईसा और ईसाई धर्म को मानता रहा हूं परन्तु आज जैन मुनियों में रह रहे अंग्रेज मुनि रामकृष्ण जी से ईसाई धर्म की व जैन धर्म की बारीकी को सुन कर परम आश्चर्यान्वित हूं।

○ ○ ○

इन्द्रप्रस्थ स्थित अमेरिकन एम्बैसी की लाइब्रेरी की डाइरेक्टर थी—मिसेज हरिसन। वह जैन धर्म के सिद्धान्तों को समझना-जानना चाहती थी। चांदनी चौक स्थित महावीर पुस्तकालय में कभी-कभी आती थी। एक बार गुरुदेव मुनि श्री रामकृष्ण जी म० वहां पर विराजमान थे। मिसेज हरिसन का परिचय मुनि श्री से हुआ। वह मुनि प्रवर से अन्वेषणात्मक प्रश्न पूछती। समाधान पाती। कृतज्ञता ज्ञापन करती। वंदन मुद्रा में नमस्कार रत होती, श्रद्धान्वित होती—चली जाती। अमेरिकन सरकार ने डायरेक्टर बदला। वह स्वदेश चली गई। अमेरिका से भी उसने मुनि रामकृष्ण जी के लिए कृतज्ञता-युक्त पत्र अपने जैन परिचितों के पास प्रेषित किये।

○ ○ ○

वाचस्पति श्री मदनलाल जी म० योगिराज श्री रामजीलाल जी म० और विद्वद्रत्न मुनि श्री रामकृष्ण जी म० प्रभृति मुनिजन पंचकूला गुरुकुल (पजाब) पधारे। व्यवस्थापको ने निरीक्षण, मार्ग-दर्शन और आशीर्वचन के लिए बहुमान पूर्वक मुनिजनो को आह्वान किया।

गुरुकुल की दिव्यता भव्यता और प्रकृतितः रात-दिन निनादित पंचकूला (नदी) प्राकृतिक सुषमा ने सभी के मन को विमोहित किया। मुनिजनो ने एक बार अनुभव किया—वस्तुत साधको के लिए ऐसे ही स्थान ध्यान और साधना को आकार देने में समर्थ है। स्वय महावीर उद्यानों एवं शांत वनखण्डो मे ध्यान व प्रकृति शान्ति के तादाम्य की दृष्टि ही ऐसे स्थानो में ठहरना उपयुक्त मानते थे।

गुरुकुल व्यवस्थापकों ने गुरुकुलीय सभी व्यवस्थाओ और विशिष्टताओं की एक-एक पर्त हटा-हटा कर मुनिजनो को दिखाई। विद्यार्थियो की उपस्थिति और अध्ययन पद्यति का सूक्ष्म निरीक्षण कराया। अन्ततः मुनिजनो का उपर्युक्त तीनो दृष्टि से अभिमत चाहा।

अन्य मुनिजन व्यवस्था की प्रशंसा कर आगे बढते रहे। जब मुनि श्री रामकृष्ण जी म० जी से पूछा गया—"आप पूरे गुरुकुल को देखने के प्रारम्भ से अन्त तक मौन है। हम आपका अभिप्राय जानने को भी उत्सुक है।"

मुनि प्रवर न जाने क्यो चुप थे। बोले 'विद्यार्थियो के विद्या प्रसाधन दिखलाइए।" जब विद्यार्थियो के विद्या प्रसाधन पुस्तक, स्लेट, कापी आदि का निरीक्षण किया तो देखा - विद्यार्थियो के पास ढग के प्रसाधन तक नही है। फटी-पुरानी पुस्तके-फटे पुराने बस्ते-टूटे हुए दवात कलम, मलिन वस्त्र—इन अब अस्त-व्यस्तताओ के रहते विद्यार्थी—क्या जो पाना चाहते है, वह सब मन की इन अस्वस्थाओं में पा सकेगे ?

मुनि श्री का निरीक्षण विद्यार्थियों के लिए वरदान सिद्ध हो गया। तभी सभी विद्यार्थियों को नई पुस्तकें, स्वस्थ कापी, साफ वस्त्र एवं अनेक सुविधाएं दी गईं।

मुनि श्री के निरीक्षण को तत्कालीन व्यवस्थापकों अच्छे रूप से लिया और माना।

O O O

एक बार की बात! एक गृहस्थ शिष्य गुरुदेव श्री के पास मंगल वचन सुनने आया। बोला—कल मेरे पेट का आपरेशन होना है। चिकित्सक ने सब व्यवस्था जुटा दी है। विश्राम स्थल, आपरेशन का समय आदि सभी कुछ निश्चित हो चुका है।

गुरुदेव ने कहा—जो हो चुका इसे हो जाना था। जो नहीं हुआ है—वह नहीं हुआ। ठीक है। आपरेशन की जल्दबाजी मत करना।

भक्त का मन बोझिल हुआ। क्योंकि आपरेशन की सभी तैयारियां हो चुकी थी। परन्तु गुरु वचनों की आस्था ने जो अब तक नही हुआ है वह रुक सकता को मूर्त कर दिया। कुछ समय बाद वह भक्त फिर गुरु चरणों में उपस्थित हुआ। बोला—गुरुप्रवर जो नहीं हुआ वह रोका जा सकता है—मैंने आपके इस आदेश को आधार मानकर आपरेशन नही कराया। देशी उपचार से मैं एकदम स्वस्थ हूं।

यदि आपके आदेश को आधार न मानकर आपरेशन करा लेता तो नही कहा जा सकता क्या होता?

O O O

एक विद्यार्थी था। मुनि श्री में उसकी बहुत आस्था थी। एक दिन वह आया। अत्यन्त विनय पूर्वक बोला—"मै बी०ए० के तृतीय वर्ष में हू। इस बार परीक्षा में सन्देह हो रहा है। मैं पास तो हो जाउंगा या नही?"

मुनि श्री को जो भी कुछ दीखा हो? बोले—"परीक्षा में जितने दिन शेष हैं, और अध्ययन करो। मन को स्वीकृत विषयों से जोड़ों और साहस पूर्वक परीक्षा दो।"

यह सब तो करूंगा ही गुरुदेव ! फिर भी परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाउंगा या नहीं । मन में सन्देह है । गुरुदेव ने मौन भंग करते हुए कहा—साधुओं से तुम क्यों दो टूक कहलवाना पसन्द करते हो कि पास होऊंगा या फेल । कहा न मेहनत करो और साहस पूर्वक परीक्षा में बैठो ।

परीक्षा हो गयी । परिणाम आ गया । वह फिर आया । बोला—गुरुजी! आपने जैसा कहा था वैसा ही हुआ । परीक्षा में जितने दिन शेष थे उतने दिनों में मैंने जो अब तक नही पढ़ा था, वह पढ़ा । परीक्षा में वही सब कुछ प्रश्न के रूप में आया । यदि उस दिन मै आपके वचनानुसार न चलता तो फेल हो जाता । यह आपकी कृपा का सुफल है कि मैं परीक्षा में सफल हो पाया हूं ।

प्रज्ञा पुरुषोत्तम का अभिनन्दन

आज हम प्रज्ञापुरुषोत्तम गुरुदेव !

विद्वद्रत्न मुनि श्री रामकृष्ण जी महाराज का अभिनन्दन करना चाहते हैं ।

'क्यों ?'

ये प्रज्ञा पुरुषोत्तम हैं—इसलिए !

ये पुरुषोत्तम हैं—इसलिए !!

ये मुनि रामकृष्ण हैं—इसलिए !!!

\+ \+ \+

गुरुदेव का कहना है—'मैं मात्र मुनि हूं ।' मुनि के अभिनन्दन की आवश्यकता तुम्हें/उन्हें/इन्हें या और किन्हीं को हो सकती है किन्तु मुनि को नहीं । मुनि अभिनन्दन नहीं नहीं चाहता । मुनि तो स्वयं मानवता का अभिनन्दन करता है । वह अहिंसा, अनेकांत और अपरिग्रह का अभिनन्दन करता है । वह करुणा, क्षमा और शील का अहर्निश अभिनन्दन करता रहता है ।

वह समत्व, अममत्व एवं निसंगत्व का अभिनन्दक है । उसका कैसा अभिनन्दन ? वह स्वयं त्रिकाल अभिनन्दित है ।

यह अभिनन्दन व्यक्ति का नहीं मुनि व्यक्तित्व का अभिनन्दन है । यह एक साधु का नहीं, साधुत्व का अभिनन्दन है । व्यक्तिवाद के स्थान पर साधुत्व के व्यक्तित्व का महाप्रासाद है ।

\+ \+ \+

मुनित्व अमर अस्तित्व है। हम उस अखण्ड धारा में बह रहे/रह रहे मुनि का अभिनन्दन कर रहे हैं। मुनि रामकृष्ण को अभिवन्दनों और अभिनन्दनों की आवश्यकता नहीं है।

इन महामुनि ने अपने तन-मन को महावीर की जिम पारात करुणा के लिए, छोटे-बड़े कुरूप-अरूप, अपने-पराये की खाइयो को मिटा देने के महावीर के महिमा मण्डित महोज्ज्वल कार्य को आगे बढ़ाया है—यह उनका अभिनन्दन है। मुनि तो उसी दिन अभिनन्दित हो चुका था जिम दिन उमने मुनित्व के प्रकाशपारात मे प्रवेश की अगड़ाई ली थी। उनके इसी कृत के प्रति हमारा यह विनम्र अभिवादन एव संतुल्य भाव की विनयावनत अभिव्यक्ति का अभिभाव है।

\+ \+ \+

प्रज्ञा पुरुषोत्तम लेने के नहीं देने के शिखर पर खड़े हुए है। उमका संलक्ष्य वीतरागत्व के लोकात की अक्षत अवस्थिति है। परन्तु हमारे अन्दर बैठा गणधर गौनम का भाव हमें वदन अभिवंदन और अभिनन्दन करने को विकल कर रहा है।

\+ \+ \+

मुनि रामकृष्ण की अनन्त साधुता में हमारे अभिनन्दन मे अमृत बरसाता चांद नही उतर आएगा परन्तु हमारे अंतर प्रदेश मे विमलता की किरणे फूट उतर आएंगी। हमारी विकल शिष्यता मे सन्तोष-सुख का महानद अवश्य प्रवाहित हो जाएगा। इमलिए उनके 'जीवन' 'कृतित्व' को प्रस्तुत करते इस ग्रन्थ के माध्यम से हम अपनी शिष्यता को साकार होता हुआ देख रहे है।

—मुनि तो होता ही जन-जन का पूज्य वन्द्य है। इसलिए मुनि मानवता का अखण्ड सौभाग्य सूर्य होता है।



[illegible]

काक्षा और ऐषणाओं के क्षितिजों से आगे वह मुनित्व के माध्यम से उस पारांत पर पहुच चुका होता है जहाँ अभिनन्दन जैसा शब्द उसके व्यक्तित्व को कहने के लिए अर्थहीन हो जाता है।

और यह अभिनन्दन ?

यह अभिनन्दन हमारे अपने मन का सुख है। कृतज्ञता से भरे शिष्यत्व का सुख है, सन्तोष है।

—गुरु का अभिनन्दन करना, शिष्यता का मंडन है।

—मुनि का अभिनन्दन वाणी द्वारा गुरुवन्दन या अभिनन्दन है।

—मुनि का अभिवन्दन/अभिनन्दन शिष्यो द्वारा साधुत्व की अर्चना का प्राणस्वर है। प्रणत भाव से मुनि के मुनित्व को समर्पण करना अपनी आत्मा को शिखरस्थ करने का महामन्त्र है।

\+ \+ \+

परम पूजनीय गुरुदेव मुनि श्री रामकृष्ण जी म० कहते है—मुनि तो स्वय अभिनन्दित है। उसका अभिनन्दन कैसा ?

परन्तु आपके इस कथन से ही हम स्वय आपके अभिनन्दन को प्रतिबद्ध है। गुरुवर ! आप कहते है मुनि को अभिनन्दन की आवश्यकता नही हम आपका इसी रूप मे मान रखते है परन्तु मुनि का अभिवदन करना तो हमारा शाश्वत अधिकार है। उसे आप रोक सकेंगे, नहीं रूकेगा वह अभिनन्दन।

यह परम्परातः विरासत हमें महावीर युग से प्राप्त है। यह वर्तमान मुनि को अभिवंदन का समर्पण देकर ही संभव है। इस अभिनन्दन के पीछे कोटि कंठों का श्रद्धाभाव उमड़ कर सिमट आया है। महावीर

[illegible] लाखों उपासक उपासिकाओं ने मुनि का अभिवन्दन/अभिनन्दन एवं अभिन्न भाव की शिष्यता का अर्पण किया था।

आज हम उपासकों की वह संख्या कोटि के छोर तक पहुंच आई है—अतः गुरुदेव मुनि श्री रामकृष्ण जी म० का आज जो हम अभिनन्दन कर रहे हैं वह कोटि-कोटि कंठों का समवेत अभिवन्दन है।



प्रज्ञा पुरुषोत्तम मुनि श्री रामकृष्ण जी महाराज

जीवन-परिचय :

एक दृष्टि में

जन्म : संवत् 1970 श्रावण कृष्ण 30

जन्म स्थान : रोहतक (हरियाणा)

पिता : लाला दौलतराम जी बंसल

माता : श्रीमति पिस्तोदेवी जी

दीक्षा : संवत् 1995 चैत्र शुक्ल 13 (महावीर जयन्ति)

दीक्षा स्थान : नालागढ़ (हिमाचल प्रदेश)

गुरुदेव : योगिराज श्री रामजीलाल जी महाराज

गुरुभ्राता : श्री रणसिंह जी म० श्री शिवचन्द्र जी म०
श्री शिखरचन्द जी म०

शिष्य : श्री सुभद्र मुनि जी म०

प्रशिष्य : श्री रमेश मुनि जी म० श्री अरुण मुनि जी म०

अध्ययन : व्याकरण, न्याय, दर्शन, एवं आगम का सांगोपांग अध्ययन चिन्तन एवं मनन। संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी अंग्रेजी, उर्दू, गुजराती आदि विविधानेक भाषाओं पर अधिकार।

विचरण : पंजाब, हरियाणा, देहली, उत्तर प्रदेश।

कृतियां : विविधानेक पुस्तक-पुस्तिकाओं का आलेखन।

संत वही जो इस संसृति में,
होकर विराग से अति रंजित।
आसक्ति से ऊपर उठता,
पंकज-सम रे! पंक विवर्जित॥

ନିବନ୍ଧ

जैन धर्म और मानववाद

प्रज्ञा-पुरुषोत्तम मुनि रामकृष्ण

○ ○

जैन-चितन-धारा और वैदिक चिन्तन-धारा ! या यूं कहें—श्रमण-संस्कृति और ब्राह्मण-संस्कृति का केन्द्रीय चिंतन बिन्दु क्या था ? आज वह किस स्वरूप को प्राप्त कर चुका है ? प्रस्तुत विचार प्रधान गवेषणापूर्ण निबंध मे इस सत्य की दीपावली मिलेगी । ईश्वरवाद और मानव-वाद के शास्वत रहस्य को गुरुदेव ने किस प्रकार हस्त-गृहीत स्फटिक मणि की तरह चितनकर, प्रस्तुत किया है । पाठक पढ़कर निर्णय के एक द्वार पर अवश्य पहुचेंगे ।

—सं०

○ ○

सभ्यता और संस्कृति के केन्द्र भारत में जहां वैदिक या ब्राह्मण-संस्कृति अपना चिन्तन प्रस्तुत कर रही थी, वहां श्रमण-संस्कृति की परम्परा भी जीवन के विषय में सोचने का और समझने का अनवरत श्रम कर रही थी । वैदिक संस्कृति का लक्ष्य ब्रह्म था, जो आगे चलकर ईश्वर के रूप में परिवर्तित हुआ । इस संस्कृति ने अपने विचारों में ब्रह्म का ही प्रतिपादन किया है, उसी के सम्बन्ध में समस्त सिद्धान्त निर्धारित किए गये, और इसी के ज्ञान से मनुष्य का कल्याण है, ऐसा दृढ़ विश्वास विश्व के सामने रखा । दूसरी ओर श्रमण-संस्कृति ने मनुष्य को ही अपने जीवन का लक्ष्य बनाकर, उसी के विषय में सोचा-समझा और उसी विषय में समस्त सिद्धान्तों का उदात्त चिन्तन के साथ निर्माण किया । यह एक बहुत बड़ी दार्शनिक,

होता है, जिसे विशाल रूप धारण करना था, उसकी मृत्यु हो जाती है। आराधना जो निराकार रूप में प्रकट होती है, उसे लोक-हित के आराधना रूप में साकार बनाते हुए समुन्नत करना है। इससे आराधक का तो कल्याण होता ही है, लेकिन आराध्य का भी कल्याण होता है। आराधना स्वहित-परहित दोनो का पूत संगम है।

वैदिक-सस्कृति के अनुसार ईश्वर पूर्ण है, अपूर्ण नही। वह ऐसा पूर्ण है, जिसमें से समस्त पूर्ण निकाल लेने पर भी उसका पूर्णत्व अवशिष्ट रह जाता है। उस पूर्णत्व में शून्यत्व नहीं आता। जिस मन्दिर में बैठकर मनुष्य ईश्वर की आराधना में सलग्न होता है, उस आराधना का परिणाम क्या होगा ? यह एक वैज्ञानिक तर्क है। जहां मनुष्य के हृदय में श्रद्धा है, वहां तर्क भी है। तर्क से श्रद्धा का तात्विक-चिन्तन चमकता है, निखरता है। फिर वह परिशुद्ध होकर जीवन के लिए उपयोगी बनता है। स्पष्ट प्रतीति होती है, कि जब मनुष्य के हृदय में श्रद्धा या आराधना का सवेग उच्छ्वसित होता है तो साथ में अर्पण की भावना भी उन्निद्रित होती है शबरी के हृदय में राम की आराधना थी। चिर प्रतीक्षित राम शबरी के तृण-कुटीर पर अतिथि बनकर पहुचे, तो उसने अपनी आराधना को बदरी फलों के रूप में राम को अर्पित कर दिया। मानव हृदय में होने वाली आराधना शून्य का अन्वेषण करती है, जहां अभाव है, अज्ञान है, दुख-दैन्य या पीडा है, मानव-हृदय की आराधना की वही उपयोगिता है। यदि जलता हुआ दीपक तमाशा देखने के लिए उर्मिल जल प्रवाह पर तिरा दिया जाए, तो उसका क्या लाभ ? दीपक जल पर रख देने के लिए नही है, वह अन्धकार को दूर करने के लिए जलता है। यही उसका दायित्व है, कर्तव्य है। जो व्यक्ति उस दीपक के कर्तव्य को समझ कर उसका सदुपयोग करता है, उसकी मानवता भी सार्थक है। श्रद्धा या आराधना के साथ होने वाला तर्क मनुष्य को इसी श्रेष्ठ अनुभव पर पहुंचाता हुआ उसे अभ्युदय की ओर अग्रसर करता है।

प्रा.-पुरुषोत्तम मुनि रामकृष्ण

सैद्धान्तिक एवं बौद्धिक क्रान्ति थी। चिन्तन-जगत् में यह दार्शनिक क्रान्ति आकाश-गंगा को भूतल पर उतारने की थी, जहां उसकी सार्थकता थी और जिसे भूतल की सृष्टि ने अपना श्रेयस्कर वरदान मानकर उसका स्वागत किया। यह श्रमण संस्कृति अरिहन्तों-तीर्थ-करों की संस्कृति थी। यह किसी अज्ञात की ओर भटकना नहीं चाहती थी। इसका आराध्य भूतल का मनुष्य और उसके आश्रित इतर जीव-सृष्टि है। अतः श्रमण-संस्कृति इस लोक की आराधना का समर्थन करती है। वह इसी की आराधना में अपनी श्रद्धा के पुष्प चढ़ाती है।

संस्कृति में संस्कारक तत्व होता है, जो किसी का निर्माण करता है। वह तत्व है, आराधना। आराधना जीव के अन्तस्तल मे प्रकट होती है। उसमे एक पवित्र आत्मीयता की भावना होती है। उस भावना को किसके लिए अर्पित किया जाए? यह एक विवेक का प्रश्न है, जिससे उसका संस्कार हो, निर्माण हो, उसके लिए ही अपनी आराधना को अर्पित कर देना चाहिए। यही श्रमण-संस्कृति अथवा तीर्थंकरो का विराट् उदगार है। आराधना में निकट के वेदना व्याकुल मानव की उपेक्षा का कोई स्थान नहीं है। यह जीवन का सापेक्ष सिद्धान्त है। सन्तप्त मानव और इतर जीव सृष्टि की हित-साधना की प्रक्रिया है। एक बार तीर्थंकर महावीर के ब्राह्मण कुलोत्पन्न ज्येष्ठशिष्य इन्द्रभूति ने उनसे प्रश्न किया—भन्ते! एक व्यक्ति आपकी उपासना करता है, एक विश्व की आराधना करता है। इन दोनो मे से कौन-सा श्रेष्ठ है? महावीर बोले—इन्द्रभूति! जो ससार की आराधना करता है वह श्रेष्ठ है। मुझमें और ससार मे कोई अन्तर नहीं है। ऋषभदेव से लेकर महावीर तक तीर्थंकरो की परपरा ने यही सन्देश दिया है कि व्यक्ति के हृदय मे होने वाली आरा-धना एक उपहार है, जिसे लोकहित मे अर्पित करना है। पुष्प खिलता है तो वह खिन्न लोक को अपना मधुर हास्य अर्पित करता है, यदि व्यक्ति की आराधना से लोक-साधना नहीं होगी, तो जो मानव हृदय मे आराधना का अंकुर आविर्भूत

तीर्थंकरों, श्रमणों की परम्परा ने मनुष्य के विषय में एक बहुत बड़ा ज्ञान दिया था। उसने मानववाद का अपना सिद्धान्त माना। अपने सिद्धांत में मानववाद का ही निरूपण किया। इस परम्परा की संस्कृति सारा महत्व मनुष्य को ही प्रदान करती है। मनुष्य से अतिरिक्त वह किसी को ऊंची दृष्टि से देखने की अपेक्षा नहीं रखती। इसीलिए इस संस्कृति का अनुयायी वर्ग सन्ध्या-वन्दन के समय इसी का अभिवन्दन करता है, इसी की अर्चना करता है।

नमो अरिहंताणं।

—अरिहंतों को नमस्कार करता हूं।

अरिहन्त अति मानव है। उनमें देवत्व है। वह साधारण अविकसित मानव का आराध्य रूप में आदर्श है। अरिहंत में मानव-जीवन की समस्त अनुभूति विशेषतया विकसित हैं। वह समृद्ध, सन्तुष्ट, परिपूर्ण मानव-जीवन है। वह मनुष्य का ही नहीं, स्वर्गीय सृष्टि का भी स्पृहणीय है। अरिहंतभाव मनुष्य का उत्कर्ष प्राप्त मनुष्यत्व है। मनुष्यत्व, मनुष्य का परम सत्य है। इस सत्य के दर्पण के माध्यम से वह अंतर्हित प्रच्छन्न अहिंसा, करुणा आदि दैवी समृद्धियों का आलोक पाकर उनकी उपलब्धि हेतु प्रयत्न करता है। इसीलिए एक इंसान ऊंचा देवता है। अतः स्वर्ग का देवता भूमि के इस देवता के पावन चरण का अपने हाथों से स्पर्श करता है। महावीर ने हज़ारों वर्ष पहले यही मानववाद भारत के सामने रखा था—

देवा वि नं नमंसंति

देव भी उस (मनुष्य) की पूजा करते हैं। इस सत्य का दर्पण मनुष्य के ही पास होता है, पशु इससे वंचित है। इसीलिए, मनुष्य मनुष्य होते हुए भी देवत्व की कोटि तक पहुंच जाता है। पशु, पशुता

की परिधि में ही बन्द रहता है। पशुत्व की सीमाओं को लाँघ कर वह आगे नहीं बढ़ सकता।

आर्हतभाव मानव-जीवन की राग-द्वेष से विमुक्त स्थिति है। उसमें वर्ण जाति, स्थान आदि भेदों का समावेश नहीं है। कोई भी व्यक्ति ब्राह्मण है या शूद्र, वैश्य है या क्षत्रिय, रागद्वेष से विमुक्त होकर अर्हन् बन सकता है। अर्हन् का अर्थ है, पूजनीय। अर्हन् या अरिहंत शुद्ध विश्व-जनीन मानव का प्रतीक हैं। महावीर आदि तीर्थंकरों ने मनुष्य के भीतर रहे पशुत्व का निराकरण करने के लिए ही मानव जाति के सामने शुद्ध मानव की पूजा का सन्देश रखा। यह सन्देश विश्व के मनुष्यों को मनुष्यत्व की दृष्टि से देखने का आह्वान है। इसी से महावीर आदि तीर्थंकरों ने दुनिया के लिए विश्व-बन्धुत्व एवं विश्व शान्ति के पथ का निर्माण किया था। भेद-दृष्टि से मनुष्य में दूसरों के लिए आत्मीयता या बन्धुता का लोप होता है। फिर वह अपने को विभिन्न मानने लगता है। मनुष्य की भेद-दृष्टि में समत्व लाते हुए मानव पूजा के आधार पर विश्व-बन्धुत्व के मार्ग का तीर्थंकरों ने आविष्कार किया था।

एक तरफ तो मनुष्य ईश्वर की उपासना में सलग्न है, दूसरी तरफ़ वह अपने बन्धुओं से कलह करता है। यह कैसा अज्ञान है, कैसी विरोध-पूर्ण वृत्ति है? एक तरफ़ ताप-शान्ति हेतु जल ढूंढ़ता है, दूसरी तरफ आग जलाता है। एक कदम आगे रखता है तो एक पीछे। क्या इस तरह वह लक्ष्य बिन्दु तक पहुंच सकता है? उसे ईश्वर उपासना की अपेक्षा मानव अर्चना का ज्ञान देना होगा। इसके बिना न मानव जाति एक होगी, न उसका धर्म एक होगा। तीर्थंकरों ने मानववाद का विश्वशान्ति और विश्व बन्धुत्व का उपाय मानते हुए ही यह महान् वाक्य बोला था कि मनुष्य मनुष्य में कोई अन्तर नहीं है। पृथ्वी के सब मनुष्य एक हैं। तुम अपने बन्धुओं से क्यों लड़ते हो?

मनुष्य-जातिरेकैव ।

उत्तरकालीन वैदिक-संस्कृति योग सांख्य आदि दर्शन के नाम से प्रसिद्ध है । उसने भी ब्रह्म की अपेक्षा मनुष्य को आत्मदर्शन के द्वारा स्वय को देखने की विधि का निर्देश किया है । वह भी ब्रह्मवाद से मानववाद पर विराम लेती है । जिनकी मन्दिरों में उपासना हो रही है, वे महावीर, बुद्ध, कृष्ण के रूप में इंसान ही तो है ।

तीर्थकरों की परिभाषा के अनुसार आज का जन्म लेने वाला मनुष्य विश्व मानव होगा । उसे बताना होगा कि तुम्हारा जन्म न किसी कुटुम्ब या परिवार में हुआ है, न किसी विशेष देश या राष्ट्र में हुआ है, न किसी जैन, हिन्दू या मुस्लिम जाति मे, बल्कि तुम्हारा जन्म इस विशाल वसुधा पर हुआ है । तुम छोटे परिवार के छोटे पुत्र नही हो, विशाल भूमि माता के पुत्र हो । तुम सबके बन्धु हो—

माता भूमि: पुत्रोऽहं पृथिव्या:

तीर्थंकर, अवतार या पैगम्बर विशाल भूमिमाता के ही पुत्र थे । इस उदार भावना से प्रेरित होकर उन्होने राज-वैभव का त्याग किया था । लोक-कल्याण के हेतु बडी-बडी यातनाय सही थी । अन्तिम तीर्थंकर महावीर ने विश्व-बन्धुत्व की भावना से आर्द्र होकर अपनी अन्तरात्मा का विराट् स्वर सारे ससार तक पहुचाया था- "आज मे इस पृथ्वी के ऊपर मेरा कोई शत्रु नही है ।" आज नये इन्सान की रचना के लिये, जन्म धारण करने वाले मानव को विश्व-बन्धुत्व के लिए महावीर की शपथ लेनी होगी—कि मै इस पृथ्वी पर होने वाले मनुष्य को मनुष्यत्व की आंखों से देखूगा । उसे हिन्दुत्व, जैनत्व की आंखो से नही । आज मे भूमि मेरी जननी होगी, उस पर रहने वाला मनुष्य मेरा बन्धु होगा ।

तीर्थङ्कर श्रमण होते है । लोक-परलोक के लिए श्रम करने वाले साधु को श्रमण कहते है । पहले श्रमणों के मानने वाले को श्रमणो-

पासक कहा जाता था। आज श्रमणोपासकों को जैन के नाम से पुकारा जाता है। जैन धर्म विश्वमान्य धर्म रहा है। अरिष्टनेमि, महावीर आदि कितने ही तीर्थङ्करों का उल्लेख वैदिक साहित्य में मिलता है। यूरोप और एशिया महाद्वीप के बड़े-२ विद्वानों ने इस धर्म का सुचारू रूप से रुचि एवं श्रद्धा के साथ अध्ययन किया है। पश्चिम एशिया, मिस्र, यूनान और इथोपिया आदि दुनिया के भूखण्डों में उसने अपना सन्देश पहुंचाया है। वहां की जनता इस धर्म से प्रभावित हुई है। इंग्लेंड के महान् दार्शनिक बर्नार्डशा ने इस धर्म से प्रभावित होते हुए अपनी अन्तिम आकाङ्क्षा अभिव्यक्त की थी, कि "मेरा जन्म भारत के उस कुल में हो, जहां जैनधर्म के सिद्धांतों का पालन होता हो।"

मनुष्य के सामने एक महान् प्रश्न उपस्थित होता है, धर्म क्या है? क्योंकि धर्म से मनुष्य की मानवता सफल होती है। जो अपूर्ण है, उसे पूर्ण बनाने में धर्म का उपयोग होता है। मनुष्य अपने पशुत्व के कारण अपूर्ण है। उसे धर्म-विज्ञान से शिक्षित कर पशुत्व से मनुष्यत्व की ओर बढाता है। धर्म से पशुत्व का संस्कार करके मनुष्य पूर्ण बनता है। अतः धर्म मनुष्य का विषय है। मनुष्य के चिन्तन से ही धर्म की सृष्टि होती है। कृष्ण की गीता स्पष्ट शब्दों में कहती है। कृष्ण इस पृथ्वी पर धर्म के लिये ही अवतरित हुए थे। यह आगम-प्रमाण है। यह प्रमाणित करता है कि धर्म मनुष्य-प्रदत्त वरदान है।

वैसे स्वभाव आदि अनेक अर्थों में धर्मशब्द प्रयुक्त हुआ है। संस्कृत के अमरकोष में पुण्य, यम, न्याय आदि को धर्म माना गया है। प्रयोजनवश धर्म का अर्थ यथा समय बदलता रहा है, लेकिन इसका जो मूल अर्थ है, वह कभी नहीं बदल सका। उसका मौलिक अर्थ अविच्छिन्न प्रवाह के साथ चला आ रहा है। धर्म का शाब्दिक अर्थ है—जीवन। इस अर्थ को भूत, भविष्यत्, वर्तमान में कभी भी

बदल नहीं सकते। जीवन की उपलब्धि सार्वभौमिक एवं त्रैकालिक सिद्धांत है। मनुष्य से लेकर इतर जीव सृष्टि जीने के लिए प्रयत्नशील है। सभी जीवन की आकांक्षा लिये हुए हैं। जीवन व्यक्ति की सर्वश्रेष्ठ सम्पत्ति है। विश्व की किसी भी मूल्यवान् सम्पत्ति को देकर जीवन को सुरक्षित रखा जा सकता है। अत: सर्वप्रथम समाज में यह जिजीविषात्मक धर्म अहिंसा के रूप में प्रकट हुआ। अहिंसा के पथ पर धर्म का रथ आगे बढ़ा। अहिंसा के पश्चात् सत्य आदि धर्मों की समाज में मार्गणा हुई। वे अहिंसा को अपना केन्द्र बिन्दु मानकर उसके चारों ओर घूमने लगे। इस तरह समाज में धर्म-चक्र का प्रवर्तन हुआ। धर्मचक्र में केन्द्र बिन्दु होने के हेतु ही समाज में अहिंसा को 'परमो धर्म:' की प्रतिष्ठा मिली। इस आधार पर अहिंसा जीवन की व्यवस्था करने वाला सिद्धान्त स्वीकृत हुआ। फिर जीवन और धर्म की भेद रेखा का समाज में अन्त हुआ। समाज को यह एक अपूर्व अभेद विज्ञान मिला, जिससे जीवन और धर्म में पृथक् अनुभूतियां नहीं रहीं। मनुष्य दोनों को समान समझने लगा। जीवन से धर्म का पृथक् अनुभव करना अज्ञान है। अज्ञान पापों का मूल है। जीवन-तत्व धर्म का ज्ञान है। ज्ञान से पाप मूल का उच्छेद होता है। अत: जब से जीवन का प्रारम्भ होता है, तभी से धर्म का प्रादुर्भाव हो जाता है। जीवन धर्म की मिट्टी पर ही सत्यादि धर्म अंकुरित होते हैं। बीज उगाने के लिए मिट्टी चाहिए। सत्यादि धर्म के लिये जीवन चाहिये।

अहिंसा जीवन का एक तरीका है। इसके माध्यम से जीवन और धर्म में अभेद स्थापित हो जाता है। अहिंसा का त्याग करके हम कभी जी नहीं सकते, क्योंकि इसमें जीवन का विस्तार होता है। समीचीन दृष्टिकोण से इसे समझने की जरूरत है। अहिंसा सिर्फ जीवन की घात का निषेध ही नहीं है। यदि इतना ही मानकर चलेगें तो कुटुम्ब समाज का आधार ही अस्त-व्यस्त हो जायेगा और

तदाश्रित धर्म भी लुप्त हो जावेगा। अतः अहिंसा निषेध या निवृत्ति ही नहीं है विधान या प्रवृत्ति भी है। विधान निषेध को उज्जीवित रखता है। बीजारोपण के पश्चात् जलाभिषेक आदि क्रियायें भी अपेक्षित हैं। किसी को उत्पीड़ित न करना, इतना ही सीमित अर्थ अहिंसा का नहीं हो सकता। इसमें दूसरों को पीड़ा परिताप से उबारने का विधान भी गर्भित है। निषेध में विधान भी होता है। घट नीला नहीं है, नीलत्व के निषेध में पीतत्व आदि का विधान है—

एक-विशेष-निषेधे सति विशेषान्तर-विधायकत्वम् ।

यह नैयायिक तर्क से सिद्ध है । महावीर सर्वज्ञ थे, अहिंसा के अग्रणी थे। इन्हीं सब अहिंसा के दृष्टिकोणों को लक्ष्य में रखते हुए उन्होंने अपने प्रवचन में कहा था—

सव्वे जीवा वि इच्छंति जीविउं ।

सभी जीव जीवन के लिये आकुल है। वे उसका विस्तार करना चाहते है। महावीर के श्रमणों, निर्ग्रन्थों ने इस सन्देश को भारत के प्रत्येक कुटुम्ब-परिवार को सुनाया कि किसी भी धर्मक्रिया में किसी भी जीव की घात करना पाप है। सब जीवन के लिए आतुर है। सब की रक्षा करना धर्म है। यह प्रभु महावीर का सन्देश है—

सव्वजग-जीव-रक्खण-दयट्ठयाए भगवया पावयणं सुकहियं ।

प्रवृत्यात्मक रक्षामूलक विधान के द्वारा अहिंसा के अर्थ को पूर्ण करने के लिए अनुकम्पा, दया, करुणा आदि शब्दों का समाज में आविष्कार हुआ। ये पीड़ित की रक्षा के लिए विचार जाग्रत करके दुःख से बचाने के प्रयत्नों का प्रतिपादन करते है। पुण्य, दान आदि सुकृत हैं। इसीलिए धर्म है, कि इनसे समाज में सह-अस्तित्व, परस्पर सापेक्ष एवं विहित अहिंसा भाव का विस्तार होता है। इन सुकृत्यों से सारे समाज में अपरिग्रहवाद भी आता है । अर्थात् अहिंसा-बुद्धि से प्रदत्त दानदाता को परिग्रह के दोष से भी मुक्त

रखता है। महावीर ने अपना स्वर्णभण्डार वर्ष पर्यन्त इसी दृष्टिकोण से गृहत्याग के समय अभावग्रस्त जनता में वितरित कर दिया था। जीवनरक्षा का धर्म कितना महान् है, कि किसी जीव के घात को रोकने के लिए वस्तु त्याग ही नहीं, सत्यादि धर्मों का भी त्याग किया जा सकता है।

विश्व की मानव-जातियां एक-दूसरे की हिंसा से विरत नहीं हो पाई है। उसे हिंसा से विरत करने के लिए परकीय सुख-दुःख की अनुभूति करानी है, यह अहिंसा से ही सम्भव है, उसी में यह अनुभूति रही हुई है। अहिंसा दूसरे के दुःख-सुख को समझने की शक्ति है। सच्चा अहिंसक वह है, जो दूसरों के सुख-दुःख की अनुभूति करता है। वह फिर किसी भी देश या जाति से सम्बन्ध रखता है, किसी को न दुःख की स्थिति में देख सकता है, न किसी पर घातक प्रहार ही कर सकता है। अहिंसा जीवन की एक नीति है, जो बीजांकुरवत् मानव-हृदय में विहित है। ज्ञान द्वारा ही उसके हृदय में यह नीति विकसित होती है। स्वर्ग-नरक या दैवी प्रकोप-अनुग्रह के भय से और लोभ से वह विकास नहीं पाती। भय और लोभ से पशु प्रेरणा पाकर सीधा चलता है। मनुष्य ज्ञान से सीधा चलता है। प्रहार पशु के लिए निश्चित है, ज्ञान मनुष्य के लिए। आज तक जो जातियां भय या लोभ-नीति का आधार लेकर अहिंसा-नीति पर चली हैं, वे दूसरों को पीड़ा पहुंचाने के संस्कारों से मुक्त नहीं हो सकी हैं। अहिंसा-नीति का ज्ञान द्वारा विकास करके जीवन को विस्तृत विशाल करना, एक जीवन विज्ञान है। जीवन मर्यादित नहीं, अनन्त है। कोई अपने जीवन की इयत्ता नहीं कर सकता। अतः अहिंसा जीवन की अनन्त सत्ता तक पहुंचने का मार्ग है।

जीवन सुख अथवा शांति की अनुभूति के लिए होता है। जीवन दुःख या कष्टों की अनुभूति के लिए नहीं। जीवन यदि आनन्दशून्य है

तो जीवन और मृत्यु में क्या अन्तर ? नारकीय जीवन इसीलिए अभिशाप है, कि वहां पलभर का भी कोई उल्लास नहीं। कष्टों की परम्परा का नाम ही नरक है। जैसे मधु में मिठास होना जरूरी है वैसे ही जीवन में सुख-शान्ति जरूरी है। इसी तत्व पर महावीर ने जीवन की व्याख्या की थी—"सब प्राणी सुख चाहते हैं, वे दुःख नहीं चाहते।" यहां एक तात्विक विचार उत्पन्न होता है—सुख और शान्ति में से जीवन के लिए कौनसा तत्व उपादेय होना चाहिए ? सुख श्रेयस्कर है या शान्ति ? सुख बंधन है, शान्ति निर्वाण है। सुख भोग है या मृत्यु है, शान्ति त्याग या अमृत है। सुख नास्तिकता है, शाँति श्रद्धा या आत्मा है। आत्मा की उपलब्धि के लिए ही जीवन है। आत्मा जीवन, शान्ति, प्रकाश की अनन्त सत्ता है। अतः आत्मा की उपलब्धि मनुष्य का अन्तिम लक्ष्य है। मानव-यात्रा का यहां विराम होता है। इससे आगे इसकी और कोई मंजिल नही है। धर्म की आराधना से यहां पहुंच कर मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। तीर्थंकर आर्हतों का धर्म और मानववाद मनुष्य को अपने इसी लक्ष्य तक पहुचा कर विराम लेता है।

□□

भगवान् महावीर का राष्ट्र-सन्देश

○ ○

महापुरुष मनुष्य के जीवन का प्रकाश स्तंभ होता है। वह अतीत हो जाता है। कालधर्म उसके अखण्ड अनंत व्यक्तित्व को मिटा नही सकता। महावीर ने संसार से अलिप्त रहकर जो चिंतन दिया वह अढाई हज़ार वर्ष बाद आज भी जीवन्त है। उस समय जो संसार में वैचारिक पंगुता थी प्रकारान्तर से आज भी अनेक प्रकार की क्षुद्रता समाहित है। महापुरुष का चिंतन त्रिकाल अबाधित होता है। भाषा का उन्माद, प्रांत का विष, जाति का अहं आज भी राष्ट्र को किस प्रकार निगल रहा है? प्रस्तुत निबंध इस सत्य तथ्य का साक्षी है।

—सं०

○ ○

हजारों वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी किसी महापुरुष का जन्म-दिवस मना कर जनता उसे जीवित रखने का सतत प्रयत्न करती रहती है। किसी महापुरुष की जयन्ती से इन्हीं विचारों की धारणा परिलक्षित होती है। इस धारणा में निहित एक सत्य यह होता है, कि राष्ट्र के क्षितिज पर प्रकाशमान नक्षत्र के रूप में किसी-न-किसी महापुरुष का उदित होना जरूरी है। राष्ट्र की जनता भौतिक सम्पदाओं की अपेक्षा महापुरुष को इतना प्रश्रय इसलिए देती है कि वह राष्ट्र की अखण्ड शक्ति का प्रतीक होता है। मनुष्य का विराट् चिन्तन एवं विराट् आचरण देश की अखण्ड शक्ति का

स्रोत प्रवाहित कर देता है। महापुरुष का चिन्तन और आचरण विशालता की उस सीमा को छू रहे होते हैं, जिन्हें क्षुद्र परिधियों के अन्दर संकुचित करना असम्भव होता है। इसी पारमार्थिक परम्परा पर शुरू से लेकर आखिर तक वह अपना सारा जीवन व्यतीत कर देता है। जीवन की यह पारमार्थिक परम्परा देश की जनता के लिए एक महान् शक्ति के रूप में सिद्ध होती है। इसीलिए महापुरुष भी अखण्ड शक्ति के रूप में देश को मिलता है। वह कभी अकेला नहीं आता, सारे समाज के साथ आता है।

महापुरुष के जीवन-दृष्टिकोण में समवाय होता है। उसमें विघटन पैदा करने वाला कोई भी तत्व नहीं होता। वह अपने आचार और विचार से बिखरे हुए समाज को एकत्रित करके लोक-संग्रह का आदर्श स्थापित करता है। उसके आचरण में रूढ एवं साम्प्रदायिक विधि-विधानों का कोई आग्रह नहीं होता। वह अपने हृदय के मधु-बिन्दुओं को सब के आस्वाद के लिए सुलभ बनाता हुआ जीवन-पथ पर क़दम रखता हुआ चलता है। इस अमृत के वितरण में उसकी दृष्टि सार्वभौम होती है, खण्डित दृष्टि नहीं होती। अहिंसा के अन्दर यही अमृत की मिठास है, जिससे विश्व का प्रत्येक महापुरुष लोक-संग्रह के आदर्श को प्रतिष्ठित करने में सफल होता है। इसी लोक-संग्रह के माध्यम से राष्ट्र में धर्म आदि विविध शक्तियों का विकास होता है।

भारत की जनता भगवान् महावीर की स्मृति में प्रतिवर्ष विशाल आयोजन आयोजित करती है। उनके कृत उपकारों के प्रति अपनी श्रद्धा भी समर्पित करती है। महावीर के प्रति श्रद्धा उंडेलने का केन्द्र-बिन्दु यही है, कि उस महापुरुष ने भारत की जनता में समवाय अथवा लोक-संग्रह के दृष्टिकोण की स्थापना करके देश को शक्तिशाली बनाने का प्रयत्न किया। महावीर को अपने युग में जो भारत मिला था, उस समय समाज में भ्रान्ति एवं अज्ञानता से तरह-तरह का विघटन पैदा हो रहा था। जातिवाद, भाषावाद,

स्वामित्ववाद, सामाजिक विघटन के मुख्य आधार थे। जातिवाद के आधार पर समाज ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि चार बड़े खण्डों में विभाजित था। उस समय महावीर ने जातिवाद को नई परिभाषा देकर जातिवाद के पुराने सिद्धान्त को अमान्य घोषित कर दिया। उन्होंने कहा—समाज में ब्राह्मणत्व आदि कोई भी जन्मसिद्ध अधिकार वैध नहीं होगा। समाज में ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय वही होगा जो तदनुकूल कर्म या आचरण से सम्पन्न होगा। इस तरह समाज में व्यक्ति के जन्म पर कर्म का आधिपत्य स्थापित करके एक बहुत बड़ी क्रान्ति का आह्वान किया गया, जिससे समाज का विराट् रूप नष्ट होने नहीं दिया गया।

महावीर के युग में भाषावाद का उन्माद भी भयंकर रूप धारण कर चुका था। संस्कृत उस जमाने की प्रतिष्ठा-प्राप्त भाषा थी। वेद तत्कालीन प्रमुख धर्म-ग्रन्थ थे, जिनकी भाषा संस्कृत थी। उस पर ब्राह्मण-वर्ग का विशेषाधिकार था, क्योंकि संस्कृत भाषा के अध्ययन का उसी वर्ग को अधिकार दिया गया था। इन सबसे समाज के इतर वर्ग वंचित थे, जिसमें शूद्र जाति अत्यन्त विपन्न दशा में पहुच चुकी थी। उसके सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक—सभी अधिकार छिन गये थे। मनुष्य होते हुए भी, उन्हें समाज में मानवीय जीवन-यापन का अधिकार नही रह गया था।

भारत की अर्थनीति में भी असन्तुलन आ चुका था। आर्थिक असन्तुलन से समाज में हीन-भावना का प्रचार हो रहा था। समाज में जिनके पास विपुल वैभव था, उन्हें स्वामी कहा जाने लगा। राष्ट्र की अर्थ-नीति का निर्माण उन्ही धन-कुबेरों से होता था। अतः जो इनके अधीन होकर जीवन-यापन करते थे, उन्हें दास कहा जाता था। वे अपने स्वामी को अपना पूर्णरूपेण समर्पण कर देते थे। उनका घर की किसी वस्तु पर भी स्वत्व नही रहने दिया जाता था। दाम्पत्य जीवन पर भी उनका अपना कोई स्वत्व नहीं था। उनका

सब-कुछ स्वामी का ही धन माना जाता था। इस तरह अर्थ-भेद की नीति से शूद्रों की तरह दासों का भी एक निम्न वर्ग पनप रहा था। शूद्रों और दासों के दो निम्न वर्गों के विराट् गर्त, समाज की समतल भूमि में उत्पन्न हो चुके थे, जिनमें सारे राष्ट्र के पतन का उपक्रम तैयार हो रहा था। इस सुधार के लिए महावीर ने धनी वर्ग को एक विचार दिया, कि भारत के परिवारों में कोई दास नहीं होना चाहिए। जो आश्रित हैं, उन्हें कुटुम्ब का सदस्य मानकर उनके साथ कौटुम्बिक जन की तरह समानता का व्यवहार करें। अर्थ की उत्पत्ति का मूल श्रम है। अतः राष्ट्र या समाज में जो संपत्ति अर्जित होती है, उससे होने वाली जीवन सुविधायें सबको समान रूप से प्राप्त होनी चाहियें। अर्थसुलभ सुविधायें श्रमिक वर्ग को भी जीवन-धारण करने के लिए जरूरी है। अर्जित सम्पत्ति पर श्रम का भी मौलिक अधिकार है। महावीर की कौटुम्बिक विचारधारा तथा आर्थिक क्रान्ति का, भारत की पारिवारिक और आर्थिक-नीति पर ऐसा प्रभाव हुआ, कि जो धनी वर्ग था, वह अपनी सम्पत्ति का मोह छोड़कर श्रमिक की तरह अपना जीवन व्यतीत करने लगे और साथ ही पारिवारिक जीवन-नीति मे भी परिवर्तन ले आये। उन्होंने गृह-दासों का अपनी स्वजनता प्रस्तुत कर दी। जैनागम इस सत्य की साक्षी देते हुए एक श्रमणोपासक का नाम-निर्देश करते है, जिसका नाम पूर्णक था। वह महावीर का परम उपासक और उस युग का बहुत बड़ा उद्योगपति था।

प्रत्येक व्यक्ति के लिए बौद्धिक विकास की आवश्यकता को महसूस करते हुए, महावीर ने संस्कृत भाषा और वेदों पर से विशेषाधिकार को समाप्त करने का आन्दोलन प्रारम्भ करके उन्हें सर्व-जन-सुलभ बना दिया। भाषा-भेद को मिटाने के लिए, उन्होंने अपना धर्मोपदेश लोक-भाषा प्राकृत में दिया, जिसे भारत की सर्व साधारण जनता समझ सकती थी।

भारत के लंगड़े समाज को खड़ा करने में जो श्लाघनीय प्रयत्न महावीर ने किए है, उन्हे भारत की जनता कभी भुला नहीं सकती।

दुर्बल समाज को, अज्ञ जनता को चेतना प्रदान करने में उस युग-पुरुष ने अपना सारा जीवन लगा दिया। वर्ग-भेद के पाप को मिटाने के लिए महावीर ने अहिंसा का मार्ग अपनाया। महावीर राजपुत्र थे। राजा के पुत्र होते हुए भी उन्होंने हिंसा का मार्ग नहीं अपनाया। उन्होंने प्रत्येक क्रान्ति में अहिंसा को साथ रखा। उनकी क्रान्ति अहिंसा की क्रान्ति थी। हिंसा से कभी क्रान्ति नहीं आ सकती। हिंसा या शस्त्र से आने वाली कोई क्रान्ति ही नहीं हो सकती। पशुता, अज्ञानता, दुर्बलता—समाज के बड़े दोष होते हैं। हिंसा से इनकी और अधिक अभिवृद्धि होती है। जिस क्रान्ति में मानवता का कोई सिद्धान्त नहीं होता, उससे मानवीय जीवन में कोई परिवर्तन नहीं आ सकता। महापुरुष सभ्य और शालीन तरीके से समाज में परिवर्तन लाना चाहता है। इसके लिए अहिंसा और प्रेम के अतिरिक्त कोई मार्ग नही हो सकता। इसीलिए वह अहिंसा को मनुष्य के लिए परम धर्म के रूप में उसके सामने रखता है। हिंसा भय का पथ है। विचारों में उससे कभी परिवर्तन नही लाया जा सकता। हिंसा से मनुष्य, मनुष्य से अलग हो जाता है। इससे लोक-संग्रह में अवरोध आता है और सामाजिक अनुभूति क्षीण हो जाती है। अहिंसा लोक-संग्रह की आत्मा है। यह लोक-संग्रह सामाजिक अनुभूति है। समाज में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए अहिंसा को सामाजिक अनुभूति के रूप में अपनाना उसका परम धर्म माना गया है। समाज में अहिंसा की ऐसी प्रतिष्ठा से दूसरों के सुख-दुःख को अपना मानकर अभेद-धर्म की नीति पर मनुष्य को चलने के लिये शिक्षित किया जाता है। राष्ट्र अथवा विश्व में वर्ग-भेद से जो हिंसात्मक पाशविक संघर्ष होते हैं, महावीर की अभेद-धर्मनीति से सम्पन्न अहिंसा के सन्देश से उनका अन्त किया जा सकता है।

इन्हीं वर्ग-भेदों का अन्त करने के लिए महावीर ने, जनता के बार-बार अनुरोध एवं प्रार्थना करने पर भी, अपने सर पर राज-मुकुट रखने से इन्कार कर दिया था और भरे-पूरे राज्य-वैभव को ठुकरा कर राजदण्ड की जगह हाथ में भिक्षा-पात्र ग्रहण कर लिया था। अर्थात् वे भिक्षु-जीवन में प्रवेश कर गये थे। भिक्षाटन

के लिए वे ऊंचे-नीचे धनि-निर्धन सभी कुलों में जाते थे। उनकी भिक्षा वर्ग-निरपेक्ष होती थी। अपने भिक्षु-संघ के लिए भी उन्होंने इसी निरपेक्ष-भिक्षावृत्ति का सन्देश दिया था—

नीयं कुलमइक्कम्म
ऊसढं नाभिधारए।

—भिक्षुओ ! निर्धन, नीच कुलों का अतिक्रमण करके ऊंचे, धनी कुलों में भिक्षा-ग्रहण करने के लिए मत प्रवेश करो। भिक्षा के लिए सभी कुलों में प्रवेश करो।

भगवान् महावीर ने ऐसी अहिंसा को आचरण में लाने से पहले, इसे अपने मन में भी प्रतिष्ठित कर लिया था। जब उनसे कोई प्रश्न करता—तुम कौन हो ? तब महावीर अहिंसा की भाषा में ही उत्तर देते थे-मैं एक भिक्षुक हूं। वे यह कह कर उत्तर नहीं देते थे, कि मैं राजा सिद्धार्थ का क्षत्रिय पुत्र और माता त्रिशला की कूख का एक मूल्यवान रत्न हूं और अब मैं भिक्षुक बन गया हूं। अपने भिक्षुक जीवन के साथ पूर्व-जीवन को भी नहीं जोड़ते थे। भारत की संस्कृति में भिक्षुक विशुद्ध मानव-जीवन का प्रतीक है, जो जाति आदि से निरपेक्ष होकर अखण्ड अहिंसा के पथ पर चलता है।

महावीर जयन्ती का शाब्दिक अर्थ होता है-महावीर का जन्म। लेकिन महावीर तो जन्म-मरण के बन्धनों से मुक्त हो चुके हैं। वे आ नहीं सकते। वे तो संसार-परिभ्रमण का अन्त कर चुके हैं। लेकिन महावीर ने अहिंसा का जिस आत्म-प्रेरणा से जो रूप राष्ट्र के सामने रखा था, उसे जनता सम्यक् रूप में समझने का प्रयत्न करे और उसे अपने आचरण में भी प्रतिष्ठित करे। महावीर की अहिंसा राष्ट्र की एक शक्ति के रूप में प्रकट हुई थी। अतः यह एक राष्ट्रीय सन्देश थी। इसी राष्ट्रीय सन्देश को भारत की सम्माननीय जनता के सामने दुहराने के लिये महावीर-जयन्ती का आयोजन सारे भारतवर्ष में प्रतिवर्ष किया जाता है। महावीर के दर्शनाभिलाषी, महावीर के दर्शन उनकी अहिंसा में कर सकते हैं। यह अहिंसा प्रत्येक व्यक्ति की

आत्मा मे निवास करती है। उसे महावीर की तरह अपने भीतर प्रकट करें, तो समाज और राष्ट्र की बुराइयों से लड़ने के लिए एक नही, कितने ही महावीर उपलब्ध हो सकते है।

महावीर की अहिंसा न निरर्थक है, न मनुष्य को कातर बनाती है। वह जीवन की प्रबल और अमोघ शक्ति है। जीवन की सभ्य-शालीन प्रणाली है, जो समाज और राष्ट्र पर आने वाली मुसीबतों का निर्भयता और मानवीय ढग से मुकाबला करने की क्षमता रखती है। अत: भारत की जनता का नैतिक कर्तव्य है, कि वह महावीर की अहिंसा के उपदेश को राष्ट्रीय-सन्देश समझे। उसकी जीवन मे उपासना करे, राष्ट्र को समृद्ध और शक्तिशाली बनाये। यही महावीर की उपासना है। इसी हेतु महावीर-जयन्ती का मगलमय दिवस भारतीय जनता के लिए यही सन्देश लेकर आता है।

□□

साधना और आत्म-दर्शन

००

साधु, समाजिकों का आराध्य क्यों बना? उस में ऐसी क्या अलौकिकता थी? आज साधुवर्ग (श्रमण) ने ऐसा क्या खो दिया? उसे किधर चलना था? वह कहाँ पहुंच गया भटककर? इन्हीं अहं प्रश्नों की परिक्रमा करता गुरुदेव का सूक्ष्म चिंतन अंधकार में भटकते जनों को विवेक का वह प्रकाश दीप थमा रहा है, जिसे पाकर अनन्त तिमिराछन्न में आत्म-पथ का यात्री किस प्रकार प्रकाश की ओर स्वस्थ चिंतक बन कर अग्रसरित हो सकता है। पढ़े साधना और आत्म-दर्शन में।

—सं०

००

साधु हमारी भारत की संस्कृति का प्रतिनिधि रहा है और भारत की सांस्कृतिक नीतियों का केन्द्र रहा है आत्मा। उत्पल की तरह संसार-कीचड़ से साधना के अन्तिम क्षणों तक अलिप्त रह कर विजनता के शून्य में जिन्होंने आत्मा की शोध कर आत्म-दर्शन की महान् उपलब्धि प्राप्त की, भारत की जनता ने उन्हें साधु की संज्ञा दी। उन्हें समाज और राष्ट्र का मूर्धन्य व्यक्ति मान कर उनकी अर्चना की, उनकी वन्दना की। भारतीय जनता को आकुलता से मुक्ति प्राप्त कर लेने का मार्ग मिला। आत्म-दर्शन के बिना मनुष्य क्लेशों से मुक्त नहीं हो सकता उसके बंधन नहीं टूट सकते! आत्मा पर ऐसी श्रद्धा भारत के जीवन में जागृत

हुई। भारत के आत्म-द्रष्टा मुनि जनता को यही संदेश देते रहे कि आत्मा को देखो, उसी को जानो, अन्य किसी को मत जानो, मत देखो! यही वह सेतु है, जो आकुलता के समुद्र से पार कर देता है। जब ये महान् ऋषि यह सन्देश विश्व की जनता के पास लेकर पहुंचे, तो उसने श्रद्धा-स्निग्ध नेत्रों से इनका अभिवादन किया। इनका अभ्युत्थान किया। उसे लगा जैसे सन्तप्त वसुधा पर वर्षा ऋतु के मेघ अपनी शीतल जलधाराओं से अभिषिक्त करने आये हैं। विश्व की जनता ने इससे आत्मा की व्याख्या सुनी, उसने उसकी परिभाषा का निर्णय किया और भी उसकी शोध में प्रयोग आरम्भ कर दिये। परिणाम यह हुआ, दीपक से दीपक जल उठे। असभ्य मानव जाति को मानवीय चेतना की प्रभा से आलोकित करके और हज़ारों-लाखों की संख्या में अपने जैसे आत्म-दर्शी बना कर, भारत के ये सांस्कृतिक प्रतिनिधि वापिस भारत लौट आए।

भारत का साधु, समाज और राष्ट्र का वह अर्चनीय व्यक्ति था, जिसका लक्ष्य आत्म-दर्शन था, संसार नहीं था। उसने जो अभिनिष्क्रमण किया, उसका हेतु आत्म-दर्शन था। आत्म-दर्शन ही साधु की चर्या है। इससे महत्तर उसका कोई आचार या चरित्र नहीं हो सकता। आत्म-दर्शन के बिना चरित्र की आराधना ऐसी है, जैसे—गगनारविन्दं सुरभि। यह दार्शनिक उक्ति है जो पक्षासिद्ध हेत्वाभास से आकाश में होने वाले कमल को असिद्ध करती है, अतः आत्म-दर्शन चरित्र की आराधना का मूल हेतु है। अन्य सभी भिक्षा-चरी आदि आचार इसी ध्रुव पर आ कर केन्द्रित होते हैं। भारत के समाज ने उसी साधु को भिक्षाग्रहण करने का अधिकार दिया था, जो जीवन की ज्योति प्रज्वलित करने की साधना कर रहा हो। इसीलिए ऐसे साधु को भिक्षुक कहा जाने लगा। समाज ने ऐसे भिक्षुक को भिक्षा प्रदान करना अपना एक कर्त्तव्य माना, ताकि जीवन को प्रशस्त करने वाली आलोक की परम्परा जीवित रहे। दूसरे भिक्षाशील व्यक्तियों को समाज भिक्षाक बोलता था। सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य के युग में महामात्य विष्णुगुप्त चाणक्य ने राज्य की तरफ़ से उन श्रमणों, ब्राह्मणों के लिए भिक्षा ग्रहण करने का विधान

बनाया था और अरण्य में रह कर चिन्तन-मनन में लगे रहते थे। इसके अतिरिक्त व्यक्तियों के लिए भिक्षा-वृत्ति दण्डनीय थी।

चरित्र समाज का सबसे बड़ा कानून है। अत समाज में चरित्र के विविध-विधानों पर हमेशा से ऊहापोह चलता रहा है। चरित्र के अन्तिम निर्णय पर पहुंचने के लिए बड़े संघर्ष होते रहे हैं, सारा समाज विवाद-परायण होता रहा है। यह सब अन्धो के युद्ध का एक युग रहा है। आज भी वह युग समाप्त नहीं हुआ है। चरित्र को लक्ष्य बना कर आज हो हल्ला हो रहा है। निरर्थक पारस्परिक कलह में साधना का मूल्यवान् समय व्यतीत किया जा रहा है। आगमों और ग्रन्थों के प्रमाण वाग्युद्ध के लिए प्रयोग में लाए जा रहे हैं। परन्तु समस्या का कोई समाधान नहीं मिल रहा है। शिथिलाचार को रोकने के लिए बड़े-बड़े उपाय सोचे जा रहे हैं। बढ़ते हुए शिथिलाचार से समाज चिंतित है। महान् प्रश्न उसके सामने है, क्या होगा ? लेकिन एक स्वानुभूत सत्य है, जो बोलता है कि सिर्फ आचार संहिताओं से आचार-शैथिल्य दूर नहीं हो सकता, जब तक साधु और उसका अनुयायी वर्ग आत्म-दर्शन को अपनी साधना का मूल हेतु स्वीकृत नहीं कर लेता। आत्म-दर्शन ही साधु का मौलिक आचार है। तीर्थंकरों, बाहुबली, प्रसन्नचन्द्र, अनाथ मुनि, नमि राजर्षि आदि पारदृश्वा मुनियों के पास कोई आचार-संहितायें नहीं थीं, न कोई आगम ही थे, फिर भी महावीर आगमों के माध्यम से उन्हें महान् मुनि, उत्तम मुनि मानते है। ये महान् मुनि आत्म-दर्शन की साधना करने वाले थे। आत्म-दर्शन ही इनका आचार था। इसलिए इन्होंने कुछ ही समय में आत्मा का साक्षात्कार कर लिया था। जीवन की आग बुझा कर परिनिर्वाण प्राप्त कर लिया था।

आत्म-दर्शन एक विस्तृत प्रक्रिया है, जिसे योग कहते है। योग-युक्त मुनि की जब योग की सब प्रक्रियाये पूर्ण हो जाती हैं, तब उसे अपने स्वरूप की पूर्ण उपलब्धि प्राप्त हो जाती है। यह समाधि है। योग की परिभाषा में यही संयम है। आगम की भाषा में जीवन

की यही अप्रमत्त अवस्था है। यही विश्रुत है, योगपरायण मुनि अविद्या आदि क्लेशों से सदा के लिए सर्वथा-विमुक्त हो जाता है। प्रत्येक साधु मुक्ति-पथ का यात्री है। उसका योगी होना साधना के क्षेत्र में पहली शर्त है। इसके बिना उसकी सारी क्रियायें, चाहे कितने गम्भीर आगमों की हों, सब अन्धकार हैं, चक्षु-विहीन है। जिन क्रियाओं का आगमों में साधना के यात्री के लिए निषेध है, उनका विराम योग-साधना के विशेष प्रयत्न से साध्य है। निरोध रूप योग की साधना से चित्त के प्रवाहित परिस्पन्दनों को रोकने का अभ्यास जब परिपक्व हो जाता है, तब योगी मुनि में परमाणु से लेकर परम-महत् तक के पदार्थों पर चाहे जहां, चाहे जब, अपने चचल मन को स्थिर करने की योग्यता आ जाती है। आगम ने ऐसे मुनि को अविक्षिप्त चित्त माना है - अविक्खित्तेण चेयसा। ऐसे विशेषण वाले साधु को भिक्षाचरी के लिए आगम अनुमति देता है। उसके लिए यह विशेषण बहुत आवश्यक है। ऐसे विशेषण से अलंकृत वही मुनि या साधु होगा, जो योग युक्त होगा। अनुभव कहता है, कि आज के साधु को योग की किसी प्रक्रिया का कोई ज्ञान नही है, न इसके लिए कोई रुचि है न लक्ष्य ही है, फिर साधना की महान् उपलब्धि जिसे आत्म-दर्शन कहते है, कैसे प्राप्त हो सकती है ? आज उसने आगम निर्दिष्ट क्रिया-कलाप में से कुछ ही क्रियाओं को अपनी साधना की उपलब्धि मान लिया है। इसी लिए वह मुक्ति के मार्ग से बहुत दूर चला गया है, अतः प्रत्येक मुनि को मुक्ति के लिए योग-मार्ग का ज्ञान होना अनिवार्य है। निशीथ आदि आगमों का गम्भीर दृष्टि से अन्वेषण करने पर मालूम होता है कि वे मुनि की साधना में योग की सार्थकता का प्रतिपादन करते है। यद्यपि पतञ्जलि के योग-दर्शन की तरह आगमो में योग-हेतु कोई क्रमबद्ध प्रक्रिया देखने में नही आती फिर भी उनमें कहीं-कहीं वाक्य रूप अवशेष अध्ययन करते समय आंखो के सामने आ जाते है। संघ-सम्प्रदाय का परित्याग कर एकाकी चिंतन मननार्थ जिन-कल्प-वृत्ति धारण करना, आचार्य का तीन-चार रात्रि श्मशान में निवास करना, तीन दिन के लिए उपवासी बन कर साधु का पर्वत कन्दरा में प्रवेश करना आदि योग-धर्म के सुरक्षित अवशेष है।

महावीर से लेकर भद्रबाहु तक तो श्रमणों, निग्रन्थों में योग की परम्परा चलती रही। तत्पश्चात उन्होंने योग-परम्परा का परित्याग कर दिया। इसका भयंकर दुष्परिणाम निकला। श्रमणों ने आगमिक विधानों को संयम की परिभाषा मान कर आत्म-दर्शन की प्रक्रियाओं के अभ्यास का परित्याग कर दिया, जिससे उनमें आगम-निषिद्ध क्रियाओं की ओर प्रवाहित होने वाले मन के परिस्पन्दनों को रोकने का ज्ञान ही विलुप्त हो गया। इससे साधना का स्तर गिरता चला गया। आज भी साधु कष्टों के कांटों पर अपना जीवन व्यतीत कर रहा है, फिर भी गुलाब की तरह उसमें तप-त्याग की सुगन्ध, सरलता, माधुर्य और स्मित नहीं पाये जाते। वह संसार के आवर्तों से जीवन के पोत को दूर रखने के लिए चप्पू मार रहा है; लेकिन संयम के अर्थ को न समझने से उसके जीवन का पोत उन्हीं आवर्तों की ओर गतिमान है। छोटे-से-छोटा और बड़े-से-बड़ा साधु संस्थाओं का आधार लेकर या अन्य वाग्जाल से पैसा एकत्रित करने में उलझा हुआ है। मुद्रणालयों का संचालन प्रच्छन्नरूप से उसके नियन्त्रण में चलता है, इत्यादि। यह सब संसार है, अनाचार है। संयम एक दर्शन है। इसका जब तक ज्ञान नहीं होगा, तब तक दोष और अदोष का परिज्ञान भी कैसे हो सकता है ? इसलिए साधु-वर्ग ज्ञान हीनता की ओर बढ़ रहा है। उसमें मुमुक्षुता का अभाव आता जा रहा है। सरलता छुप गई है, छल-कपट बढ़ रहा है। ऊंचा उठाने वाली नम्रता का ह्रास किया जा रहा है, गिराने वाले अभिमान की पूजा की जा रही है। जैसे साधु, वैसी जनता। अतः आज जनता की ज्ञान चेतना भी इतनी दुर्बल हो गई है कि वह संयम के सत्य को पहचान नहीं सकती। इसलिये समाज में होने वाले किसी भी विवाद पर कोई निर्णय नहीं ले सकती। बहुत दिनों से लाउड-स्पीकर की समस्या समाज के सामने है। समाज में यह वेदान्त का एक गम्भीर विषय बन गया है। कुछ साधु और उसका अनुयायी दल इस यन्त्र के पक्ष में है। इस यंत्र में बोलने पर वे साधु बड़े गर्व का अनुभव करते हैं। समाज में अपने महत्त्व को प्रतिष्ठित करने का इनका ऐसा तरीका है। कुछ इसे आगम-मर्यादा के विरुद्ध मान कर इसका प्रयोग नहीं

करते। समाज में स्व-महत्त्व के निर्माण करने का इन का ऐसा तरीका है। ये तो इसके प्रयोग को इतना दुष्कृत्य मानते हैं कि इस यन्त्र के प्रयोग करने वाले साधुओं के पास एक जगह कोई इसका प्रयोग न करने वाला साधु बैठता हो, तो उसके साथ भी ये कोई सांभोगिक क्रिया वन्दन आदि या अन्य यथोचित शिष्टाचार का भी आचार नही करते। ऐसी इनकी प्रतिज्ञा है। कितना बड़ा आश्चर्य है। कितनी बड़ी ज्ञान की दुर्बलता है, कि वस्तु-स्थिति को समझाना कठिन हो रहा है। अतः जब तक आत्म-दर्शन को साधना का लक्ष्य नही बनाया जायेगा, तब तक न संयम की सत्य दृष्टि सभव है, न तद्विषयक दोषों का ही ज्ञान हो सकता है और न समाज में शिथिलाचार को ही रोका जा सकता है, अनाथ मुनि, नमि राजर्षि आदि महान् धर्मदेवों ने कोई आचारसहिता लेकर अभिनिष्क्रमण नही किया था, फिर भी आगम उनकी स्तुति करता है, उन्हे लोक अर्चनीय की अर्हता के योग्य मानता है। इस रहस्य तक समाज पहुंचने का प्रयत्न करेगा, ऐसी मैं आशा करता हूं।

□ □

विवेक के चक्षु

○ ○

आंखें पशु के पास भी हैं। मनुष्य भी नेत्रधारी है। आंखें होना मनुष्य और पशु में भेद करने के लिए पर्याप्त नहीं है। आंखों के द्वारा रास्ते का बोध तो होता है किन्तु राह राही को उसके संलक्ष्य तक पहुंचाएगी या नहीं? इसका निर्णय दो आंखों से नहीं हो सकता। ऋषि-मुनियों ने तीसरे नेत्र से देखा जगत् को और चिंतन किया। तीसरा नेत्र क्या है? गुरुदेव के प्रस्तुत विवेक के चक्षु निबंध का मनन करें, और पाएं तीसरा नेत्र विवेक क्यों साधक के लिए आवश्यक है?

—सं०

○ ○

जब हम चलते हैं, तो आंखें खोलकर चलते हैं। अपने मार्ग पर चलने से पहले आंखों को खोल लेना जरूरी है। कदम तभी उठाया जाता है, जब आँखों से मार्ग देख लिया जाता है; नहीं तो चलते समय पतन की सम्भावना बनी रहती है। मार्ग निराबाध नहीं होता। उसमें गड्ढे भी होते हैं, ठोकरें भी होती हैं। यात्रा-पथ में कांटे भी बिछे हुए होते हैं। इन आपत्तियों से बचाने वाला कौन? ये हमारे दो नेत्र ही हमें उनसे बचाते हैं, और हम अपनी यात्रा को इन्हीं के आधार पर निर्विघ्न रूप से पूरी कर लेते हैं। ये दो आंखें अपनी जिम्मेदारी को कितनी सावधानी से पूरी करती हैं? जब तक यात्री अपना सारा मार्ग माप नहीं लेता, तब तक मार्ग प्रदर्शन में तत्पर रहती हुई, सतत खुले रहने के कर्तव्य को कभी नहीं भूलती।

मनुष्य एक यात्री है। जीवन उसकी यात्रा है। जीवन-पथ पर चलकर उसे एक लक्ष्य तक पहुंचना है। जीवन-पथ पर चलने के लिए किन चक्षुओं को प्रयोग में लाएं? यह एक प्रश्न है और बहुत बड़ा प्रश्न है। यदि मनुष्य मस्तक पर लगे दो नेत्रों पर विश्वस्त होकर चलता है, तो सारा प्रयोग गलत सिद्ध हो जाता है, सारी जीवन-यात्रा असफल रहती है। इन चक्षुओं के द्वारा मनुष्य अपने लक्ष्य तक नहीं पहुंच सकता। ये दो नेत्र पशु को भी प्रकृति की ओर से मिले हैं। यदि जीवन-यात्रा को उपयोगी बनाने में ये नेत्र पर्याप्त होते तो पशु भी जीवन-यात्रा को सफल बना लेता और मनुष्य एवं पशु का जो भेद आज तक चला आ रहा है, उसका अन्त हो जाता; फिर जीव-जगत् में मनुष्य की श्रेष्ठता का भी अन्त हो जाता। लेकिन ऐसा नहीं है। पशु दो नेत्रों के आधार पर सारा जीवन बिता देता है लेकिन उसके जीवन में कोई क्रान्ति नहीं आती।

दार्शनिकों ने मनुष्य का चित्रण करते हुए उसे तृतीय नेत्र-युक्त बतलाया है। प्रकृति की ओर से मनुष्य को यह तृतीय-नेत्र मिला है। इसी विशिष्ट नेत्र के आधार पर उसे शिव की संज्ञा दी गई है। यह मनुष्य के कल्याण का सबसे बड़ा साधन है। तीर्थंकरों की जब हम स्तुति करते है, तो उन्हें उसमें चक्षुदाता कहा गया है। यह उनकी स्तुति में सबसे बड़ा विशेषण है।

नमो चक्खुदयाणं।

स्तुतिकर्ता तीर्थंकरों के प्रति पूर्ण कृतज्ञ है। क्योंकि उसे जीवन-मार्ग पर चलने के लिए चक्षुरूप में एक विशाल प्रकाश मिला है। गुरु को भी जो महत्त्व शिष्य की तरफ से मिलता है, वह इसी आधार पर, कि गुरु अपने शिष्य की आंखें खोलता है, उसे जीवन-यात्रा के लिए एक दिव्य ज्योति प्रदान करता है। शिष्य इसे महान् उपकार मानता हुआ गुरु का कितना ऋणी बन जाता है, कि अपना समस्त जीवन गुरु की सुश्रुषा में लगा देता है।

यह नेत्र, यह प्रकाश क्या है? यह है मनुष्य का विवेक। जिसका यह विवेक-चक्षु खुला हुआ है और जो अपनी जीवन-यात्रा का मार्ग

इसी के आलोक में माप रहा है, उसे शिव के नाम से हमने पुकारा है। मानव के इस विवेक-चक्षु को हम शिव-नेत्र भी कहते है। यह शिव-नेत्र मनुष्य की परिभाषा को ही बदल देता है। उसके सारे जीवन में एक विराट् परिवर्तन कर देता है। मनुष्य के जीवन में हिंसा की जगह अहिंसा, असत्य की जगह सत्य और भोग की जगह त्याग आ जाता है। मानव जीवन का यह एक बहुत बड़ा परिवर्तन है। वह हिंसा का बदला हिंसा में नहीं चुकाता, अहिंसा से ही उसका प्रतिकार करता है। इस तरह हिंसा आदि अधर्म पाप को छोड़ना, कितनी बड़ी उत्क्रान्ति है? शिवनेत्र-युक्त मानव अहिंसा आदि धर्मों का कभी त्याग नहीं करता। इस तरह धर्म और मानवता का परस्पर सहचार है। एक अकाट्य नियम है—जहां धर्म है, वहां मानव जीवन है; जहां मानव जीवन है, वहां धर्म है। हम इन दोनों को अलग-अलग नहीं कर सकते। पशु-जीवन इस सहचार धर्म के बिल्कुल विपरीत होता है। अर्थात् धर्म-विहीन जीवन पशुता है। और पशुता क्या है? धर्म-विहीन मनुष्य, जीवन की जीवन-चर्या पर मानव-जीवन की परिभाषा रही हुई होती है। यदि मनुष्य का जीवन धर्म के अहिंसा आदि सिद्धांतों पर चल रहा है तो वह मानव-जीवन है, अन्यथा पशु-जीवन है।

अतः मनुष्य को अपनी मानवता सुरक्षित रखने के लिए प्रत्येक क्षण धर्म की आराधना करना जरूरी है। यदि क्षण भर के लिए मनुष्य धर्म का परित्याग कर देता है, तो मनुष्य अपने मनुष्यत्व से गिर जाता है और पशु-तुल्य आचरण करने में संलग्न हो जाता है। जिस प्रमाद को भयंकर मानते हुए महापुरुषों ने उससे बचने का संकेत किया है, वह एक बड़ी भूल है। वह यही है कि धर्म पथ को छोड़कर मनुष्य अपने मनुष्यत्व को खो बैठता है। प्रमाद से मनुष्य की मृत्यु हो जाती है। अर्थात् उसका मनुष्यत्व मर जाता है। यूनान के दार्शनिक प्लेटो (Plato) ने मनुष्य की मृत्यु के सम्बन्ध में यही दृष्टिकोण रखते हुए कहा है—

Man is mortal.

मनुष्य मर्त्य है, अर्थात् मनुष्य मरता है। भारत के दार्शनिकों ने भी मनुष्य के जीवन और मृत्यु का निर्णय करते हुए यही सत्य स्वीकृत किया है, कि मनुष्य के भीतर से जब धर्म मर जाता है तो साथ ही मनुष्य भी मर जाता है। यदि अन्तर में धर्म जीवित है, तो मनुष्य भी जीवित है।

धर्म एव हतो हन्ति, धर्मो रक्षति रक्षितः।

अतः जीवन-यात्रा में मनुष्य को प्रत्येक क्षण धर्म को साथ रखना है, क्योंकि धर्म की साधना के बिना वह कभी जी नहीं सकता। यदि मनुष्य के जीवन में प्रत्येक क्षण धर्म की साधना हो रही है, तो खाने-पीने, चलने आदि पशु-तुल्य क्रियाएं भी उसके कल्याण का साधन बन जाती है, उसकी वे सारी क्रियाएं धर्म का ही रूप ले लेती हैं और उसके जीवन का निर्माण करती हैं। यदि पारस पत्थर पास में हो, तो लोहा, लोहा नही रह जाता, वह स्वर्ण बन जाता है। धर्म भी एक रसायन है, जो पशुतुल्य क्रियाओ को मानवीय क्रियाओं में बदल देता है। धर्म-रसायन का ज्ञान, विवेक के प्रकाश में होता है। इसलिए विवेक का जीवन-यात्रा में उपयोग करते रहना चाहिए। मनुष्य के जीवन में जो विवेक है, वह जीवन की बुराई और भलाई को अलग-अलग कर देता है और उसके लिए एक सन्मार्ग का निर्माण कर देता है।

जितने आगम या शास्त्र है, मनुष्य ही उनका स्रष्टा है। शास्त्र उसके जीवन का एक विधान है। ये सब मनुष्य के अन्तर्विवेक की सृष्टि हैं। मनुष्य का पृथ्वी पर रखा गया विवेक से एक कदम भी सारी दुनिया को एक महान् सन्देश दे जाता है। आगम शास्त्र ऐसे ही विवेकपूर्ण मानव की चर्यायें है, जो दुनिया के लिए चक्षु का काम करती है—

आगम-चक्खू साहू।

महावीर ने, बुद्ध ने, विश्व के अन्य महापुरुषों ने अपना कल्याण किया। उन्होंने किस शास्त्र या ग्रन्थ के आश्रित होकर अपनी मंजिलें

पार कीं ? यह उनका अपना अन्तर्विवेक था, जो उनका मार्ग प्रदर्शन करता रहा। यह विवेक ही मनुष्य का शास्त्र है। महावीर, बुद्ध का सारा व्यक्तित्व ही शास्त्र या ग्रन्थ बन गया था। अपने विवेक से बढ़कर मनुष्य का कोई शास्त्र नहीं हो सकता। शास्त्र में भूलें हो सकती हैं, विवाद खड़े हो सकते हैं, मानव-समाज विभाजित हो सकता है, जो पारस्परिक कलह निंदा, विद्वेष मे उलझकर जिंदगी के सुन्दर जहाज़ को संसार समुद्र में फिर से डुबो देता है। मानव जीवन की सुन्दर नौका जो दुस्तर समुद्र को पार करने के लिए चल रही थी, वह पारस्परिक कलह एवं निंदा आदि की चट्टानों से टकराकर पार होने की अपेक्षा संसार सागर के अतल तल मे जा बैठती है। इस विषय को इकबाल के शब्दों में कहूं—

> समझती ही न थी मख़लूक राजे ज़िन्दगानी को,
> कोई साहिल न मिलता था जहाज़े ज़िन्दगानी को।
> सफ़ीना डूबने वाला था नेकी का गुनाहों में,
> बजाय इल्मो हिकमत शैतनत थी दरसगाहों में ॥

अत. मनुष्य का अन्तर्विवेक स्व-अनुभव है। शास्त्र, पर अनुभव है। अपनी जीवन-यात्रा अपने अनुभव पर होती है, पर अनुभव पर नहीं। अपने हाथ में दीपक हो, तो हज़ारों-लाखों मील का अन्धकार भी मनुष्य की यात्रा में कोई बाधा नही डाल सकता। महावीर तथा बुद्ध ने मनुष्य को अपना अनुभव, अपना विवेक जागृत करने के महत्व का निर्देश करके अपने विराट् जीवन का परिचय सारी मानव जाति को दिया। उन्होंने कभी यह नही कहा—"हम सर्वज्ञ-सर्वदर्शी है। जो हम कहते हैं, वह परम सत्य है, तुम इसे मानो।" वह मनुष्य को अन्धा बनाकर छोड़ना नही चाहते थे, ताकि वह अन्धकार में भटकता रहे। वे उसे अन्धकार से निकालने के इच्छुक थे। इसीलिए वे कहते रहे. कि तुम्हें अपनी यात्रा अपने ही आलोक में करनी है, तभी तुम्हें जीवन का किनारा मिलेगा।

पण्णा समिक्खए धम्मं।

—तू अपने जीवन-पथ के लिए अपना प्रकाश ले।

समुद्र में चलने वाले जहाजों में कुतुबनुमा (Compass) लगा दिया जाता है। वह दिशा-निर्देश यन्त्र होता है। इस यन्त्र के बिना किसी जहाज को समुद्र में नहीं छोड़ा जाता क्योंकि समुद्र के अथाह-अगाध जल में उसके दिग्मूढ़ होकर यात्रा-पथ से भटक जाने की संभावना रहती है। कुतुबनुमा जहाज को समुद्र के एक किनारे से दूसरे किनारे पर पहुचान के लिए काम में लिया जाता है। समुद्र के अपार जल में चट्टान भी होती है, तूफान भी आते है, विशालकाय भयंकर जलीय जन्तु भी होते है, जो टक्कर मारकर जहाज के टुकड़े-टुकड़े कर देते है। अर्थात् समुद्र का सारा यात्रा-पथ आतंक से परिपूर्ण होता है। यात्रा की इन विपत्तियों से बचाकर जहाज को दूसरे किनारे पर ले जाने की सारी जिम्मेदारी दिशायन्त्र पर होती है। वह यात्री को सूचित करता रहता है, कि जहाज सही दिशा मे बढ़ रहा है। और अपने लक्ष्य की ओर बढ़ रहा है।

मनुष्य की जिन्दगी का जहाज इस संसार समुद्र में चल रहा है। इसे भी दूसरे किनारे पर पहुचना है। इसमे भी जन्म-मृत्यु जरा एव व्याधियो के भयकर तूफानों की चट्टाने है। इन सबसे बचकर चलना है। एतदर्थ जीवन के जलपोत की दिशा को ठीक रखना है।

इसके लिये भी दिग्यन्त्र की जरूरत है। बिना दिग्यन्त्र के विपत्तियों से बचकर जीवन के जहाज को परले किनारे ले जाना असम्भव है। जीवन का विवेक ही इस कार्य भार को अपने हाथ में लेता है। वही जहाज की गति को नियन्त्रित रखता हुआ, मनुष्य को परले किनारे पर पहुचा देता है।

विवेक जीवन की ज्योति है। यह कितनी पवित्र है? मिल्टन कह रहा है –

Hail Holy Light !
May I express thee unblamed
Since God is light

—MILTON

□□

जीवन का विज्ञान : धर्म

○ ○

मनुष्य के लिए धर्म क्यो आवश्यक है। धर्म को तजकर क्या वह नही जी सकता ? विज्ञान से उसका क्या नेह-नाता हो सकता है। ये और ऐसे जीवन के ज्वलत प्रश्नो पर धैर्य और ठहरावपूर्वक पढकर समझने वाला चितन प्रस्तुत किया है गुरुवर्य ने। महवीर ने धर्म और व्यक्ति की जडता को किस तरह खडित किया। यही सब कुछ पाना है पाठक को। चितन पद्धति का प्रस्तुतीकरण किस कौशल से उभरा है, देखें।

—सं०

○ ○

मनुष्य धर्म को क्या कभी समझ पाया है ? यह एक प्रश्न है, उन के लोगों लिये जो कोटुम्बिक, पारिवारिक, साम्प्रदायिक अन्ध विश्वासो एव परम्पराओं के वृत्त मे आवद्ध है। इनकी धार्मिक चर्चा केवल बाह्य चिन्हो तक ही सीमित रह गई है। इन्होने बौद्धिक चिन्तन की उपयोगिता को कभी अनुभव नही किया। विविध धर्म-चिन्हो के मार्ग पर ही वे जीवन भर चलते रहे। इसीलिये इन्हे अपने मनुष्यत्व की उपलब्धि के साथ इतर सभाव्य उपलब्धियाँ प्राप्त नही हुई। जैसे पशु अपने पशुत्व के साथ इस संसार को छोड कर चला जाता है, वैसे ही मनुष्य भी पशुवत् जीवन व्यतीत कर चला गया। दोनो में मृत्यु तक जीवन की प्रक्रियाओ मे कोई अन्तर नही पाया गया। इसका हेतु यह रहा कि उसे जीवन की मूल्यवान् उपलब्धियो का बोध प्राप्त नही हुआ। परम्परा से प्राप्त धार्मिक चिन्ह उसे बोध देने वाले, गुरु अथवा धर्मग्रन्थ का काम नही कर सके, न ही उसमें स्वाभाविक स्वयं-बोधि के प्रकाश का प्रादुर्भाव हो सका।

धर्म जीवन का विज्ञान है। मनुष्य जीवन में जो उदात्त उपलब्धियाँ हैं उनकी खोज करने का प्रयत्न है। जब मनुष्य की चेतना धर्म से प्रभावित हो जाती है तब उसमें जीवन तत्वों का विश्लेषण प्रारम्भ हो जाता है और जीवन में स्वच्छता आने लगती है। जीवन को स्वच्छ करने के प्रयोग में सबसे पहले मनुष्य चेतना पर आच्छादित पशुत्व का आवरण दूर हटता है। धर्म की इस प्रक्रिया में अनन्त काल से सुषुप्त मनुष्य चेतना उन्निद्रित होती है। इस उपलब्धि में चिन्तन और आचरण विकसित हो जाते हैं। मनुष्य चेतना का यह संशोधन अथवा शुद्धि है। पशु और मनुष्य दोनों की चेतना का यही अन्तर है। मनुष्य में पशु चेतना का अन्त होते ही उसके चिन्तन और आचरण स्वार्थ-मालिन्य से मुक्त हो कर पशु से अधिकतम उदात्त होते हुये पारमार्थिक हो जाते है। यह सब धर्म की मुख्य उपलब्धि है। दर्शन जगत् में ऐसी ही मानवता को स्वीकृत किया गया है।

मिथ्या आस्थाओं के मार्ग पर चलने वाले यात्रियो को बाह्य धर्म-चिन्हो ने भेड़ की खाल तो पहना दी लेकिन उनके भीतर बैठे खौफ़नाक भेड़िये को वे निकाल नही सके। इन अर्ध मानवो के द्वारा जो नैतिक अपराध हुये, रौद्र हिंसायें हुई, अकल्पनीय भ्रष्टाचार हुये, पशु संसार भी उन्हें आश्चर्यचकित आँखों से देख रहा है, जो अन्दर से भी और बाहर से भी भेड़िये बन गये, जो अन्दर से बदल गये वे आकाश से पाताल तक की सृष्टि के मनुष्य ही नही देवता बन गये। उन पर आकाश से फूल बरस पड़े।

पृथ्वी के ये देवता स्वार्थ-मार्ग से हट गये। स्वार्थ वृत्त को तोड़ कर पर हित साधना में निरत हो गये। इनका अपना जीवन अपने लिये नही रहा। उनके प्राण विश्व के प्राण हो गये। दूसरों को जिन्दा करने में ही उन्हें आनन्द की अनुभूति होने लगी। महावीर को भयंकर उपसर्गों में यही आनन्द मिला, ईसा-मसीह को सूली पर यही आनन्द मिला। यही उनकी अहिंसा थी। यही उनका सत्य था। उनकी अहिंसा और सत्य उन्हें उस बिन्दु पर ले गये जहां आनन्द का सागर अपरिमेय था, जहां उनकी इयत्ता का अन्त हो गया था।

समाजविदों ने समाज को स्वच्छ नैतिक मनुष्यों का समुदाय माना है। उन्होंने ऐसे समुदाय को तीर्थवत् पूज्य आदरणीय स्वीकृत किया है। राजनीतिक हीगल तो इसे और भी सम्मान से पुरस्कृत कर रहा है—"राज्य संस्था पृथ्वी पर परमात्मा का अवतरण है। जनता को चाहिये इसकी पूजा करे इसे सम्मान दे।"

मनुष्य समूह जब कुटुम्ब, समाज में परिवर्तित हुआ, मनुष्य जीवन की यह एक क्रान्ति थी। इन्हें पवित्र रखने का विचार मनुष्य में उत्पन्न हुआ। तब प्रत्येक समूह में मर्यादायें निर्धारित की गई। नियम बनाये गये। नियम, मर्यादाओं से ये समूह कुटुम्ब और समाज ही न रहे। ये मनुष्य के लिये धर्म-स्थान बन गये। कुटुम्ब आश्रम व समाज देवालय बन गया।

महावीर समाजवादी थे। इसीलिये वे तीर्थंकर थे। जब उनसे पूछा गया कि भन्ते! आप महान है या समाज? महावीर बोले—समाज। महावीर पहले समाज के देवता बने। निर्वाण-पश्चात् पत्थरो के बने वन्दना-गृहो में उन्हें स्थापित किया गया। महावीर समाज को कितना पवित्र मानते थे। वे स्वय कमल थे। उस कमल ने कभी भी कीचड़ से सम्बन्ध विच्छेद नहीं किया। शूद्र पतित धूल को उन्होंने बुरा न समझा। सिंहासन पर बैठकर महावीर ने समानता, न्याय, अहिंसा का तिरस्कार नही किया। समाजवादी महावीर ने भिक्षु-जीवन में कुछ नही खाया। क्योंकि झोपड़ियों की भूख मिटे तो महावीर की भूख मिटे। उनकी प्रत्येक अनशन आदि धर्म-क्रिया में समाज के लिये न्याय था, उसके लिये करुणा की आर्द्रता थी। अपराधी के प्रति भी वह करुणा-समुद्र करुणार्द्र हो जाता। अपराधी की भी सहानुभूति में उसके नेत्र आँसू छोडने लग जाते। उसके करुणामय आँसू विश्व के लिये अहिंसा का गम्भीर दर्शन बन जाते। इस निर्विकल्प अहिंसा ने महावीर को समाज का तीर्थंकर व संसार का देवता बना दिया।

तीर्थङ्कर महावीर के पास जो भी आया उसे ही समाज की पवित्रता का बोध दिया। अगार धर्म नीति, समाज धर्म-नीति से उसे स्वच्छ कर, तीर्थ बना दिया। उसे संकेतित कर दिया गया, जिस

परिवार या समाज में तुम रहते हो वे तुम्हारी धर्म-संस्थायें है। उन्हें किसी दुष्कृत से अपवित्र करने का पाप अपने ऊपर मत लेना। समाज मे होने वाले नैतिक अपराधो से संघर्ष करते रहना।

व्यक्ति की स्वच्छ मानवता धार्मिक प्रयत्न है। स्वच्छ मानवता से समाज प्रभावित होता है। भारत में प्रत्येक व्यक्ति इस प्रयत्न में अल्पमत मे रहा है। गुरुकुलो के रूप में उच्च विद्याकेन्द्र इसी अर्थ-सिद्धि हेतु स्थापित हुए थे। इस प्रयत्न में अल्पमत रहने का सन्देश गुरुकुलों के आचार्यों से स्नातकों को मिला करता—"तुम गृहस्थ जीवन में प्रवेश कर रहे हो, तुम्हारा घर साधारण समाश्रय नहीं है। वह आश्रम है। तुम्हारा समाज साधारण मनुष्यो का समुदाय नही है। बडे-बडे ख्याति प्राप्त वेदविद् क्षत्रिय तुम्हे वहाँ मिलेगे। तुम्हारे लिये वे जो नीति निर्धारण करे, उस से तुम्हारा मार्ग प्रशस्त होगा, उनके आदेशो की उपेक्षा मत करना।"

समाज एक पवित्र सयोग है। वह सयोग जाति आदि से निरपेक्ष बन्धुता मे भावित है। उसमे विशुद्ध बन्धुत्व का आदान प्रदान है। बन्धुत्व में सुख और दुख दोनो समान हो जाते है। दान-दक्षिणा आदि स्वर्ग के लिये न होकर बन्धु के दु.ख दारिद्र्य के मिटाने के लिये हो जाती है। व्यक्ति स्वार्थी नही रहता, पारमार्थिक हो जाता है। स्वार्थ अनैतिकता का मूल है। इससे व्यक्ति अनैतिक होकर समाज विरोधी हो जाता है। वह डाकू भी बन सकता है। सत्य का अपलाप कर सकता है। हिंसक भी हो सकता है।

धर्म-स्थानो की अपेक्षा यदि हम घर और समाज को आश्रम अथवा धर्म-स्थान मान ले तो किसी के प्रति हिंसा अन्याय, भ्रष्टाचार जैसी अनैतिकता समाज विरुद्ध प्रवृतियाँ सभव नही हो सकती। असंख्य धर्म-स्थानो का निर्माण हुआ। उन्हे पवित्र सस्था मानने वालो को वे सशक्त नैतिकता नही दे सके। उनकी दुर्वृतियो का अन्त सभव नही हुआ। अत: समाज और परिवार को धर्म-सस्था की दृष्टि मिल जाये तो व्यक्ति के पवित्र आचरण की उपयोगिता सार्थक हो सकती है। मनुष्य को अनैतिकता-विमुक्त सत्ययुगीन समाज उपलब्ध हो सकता है। मनुष्य अपनी प्रगति के द्वार खोल सकता है।

साधना के विकास-पथ पर

○ ○

मनुष्य ही विश्व का एक ऐसा प्राणी है, जहाँ विकास और विस्तार की अनन्त सम्भावनाएं विद्यमान हैं। इसलिए प्रगति और साधना के सत्य को उसके सामने प्रकट करना संगत लगता है।

मनुष्य मननशील है। यही कारण है कि आध्यात्म-साधकों ने उसके सामने अनुभूत साधना-पद्धतियों का रहस्योद्‌घाटन किया है।

'साधना के विकास पथ पर' आप देखें कि किस तरह का रहस्योद्‌घाटन हुआ है।

—सं०

○ ○

प्रज्ञा-पुरुषोत्तम मुनि रामकृष्ण

जीवन-जगत् में एक ऐसा जीवन भी है, जिसमें अन्य प्राणियों की अपेक्षा असीम विकास की क्षमतायें हैं। इसका कारण, उस जीवन की बौद्धिक ऊर्जा है, जिससे वह विकास की अन्तिम सीमा को पार कर लेता है। इस ऊर्जा के दुरुपयोग करने का अभिनिवेश उत्पन्न हो जाये, तो जीवन अधोगामी हो जाता है। यदि ऊर्जा के साथ प्रशस्त संकल्प जोड़ दिये जायें, तो मनुष्य में अभ्युदय की ऐसी क्रांति आती है तब वह स्वर्गों की सीमाओं का भी अतिक्रमण कर जाता है। विकास की वह अन्तिम स्थिति अहिंसा है। मनुष्य का एक

स्वरूप अनन्त अमंगल है। दूसरा अनन्त मंगल है। ये दो चित्र मनुष्य की अत्यन्त विकसित अवस्था के, हम इस विश्व में देख सकते—

It is no tyranny to have a giant strength, but it is tyrannous to use it like a giant.

जो ऊर्जा मनुष्य में होती है, वह उसे देव भी बना सकती है और दानव भी।

सामाजिक जीवन का विच्छेद कर, अपने उर्ध्वगामी स्वरूप के लिये प्रयत्नशील एक मनुष्य इस विश्व में दिखाई देता है। भारत की भाषा में उसे साधु कहा जाता है। साधुत्व अन्तिम विकसित मंगल का अविचलित अपरिवर्तनीय संकल्प है। मंगल की अन्तिम स्थिति तक पहुचने के लिये यात्रा का प्रारम्भ है। इस मार्ग से मनुष्य देवों का अतिक्रमण करता है।

सत्येन पन्था विततो
देवयान ऊर्ध्वगमनम्।

सत्य की ऊर्जा ने मनुष्य के लिये ऊर्ध्वगमन का मार्ग खोल दिया है। संसार के कटु अनुभवों से आक्लान्त मनुष्य, उन से मुक्त होने का प्रयास करता है। यह स्वाभाविक है। पाओ में लगा कांटा, यात्रा में विघ्न उत्पन्न करता है। कुशल यात्री उसे निकाल फेंकता है। निदाघ के सन्ताप से जलते हुए को क्षीर-समुद्र दीख पड़े तो वह त्वरा से शीतल तट पर पहुंचने के लिये, जो भार उसके पास होता है, उसे भी उपेक्षित समझ कर फेंक देता है। अपने भीतरशांति का अतल समुद्र जिस साधु को दीख पड़ा, वह संसार की ज्वालाओं में नही जलता ? अपनी ज्वालाओं को बुझाने के लिये, वह भार-मुक्त यात्री बनकर त्वरा से शान्ति के अगाध सागर-तट पर पहुंच जाने की यात्रा का उपक्रम प्रारम्भ कर देता है। इस मंगल यात्रा में अनेक आकस्मिक अवरोध खड़े हो जाते हैं। ज्ञाति-जनों का आग्रह, स्त्री के अश्रुपात, पारिवारिक स्नेह-बंधन। घर के भीतर इन जलती

ज्वालाओं से निकलने के लिये, जो गृह वातावरण का परित्याग किया जाता है, उसे साधुत्व की भाषा में अभिनिष्क्रमण कहा जाता है। यह सार्वजनिकता अथवा विश्व-मानवता की स्थिति है, जहाँ साधु साधना के अद्वैत-बिन्दु पर आकर खड़ा हो जाता है और यहां स्थित होकर अद्वैत भावना की घोषणा से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को प्रतिध्वनित करता है। इस अनन्त ब्रह्माण्डवृत्त में अब मेरा कोई विरोधी नहीं है। यह अद्वैत घोषणा, समस्त सृष्टि और तदन्तर्गत जीवजगत को प्रभावित करती है। यह घोषणा, साधु के अद्वैत-वादी हो जाने का प्रतीक है और प्रामाणित करती है, रागद्वेषात्मक द्वैत रेखाओं के परे जो अनन्त विस्तृत जीवन है, उसकी सिद्धि के लिए साधु चल पड़ा है—

साध्नोति परं कार्यमिति साधुः।

साधु कौन ? जो अनन्त की साधना के लिए चल पड़ा।

यहां 'पर' अथवा 'अनन्त' देहातीत है। इन्द्रियातीत है। जो जीवनसत्ता कालातीत और विभु है, वह पर है। साधु कालातीत होने के लिए चलता है। विभु होने की साधना करता है। यह विभु परात्पर है। भारत के अनुभवी ऋषियों के परात्पर सत्ता को आत्मा से संबोधित किया। साधु इसी को अपना लक्ष्य बिन्दु निर्धारित कर अपनी यात्रा प्रारम्भ करता।

संसार अनन्त घटनाओं का आवर्त है। ये घटनाये उत्पाद और व्यय हैं। घटनाओ की ये संज्ञाये दर्शन-सम्मन है। प्रत्येक व्यक्ति इन से प्रभावित है। साधु को भी ये घटनाये प्रभाविन करती हैं। वह इनसे अप्रभावित रहने को साधना करता है। जो साधक इन घटनाओं से प्रभावित हो जाता है, वह ससार में चला जाता है। घटनाये प्रतिकूल ही नही होतीं। साधु को शील-शौच मे चलित करने वाली अनुकूल घटनायें भी होती हैं। साधु दोनों के प्रतिकार का चिंतन करता है और उनसे अप्रभावित रहने के लिए अपनी तितिक्षा और

उपेक्षा की ऊर्जा का प्रयोग करता है। इससे वह घटना के प्रत्येक प्रभाव को शरीर तक ही सीमित रखता है। मन और आत्मा तक उसका प्रभाव नहीं होने देता।

वह आत्मा के केंद्र-बिंदु से इतना संश्लिष्ट हो जाता है, कि उसकी उपलब्धियो से दूर नही जाना चाहता। इसीलिए उसे जो यातनायें देने आता, या उसका शत्रु बन कर आता है, तो सबका चिंतन और तितिक्षा से आत्म-सम्मत प्रतिकार करता है।

साधना में तितिक्षा सुन्दर अपेक्षित प्रयोग है, जिसके बिना साधना असम्भव हो जाती है। जिस साधु को तितिक्षा का प्रयोग आ जाता है, अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते हुए उस के चरणो को कोई रोक नही सकता। वह अपने स्वरूप मे स्थित होने की सफलता प्राप्त कर लेता है। परिषह और उपसर्ग, जो प्रतिकूल घटनाये है साधु की सहिष्णुता पर ही प्रहार करते है। तितिक्षा के अतिरिक्त अन्य आलम्बनो से उनकी प्रतिक्रिया जब साधु करने लगता है, तब वह अपनी स्वरूप प्रतिष्ठा से भटक कर दूर चला जाता है। जो साधु तितिक्षु हो गया, उसकी आँखों में भी साधना होती है। उसकी जिह्वा पर भी साधुता होती है। हाथ-पाओं मे भी साधुता होती है। उसका मन भी साधुता के प्रति श्रद्धाशील होता है। जीवन का सारा पौरुष ही श्रद्धाशील होता है। अग्नि को प्रज्वलित करने के लिए फूंक मारी जाती है। उपसर्गों से सहिष्णु मुनि की तितिक्षुता चेतना और प्रगाढ हो जाती है। ऐसा मुनित्व लक्ष्यविहीन नही हो सकता।

साधु स्वतंत्र व्यक्तित्व है। प्रत्येक घटना को वह स्व-हेतुक मान कर चलता है। घटनाओं के कारण अपने भीतर ढूंढता है। अपने से बाहर नही ढूंढता। उसके पास यही हेतु, विज्ञान की विविक्त दृष्टि होती है। जब कोई अनुकूल या प्रतिकूल घटना घटती है तो वह स्वपर्यालोचन में उतर जाता है। वह अपने से बाहर संसार की उपेक्षा कर देता है। उपेक्षा की दृष्टि अथवा दर्शन भी उसके पास होता है। अतः वह स्वयं को ही देखता रहा करता है। इसके

अतिरिक्त वह किसी को नहीं देखा करता। वह स्व-दर्शन के मार्ग पर चलता हुआ अनन्त प्रकाश के बिन्दु तक पहुंच जाता है। भगवान् महावीर ने विश्व में साधु-समाज के सामने अपने चिंतन में उपेक्षा-दर्शन को भी महत्व दिया और कहा- साधना-मार्ग में पृथ्वीवत् उपेक्षाशील हो जाना जरूरी है।

पुढ़वी-समे मुणी हविज्जा।

—मुनि पृथ्वी तुल्य हो जाये।

महावीर के पास तितिक्षा के साथ उपेक्षादर्शन भी था। उन्होंने उपसर्गों के बीच आतंक-वादियो को कभी आँखे खोलकर भी नही देखा। उनकी दिव्य दृष्टि बाहर से भीतर की ओर चली आई थी। ग्रीष्म आदि ऋतु-जन्य क्लेशो का भी प्रतिकार उन्होंने वस्त्र, अग्नि-ताप आदि से नही किया। पशु-पक्षियों के भय के प्रतिकार-हेतु कोई लाठी या दण्ड साथ नही रखा। दिव्य-लोक और मर्त्य-लोक की यातनाओं के बीच वे अचल शैल-शिखर की तरह खड़े रहे। उन यातनाओं का गम्भीर उपेक्षादर्शन से विश्लेषण कर, उनका कोई प्रतिकार उन्हें स्वीकार्य नही था। महावीर तो स्वतन्त्र व्यक्तित्व के साधु थे। उस महापुरुष की साधना स्वतंत्र व्यक्तित्व की साधना थी। इसीलिए तापस कुलपति के आश्रमस्थ तृण-कुटीर की मुग्ध छाया के बंधन से भी मुक्त होकर, महावीर अरण्य के निर्जन स्वतंत्र छाया में साधनारत हो गये। वे बाहर की प्रत्येक प्रतिक्रिया से स्वतंत्र होते चले गए। स्वतंत्र की परम अनुभूति में, महावीर की कैवल्य ज्योति का आलोकसूर्य उदित हो गया। महावीर सर्वज्ञ-सर्वदर्शी हो गये।

रोम और उसकी राजधानी फिलिस्तीन के धर्म-नेता धर्मान्ध हो गये थे। धार्मिक आचार-विचार की बौद्धिक क्षमता खो बैठे थे। तब ईसा नाम से एक धार्मिक क्रान्ति रोम में आई। ईसा ने पुराने धार्मिक मूल्यों पर क्रान्ति के अंगार फैंकने प्रारम्भ किये। क्रांति विस्तार के लिए, ईसा ने साधु-वर्ग खड़ा किया जो अपने आपको ईसा के वाक्यों पर अपनी पूर्ण निष्ठा से अर्पित कर चुका था। ईसा के साधु-संघ

प्रज्ञा-पुरुषोत्तम मुनि रामकृष्ण

का आचार-विचार भारतीय साधु परम्परा से मिलता-जुलता था। ईसा ने उन्हें कहा-"आवश्यकता से अधिक वस्त्र और अन्य जीवन की आवश्यक वस्तुयें अपने पास मत रखना, जिसके लिए तुम्हें रक्षा हेतु चिन्तित होना पड़े। जो रूखा-सूखा मिले, खा लेना। कल की चिंताएं मत करना। नंगे पावों चलना। किसी यान का प्रयोग मत करना। मेरी क्रांति को फिलिस्तीन के लोगों तक पहुंचाना है। वे लोग मदांध है। तुम्हें अपना विद्रोही समझेंगे। तुम्हारी क्षमता की परीक्षा की जायेगी। फिलिस्तीन के धर्म गुरु सिनेगागों (Synagogue) (धर्मशाला) में ले जा कर तुम्हें कोड़े मारेंगे। तुम्हें बदनाम किया जाएगा। धर्म-विहीन काफिर होने का आदेश उनसे तुम्हें मिलेगा, और इसी अपराध के लिए तुम्हें शूली पर भी लटकाया जा सकता है। इसलिए किसी भी दुर्घटना के लिए, उन्हें अपराधी मत कहना। किसी से न्याय मत मांगना। लोगों से क्षमायाचना मत करना। हमने तुम्हारा क्या अपराध किया—ऐसा प्रतिवाद भी मत करना। वही क्रांति का अग्रदूत होगा, जो आत्म विश्वास की परिधि का अतिक्रमण नहीं करेगा। वही खुदा का पुत्र होगा, जो शत्रु को भी अपनी आत्मीयता से बन्धु बना लेगा। प्रत्येक प्रतिरोधों में उपेक्षा की रेखायें खीच कर खड़े हो जाना अन्धकार में भटकते हुए रोम के लोगों के लिए तुम क्रान्ति की ज्वाला लेकर जा रहे हो। उसे बुझने मत देना।"

साधु क्रान्ति की ज्वाला लेकर चलता है। वह न स्वयं अन्धकार में भटकना चाहता है और न जन-समूह को उसमें भटकने देता है। इसके लिए मुनि पृथ्वी के आदर्शों और धर्मो मे अपनी मानसिक स्थिति प्रत्येक घटना के लिए जन-साधारण की अपेक्षा, उदात्त और उदार बना ले। पृथ्वी की विशेषताओं का अध्ययन करते हुए उसके धर्मों की अपनी यात्रा का मार्ग बना लें।

अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में पृथ्वी के आदर्शों का बड़ा मनोहारी चित्रण ऋषि कर रहा है—

मल्वं बिभ्रती गुरुभृद्
भद्रपापस्य निधनं तितिक्षुः।

—छोटे-बड़े, भारी, पुण्यात्मा, पापात्मा, इन सबको सहनशील पृथ्वी धारण कर रही है।

यहां पृथ्वी के सबसे बड़े धर्म, तितिक्षा का उल्लेख किया गया है। पृथ्वी भी घटनाओं के प्रति उपेक्षाशील है। अपने धर्म की तितिक्षा के प्रति श्रद्धाशील है। ऋषि लोग पृथ्वी से इन्हीं धर्मों की याचना करते रहा करते—

बाहुवारं च ऋषि : पृथ्वीं वरान् प्रार्थयते।

समाज भी मुनि से क्षमता, सहिष्णुता, उपेक्षा आदि जीवन क आदर्शों की अपेक्षा रखता है। मुनि इन आदर्शों के लिए दीपक है। दीपक का प्रकाश दूसरे का अन्धकार मिटाने का भी काम किया करता है।

□□

उपासना : अहिंसा-ज्योति का मार्ग

○ ○

'मन' तू हर दिन एक दीया जला और फिर अपने आत्म-प्रासाद में प्रवेश कर ! तू पाएगा कि हर दिन दीया जोड़ने से प्रसाद पुनः पुनः प्रकाश किरणों के स्पर्श से किस प्रकार अपनी मूल गरिमा मे महिमा मंडित हो जाता है। 'उपासना' प्रतिदिन निरंजना प्रज्वलित करने की पद्धति जताने का नाम है। अभिनंदित पुरुष की प्रक्रिया को समझने के लिए 'उपासना अहिंसा ज्योति का मार्ग' हमें पढ़ना है।

—सं०

○ ○

भारतीय संस्कृति ने उपासना को एक पवित्र दृष्टि प्रदान की, जिस संसार को तुम देख रहे हो, वह अगाध सरिता है, जो सतत गमनशील है, कभी विराम नहीं लेती है। तुम भी इस महाप्रवाह के साथ बहते जा रहे हो इसमें बहते हुए तुम्हें क्या उपलब्धियां मिली ? प्रश्न जीवन की ओर संकेत कर रहा है। वह ज्ञात करना चाहता है, जीवन में चेतना-शक्ति है या नहीं ? उपलब्धि से जीवन चेतना समृद्ध होती है। उपलब्धियों के बिना जीवन की मृत्यु हो जाती है।

अगाध सरिता मे प्रवाहित होते हुए जीवन का कोई अर्थ है या नहीं ? इस जीवन का क्या रूप है ? सब एक रहस्य है, अज्ञात है। संसार क्या है ? प्रकृति में क्षण-प्रतिक्षण होने वाली घटनाओं की अन्तर-रहित श्रृंखला। बहते हुए जीवन का मनुष्य के रूप में जो प्रादुर्भाव हुआ, एक आश्चर्यजनक घटना है। इसके लिए चिन्तन

प्रारम्भ कर दें, तो एक धारा उत्पन्न हो जायेगी, इस धारा का विराम है भी या नही, कुछ नही कहा जा सकता ? मनुष्य रूप मे जिस जीवन का प्रादुर्भाव हुआ, उसके लिए नैतिक रूप से चिन्तन करना मनुष्य का धर्म हो जाता है।

चिन्तन मनुष्य की प्रकृति है और इसका यह विकसित प्रयत्न है। यही प्रकृति मनुष्य और पशु की भेद रेखा है। दो पावों पर खड़े हो जाने का सयम, मनुष्य और पशु की भेद-रेखा का वास्तविक स्वरूप है। चिन्तन से मनुष्य ने सारी सृष्टि को पीछे छोडा। ऐसा विकसित प्रयत्न पशु-पक्षी मे कभी सम्भव नही हुआ। वह अपने निवास हेतु केवल एक नीड ही आज तक बनाता रहा। मनुष्य की तरह अपनी मेधा से सृष्टि में विशाल दर्शनीय अद्‌भुत आश्चर्य नही खड़े कर सका।

चिन्तन का प्रभाव कभी मनुष्य के ऊपर पडा होगा। उसने स्वय और सृष्टि का गम्भीर दृष्टि से आकलन करते हुए अपूर्व निर्णय लिया होगा। अनेक जीवन सक्रमण के परिणामस्वरूप मनुष्य जीवन का प्रादुर्भाव हुआ है। जो सृष्टि-प्रवाह में बहते जा रहे है, उन्हे कुछ पता नही, कहा जा रहे है। इनकी यात्रा इन्हे कहा ले जायेगी ? इस सक्रमण और यात्रापरक चिन्तन ने मनुष्य के ज्ञान-चक्षु को विकसित किया, जिससे उसके सामने जीवन का अर्थ स्पष्ट हो गया। जीवन की पूर्ण स्पष्ट प्रतीति के लिए, जो प्रयत्न प्रारम्भ हुआ, वह उपासना बन गया –

अहरह : सन्ध्यामुपासीत।

—प्रतिदिन सन्ध्या को उपासना होनी चाहिए।

उक्त प्रयत्न परम्परा का निर्देश, ब्रह्मचर्य आश्रम में प्रविष्ट स्नातक को गुरूकुल के आचार्य से मिला करता—सन्निकट बैठना, उपासना की अभिन्न वृत्ति है, किन्तु यह भारतीय सस्कृति का योगरूढ शब्द है, जो विशेषार्थ आत्मा के सन्निकट आने की प्रेरणा देता है। इस सस्कृति में उपासना का यही अर्थ निर्धारित हो गया।

प्रज्ञा-पुरुषोत्तम मुनि रामकृष्ण

आत्म-दर्शन में ही उपासना शब्द की अर्थवत्ता निश्चित हो गई। आत्मा की खोज के लिए किया गया प्रयत्न, उपासना की परिभाषा बन गया। उपासना जीवन का दार्शनिक प्रयोग बन गया। आत्म-दर्शन मनुष्य के जीवन का अन्तिम समाधान है। एक सुविचारित और अन्तिम निर्णय है, जो अब तक संसार को अगाध सरिता में बहते हुए जीवनयात्रा में मनुष्य को कभी सम्भव नहीं हुआ। इस समीक्षा का रूप था--"आत्मा को जानो! उसे देखो! उसको सुनो! उसके दर्शन करो।" ये आत्मविषयक उदात्त श्रुतियां उन ऋषि-मुनियों की हैं, जिन्हें आत्मा की स्पष्ट पूर्ण अनुभूति हो चुकी थी। ये आत्मवान् मुनि दार्शनिक भी थे और योगी भी। जीवन की अर्थवत्ता-हेतु इनके प्रयोग सफल हुए। इन्होंने जीवनयात्रा को परिसीमित कर संसार-परिक्रमा का अन्त कर दिया। भारत की जनता ने इन्हें बड़े सम्मान से देखा। इन्हें अन्तकृत की अभिधा से सम्मानित कर, अपने कल्याण-मार्ग का नेता स्वीकृत कर लिया।

इन अन्तकृत योगियों में वे भी थे, जो कुटीरों के दीन वातावरण में पले। वे भी थे, जो प्रासादों के विलासी वातावरण में पले। अपने दार्शनिक प्रयोगों मे ये जिस बिन्दु पर पहुंचे, वे उपलब्धियां अभूतपूर्व थीं, जो अनन्तकाल मे अदृश्य थी। अनन्त प्रकाशमान बिन्दु, यहां की संस्कृति में आत्मा के नाम मे जाना गया। इस देवता के दर्शन से योगी कृत-कृत्य हो गये।

मनुष्य जब तक आत्मा से अपरिचित रहा, अनन्त सम्पदा होने पर भी उसे समाधान नहीं मिला। अतृप्ति के दोष से मनुष्य अनन्त पीडा का अनुभव करता रहा। आत्मा अथवा स्व-सम्बोध से अपरिचित रहते हुए मनुष्य अतृप्ति जन्य अनन्त पीड़ा का अन्त नही कर पाया। संसार परिक्रमा का वह अन्त नही कर सका। जब उपासना स्व-सम्बोधि का रूप धारण करती चली गई, तो उसके आलोक में मनुष्य को स्पष्ट ज्ञात हो गया कि अपने मे बाहर उसके लिए कुछ भी ग्राह्य नहीं है। यहां की कोई सम्पदा उसकी उपलब्धि नहीं है। ज्ञान और अज्ञान का भेद भी उसके सामने स्पष्ट हो गया। ब्रह्माण्ड-गत उपलब्धियों

के लिए किया गया प्रयत्न सम्मुख से भागती हुई छाया को पकड़ने जैसा अज्ञान है। इसकी स्पष्ट अनुभूति उसे हो गई।

जो अत्यन्त समीप है, उपासना में उसी का प्रत्यक्ष किया जाता है। मनुष्य की आत्मा के अतिरिक्त अन्य कोई उसके समीपस्थ नही हो सकता। ईश्वर, ब्रह्म, देवता भी उपासना की परिधि में नही आते। अनन्त कालिक अपेक्षित समाधान, आत्म-दर्शन से ही सम्भव है।

चरित्र, अपने आप में आनन्द है, जीवन है। चरित्र के बिना कोई जी नही सकता, कोई आनन्द प्राप्त नही कर सकता। चरित्र जीवन और आनन्द का निषेध नही है, प्रत्युत इन दोनों की परिधि का विस्तार करता है। जिस प्रयत्न से मनुष्य के जीवन और आनन्द विस्तृत होते हो, वह चरित्र है। इसी महत्वपूर्ण हेतु से मनुष्य के लिए उपासना निर्धारित की गई थी। भारत में गृह्य प्रयत्नो के साथ उपासना भी मनुष्य की जीवन प्रक्रिया थी, जो उसके चरित्र को सार्थक करती थी। मनुष्य जो खाता है, पीता है, चलता है और बोलता है, जीवन-हेतु जितने प्रयत्न है, इन्हे चरित्र का रूप देना आवश्यक है। जब ये प्रयत्न दोष रहित हो जाते है मनुष्य का चरित्र बन जाते है। उपासना में इन्ही दोषो का सशोधन किया जाता है। मनुष्य के प्रयत्नो म हिसा, असत्य आदि के अनेक दोषो की सम्भावनाये होती है। उपासना से प्राप्त आत्मा के आलोक से इसी सशोधन की प्रेरणा मिलती है। उपासक इसी आलोक को अपने प्रत्येक आचरण के साथ रखता है। उसका प्रत्येक व्यवहार आलोक के प्रकाश में चलता है। अपनी किसी भी प्रकृति मे वह हिसा आदि के दोष उत्पन्न नही होने देता। प्रत्येक जीवन विधि मे आदर्श अहिसा प्रस्तुत करता है।

समाज में हिसा कभी मान्य नही हो सकी। असत्य मान्य नही हो सका। विलियम बैक ने कहा है—

A dog starv'd at his Master's gate
Predicts the ruin of a state
A horse misued up on the road,
Calls to heaven for human blood.

– WILLIAM BLACKE

—स्वामी के द्वार पर कुत्ता भूखा रहे, तो सारे राज्य का ध्वंस हो जाता है।

घोड़े से काम लेते हुए निर्दयता का प्रयोग मनुष्यों की हिंसा का हेतु बन जाता है।

अतः हिंसा को मिटाने के लिए अहिंसा का प्रचार हुआ। असत्य को निर्मूल करने के लिए सत्य की प्रतिष्ठा हुई। इसके लिए बड़े-बड़े अहिंसावादी तीर्थंकर आये। अवतारों ने जन्म लिया। इन्होंने शब्दों में ही नहीं, आचरण से अहिंसा का प्रचार किया। ये निर्धूम अहिंसा की ज्योति लेकर आये, जिन्होंने शत्रु को कभी शत्रु नही माना। उनकी दी गई यातनाओं के विरोध में कोई प्रतिक्रिया नही की। सूली पर लटका देने वालों के लिए भी यही बोलते चले गये- "इन्हें क्षमा करें। इनका कोई अपराध नही है।" समाज ने इन्हें मनुष्य ही नही, देवता माना।

समाज को ऐसे मनुष्य चाहिए, जिनका मनुष्यत्व अहिंसा से परिष्कृत हो, जो समाज से अमावस्या के अन्धकार को दूर कर दे। उपासना मनुष्य में अहिंसा की ज्योति जलाकर, उसे देवता बनाती है। देवत्व मनुष्य का दिव्य रूपान्तरण है। मनुष्य रूप में व्यक्ति का देव हो जाना उपासना की सार्थकता है अथवा मनुष्य का देव हो जाना, अहिंसा की उपयोगिता है।

मनुष्य को प्रकाश चाहिए, अन्धकार में मनुष्य जी नही सकता। हिंसा अन्धकार है। असत्य अन्धकार है। मनुष्य प्रकाश के लिए हमेशा पुकार करता रहा है—

तमसो मा ज्योतिर्गमय
असतो मा सद्गमय ।

—मुझे अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चलो। मुझे असत्य से सत्य की ओर ले चलो।

मानव-जाति की इन आकांक्षाओं को जो रास्ता दिखा सके, वे देव थे, अहिंसक थे, उपासक थे। इन्होंने हिंसा, पीड़ा और दुखों के अन्धकार में मानव जाति को अहिंसा के विविध विधान दिये।

उपासना हेतु धर्म स्थानों में जाने से पहले देख चलो, इस ब्रह्माण्ड में तुम्हारा कोई शत्रु तो नहीं है? तुम में बन्धुता आकाश की तरह विस्तृत होनी चाहिए। पड़ौसी के लिए पारिवारिक भावनायें उदित हो गई होंगी? किसी अज्ञात रोगी की उपचार चर्या के साथ उसे तुम्हारी श्रध्दा का रसास्वादन भी मिलना चाहिए। तुम्हारे बड़े से बड़े अपरिचित भी उपेक्षित जीवन जीना नहीं चाहते। उसकी परिचर्या तुम्हारा देवार्चन, तीर्थ-दर्शन बन गई होगी? सन्ध्याओं में देव-व्रत, देव-वन्दन अर्पित किया जाता होगा?

मातृ-देवो भव,
पितृ-देवो भव ।

—माता को देवता मानना। पिता को देवता मानना।

अहिंसा की कोई सीमायें नहीं होतीं। सत्य की भी कोई सीमायें नहीं होती। अपरिचित के लिए भी अहिंसा का उपयोग होना चाहिए। इसलिए अहिंसा की उपयोगिता का उत्तरोत्तर विस्तार करने के लिए अहिंसा के अवतारों से मानव जाति को आदेश मिला—

अतिथि-देवो भव ।

—अपरिचित को भी देवोचित सम्मान पुरस्कृत करना।

एक देव, जो तुम्हारा परिचित नहीं है, तुम्हारे द्वार पर खड़ा हुआ है। उसे अबन्धु कहकर, हम अपने को हिंसक न बनायें।

उसे भी अपना बन्धु मान कर अहिंसा की ज्योति का, विस्तार कर पायेंगे, तो हम भटक नही सकते । अबन्धुत्व से प्रभावित होकर हम अहिसा की ज्योति प्रज्ज्वलित नहीं कर सकते ।

अहिंसा आत्मा का आलोक है । उपासना इस अपूर्व उपलब्धि का साधन है । जो मनुष्य इस उपलब्धि को प्राप्त कर लेता है, वह संसार परिक्रमा का अन्त कर देता है ।

□□

आत्मदर्शन

○ ○

आत्मा है। आत्मा कब से है, क्यों है? है या नहीं? आदि इतने गूढ़ और अनुत्तरित प्रश्नों की घाटी के बीच ये और ऐसे अनेक प्रश्नों की शृंखलाओं के बाद भी एक सत्य सर्वत्र प्रकाशित हो रहा है—यह आत्मा के संबंध में जो कुछ पूछा जा रहा है वह कौन पूछ रहा है? यही तो आत्मा के अस्तित्व का सबसे बड़ा प्रमाण है। आत्म-दर्शन ही मनुष्य की सबसे बड़ी उपलब्धि है। अनेक प्रश्नों को उगाते और समाधान के दीवटों की आवली खड़े करते, चिंतनों से पूर्ण है ..यह 'आत्म-दर्शन'!

—सं०

○ ○

जीवन के बहुत से प्रश्न हैं, बहुत-सी समस्याएं हैं, जिनकी पूर्ति के लिए समस्त चराचर विश्व प्रयत्नशील है। जब जीवन के किसी प्रश्न या किसी समस्या को काम्य-प्रयत्न द्वारा हल कर लिया जाता है, तो उसी प्रश्न या समस्या में से दूसरे कितने ही प्रश्न और समस्याएं अपनी पूर्ति की आकांक्षाएं लेकर व्यक्ति के सामने उपस्थित हो जाती हैं। जब तक जीवन के प्रश्न का हल तलाश नहीं कर लिया जाता, तब तक व्यक्ति को सुख कहां? शान्ति कहां? जीवन के प्रश्नों के उत्तर में ही व्यक्ति के सुख, शान्ति आदि मौलिक उपलब्धियों का कोष अन्तर्हित है। आगम भी कहता है, प्रश्न करो तो जीवन का द्वार खुलेगा। प्रश्न व्यक्ति के जीवन का एक

सिद्धान्त है। मैं उसे जीवन का सर्वोच्च सिद्धान्त मानता हूं। जितने सिद्धान्त हैं, वे सब जीवन के प्रश्न के लिये है।

अनन्त तत्वों से निर्मित अनन्त धर्मात्मक अपरिसीम विस्तृत परिधि के केन्द्र मे एक बिन्दु स्थिर है, जिसके चारों ओर विशाल विश्व परिक्रमा लगा रहा है। वह केन्द्र-बिन्दु व्यक्ति का अहम् है, वह उतना ही व्यापक है, जितनी उसके चारों ओर की विशाल प्राकृतिक परिधि। उस अहम् में उतने ही प्रश्न, उतनी ही समस्याएं गर्भित है, जितने उसके चारों ओर के लोकालोक की परिधि में समाए हुए अनन्त-अनन्त तत्व। यदि हम एक-एक तत्व से यह प्रश्न उपस्थित करें—"तुम कौन हो ? किसलिए हो ? तो उस अहम् मे से प्रश्न एवं समस्याओं की अनन्त धारा प्रवाहित हो जायेगी, जिसका कभी विराम नही हो सकता, और जिससे अहम् को कोई समाधान नही मिल सकता। व्यक्ति के जीवन की सबसे बड़ी समस्या उसके अहम् को समाधान मिलने की है। उसे तृप्त होना जरूरी है, वह अपना तर्पण चाहता है। लेकिन सारे संसार का उपभोग कर लेने पर भी तर्पण नहीं मिलता।

Thy infinite gifts come to me only on these very small hands of mine. Ages pass, Still thou Pourest and still there is room to fill.

—गीतांजलि

- तेरे अनन्त वरदान मेरे इन छोटे-छोटे हाथों म आते हैं। तुझे उनको भरते-भरते युग-युगान्तर बीते, परन्तु वे खाली ही रहे।

अतः तर्पण जीवन की साधना है, जीवन की सिद्धि है। जिस साधना से यह सिद्धि सम्भव हो, उसका वही मार्ग है, वही उपाय है, वह उपाय ही, ऋषि-मुनियों का अनुभूत सत्य आत्मदर्शन है। इसके लिए व्यक्ति को अपने आपसे एक प्रश्न करना है, इस प्रश्न के द्वार से ही वह अपने जीवन मं प्रवेश कर सकता है। आत्मदर्शन एक

महान् उपलब्धि है, जिसके लिए मनुष्य को पूछना होगा—"मैं कौन हूं ?"

जब किसी से कोई प्रश्न किया जाता है, तो उसका उत्तर अवश्य मिलता है। पृथ्वी से भी जब प्रश्न किया जाता है, तो वह भी उत्तर अवश्य देती है। वृक्षों से जब प्रश्न किया जाता है, तब वे भी बोल पड़ते है। शुकदेव जब सन्यास लेकर वन की ओर चल पड़े, तो पिता उनके पीछे-पीछे पूछता जा रहा था। पुत्र! तुम किधर जा रहे हो? वन के समीप पहुंचने पर वृक्ष उत्तर की भाषा में बोल पड़े—तुम्हारा पुत्र तो सन्यास ले चुका है, तुम वापस लौट जाओ। जब अपने आपसे प्रश्न किया जाता है तो व्यक्ति का अहम् भी सत्य की भाषा मे बोल पड़ता है-"आत्म" अर्थात् आत्मा के अतिरिक्त मैं और कुछ नही हू। जैसे मिट्टी के ढेर म से मूल्यवान् मणि ढूढने से मिल जाती है, ऐसे ही मानव देह म छुपा हुआ आत्मा का मूल्यवान् चिन्ता-मणि अपने सारे रहस्यों के साथ प्रश्नों के द्वारा प्रकट हो जाता है। अत: सर्वोच्च प्रश्न के रूप मे अहम् का एक सत्प्रयत्न है, जिससे उस पर आच्छादित भ्रान्ति का एक अनादिकालीन आवरण दूर हटता है और फिर वह स्वानुभूति रूप आत्मदर्शन करके तृप्तकाम हो जाता है। वह शाश्वत तत्व के आधार पर शाश्वत समाधान और तर्पण की उपलब्धि द्वारा कृत्यकृत्य हो जाता है।

अवाप्त-सर्वार्थममोघवांछितम्।

आत्मदर्शन रूप स्वयं की उपलब्धि होने पर, अहम् को सब कुछ प्राप्त हो जाता है।

भारत का ज्ञान यही कहता आ रहा है, कि जो इस विशाल परिधि के केन्द्र मे बिन्दु अवस्थित है, उसी के स्वरूप को देखो, उसी को जानो, उसी का चिन्तन करो, मनन करो, समाधि की सम्प्रक्रिया द्वारा उसकी उपलब्धि करो, और सबको छोड़ दो, उनकी चिन्ता मत करो—ये कौन है, क्या है? जब तुम्हारा अहम् आत्म-दर्शन की भूमिका पर स्थिर हो जायेगा, तब सब आकांक्षाएं शान्त हो जायेंगी, सब

वांछाएं अमोघ, सफल और तृप्त हो जायेगी। व्यक्ति की आत्मा ही एक ऐसा तत्व या पदार्थ है, जिसम जीवन की अनन्त-अनन्त समस्याओं को तृप्त करने को क्षमता है। आत्मा को जानने-देखने के लिए भारत म कितने ही मार्गों का उद्घाटन हुआ, जिन्हे दर्शन के नाम से पुकारा जाता है, उन्होने अपने अपने तरीको से आत्म-दर्शन के लिए प्रयत्न किये है, और मनुष्यो के सामने यह भी निष्कर्ष उपस्थिति किया है, कि आत्मदर्शन मे ही मनुष्य के पुरुषार्थ की वास्तविक सिद्धियाँ रही हुई है। अत. उसे अपने जीवन के सारे प्रयत्न आत्मा की ओर केन्द्रित कर देने चाहिए। यही उसका महान् एव परम कर्तव्य है। आधुनिक मनोविज्ञान भी, जिसने दर्शन का स्थान ले लिया है, इसी सत्य को स्वीकृत करता है।

To know thyself is the first duty of man. Know thyself, accept thyself.

—मानव जीवन का यह सर्वश्रेष्ठ प्रयत्न है, कि वह अपने को जाने। आगे वह कहता है कि अपने अस्तित्व का अपनी सत्ता का वरण करे।

सम्राट् का आधिपत्य-क्षेत्र उसका अपना सीमित राज्य है, वह उसका उपभोग करता है। उपभोग से उसकी मृत्यु होती है, क्योंकि उपभोग विष है। विष से उसे मरण प्राप्त होता है। आत्मद्रष्टा पुरुष भी एक सम्राट् है। अखण्ड ब्रह्माण्ड पर ही उसका आधिपत्य है। साम्राज्य की सीमाएं अपरिमीम है। अखण्ड ब्रह्माण्ड उसके सामने नत-मस्तक है, वह आत्मद्रष्टा से पूछता है— 'तुम्हे कोई आकाक्षा तो नही ?" उसका उत्तर शून्य म होता है। वह उसका त्याग करता है। त्याग से वह अमृत का दोहन करता है। अमृत आत्मद्रष्टा को कभी मरने नही देता। जिसे अमृत पीने को मिलता हो, वह विष को अपना उपादेय कैसे बना सकता है ? अत. आत्म-दर्शन भोग की भर्त्सना करता है और त्याग के प्रति अभिरुचि और

आकर्षण रखता है। हिमालय के मस्तक पर स्थित मनुष्य को नीचे की सब चीजें छोटी दिखाई देती हैं। आत्मद्रष्टा अपने दृष्टिकोण की शक्ति से इतना ऊँचा उठ जाता है कि अपने आत्मा के स्वत्व के अतिरिक्त विश्व का कोई भी पदार्थ उसे मूल्यवान् प्रतीत नही होता। अतः प्रेय पर से वह अपने स्वत्व का त्याग कर देता है।

मनुष्य मे जब कुछ धर्म-भावना की सृष्टि होती है, तो सबसे पहले आत्मानुभूति की अपेक्षा ससार के प्रति घृणा-भाव उत्पन्न होता है। धर्म और घृणा परस्पर विरोधी भाव हैं। अतः धर्म के साथ घृणा-भाव को सत्य के आधार पर स्वीकृत नही किया जा सकता। दुनिया के सभी धर्म सबसे पहले ससार पर घृणा का प्रहार करते आये है। जिस ससार मे हमारा जन्म होता, जिसके भूत पदार्थों से हम जीवन धारण करते है, फिर उसे बुरा कहना, कितना असत्य है? कितना अज्ञान है? कभी जल असत्य हो सकता है? क्या अग्नि असत्य हो सकती है? पृथ्वी अपने क्षमाधर्म का त्याग कर सकती है? वायु जीवन प्रदान करने से इन्कार कर सकती है? फिर ससार को जो महान् धर्म का सत्य की साक्षी देता हुआ, पालन कर रहा है, बुरा कहने की आवश्यकता क्या? जिस मानव-देह मे आत्मदर्शन प्रकट होता है, उसमे और विस्तृत विश्व म कोई अन्तर भी तो दिखाई नही देता है। वह देह पिण्ड, विशाल जगत् का सक्षिप्त रूप ही तो है- यत्पिण्डे तद्ब्रह्माण्डे। यद् ब्रह्माण्डे तत्पिण्डे। अखण्ड ब्रह्माण्ड इस छोटे से पिण्ड ब्रह्माण्ड म सचित होकर समाया हुआ है। जिस ब्रह्माण्ड से जीवन का इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है, उसको बुरा बतलाने वाले धर्म से मनुष्य को इन्कार करना होगा। ससार को बुरा बतलाना, उससे घृणा द्वेष करने की शिक्षा देना धर्म का कर्तव्य नही, इस ससार मे कोई बुराई नही है। सर्वत्र ऋत सत्य प्रसारित है। ससार के प्रति जो धर्म ऐसा सिद्धान्त निश्चित करता है, वही सच्चा धर्म है। कवि ब्राउनिंग कहता है—

God is in the heaven
And All is well with the world.

—महान् सत्य ऊपर है, और नीचे संसार में सब कुछ ठीक है, उसमेंकोई दोष नहीं।

आत्मद्रष्टा इसी पवित्र धर्म का प्रचार दुनिया में करता है। वह विश्व के प्रति सत्य दृष्टिकोण देकर जनता की भूलें दूर करता है। वह कहता है, संसार को देखने मे हम स्वयं भूल करते है, और कहते हैं कि संसार हमें धोखा देता है। आत्मदर्शन से व्यक्ति में 'अहम्' के भीतर विश्व को देखने की एक विलक्षण दृष्टि का उन्मेष हो जाता है। जीवन के अन्दर और वाहर दोनों को देखने की एक ही दृष्टि होती है, विभिन्न दृष्टियां नही होती। उस दृष्टि मे साम्य की अखण्ड उपासना रहती है, जो मबको आत्मौप्य की भावना से रंजित कर देती है। फिर इस मायावी जगत् मे कही कुरूपता एव विषमता परिलक्षित नही हो सकती। यही कारण है, कि ससार के किसी महापुरुष ने चोर और डाकू को, हिसक और दुराचारी को अनार्य के शब्दो से उनका कभी अपमान नही किया। उन अपराधियों मे भी उन्हें सज्जनता के दर्शन हुए है। अत: जब भी कोई अपराधी उनके सम्मुखस्थ हुआ तो उन्होंने आर्य शब्दो से सम्बोधित करके उनकी सुप्त सज्जनता तथा पुरुषार्थ को प्रदीप्त कर दिया।

परकीय अपवाद और अपवादी समाज और जगत् के सबसे बड़े दूषण है। इस तथ्य को स्वीकृत करना होगा कि हिसा, दुराचार जीवन के इतने बड़े अभिशाप नही है, जितने निन्दा, छल-कपट है। हिसक, व्यभिचारी को धमश्रद्धा सुलभ हो सकती है, उसका कल्याण हो सकता है, लेकिन निन्दक एवं छली-कपटी को ये सब दुर्लभ है। निन्दक का स्वभाव कुत्ते की तरह होता है। साधु हो या सन्यासी, चोर हो या डाकू, उसका काम सबको भौकने और काटने का होता है। ससार का कोई भी महापुरुष अपवाद से बच नही सका। उसे

भी अपवाद के शाण पर घिस कर अपनी परीक्षा देनी पडी। उन्होने अपवाद की शुद्धि, जीवन की सुगन्धित सौरभ से की। महापुरुष कहता है– निन्दक की वाणी को शास्त्र की भाषा समझो। कहते है–"यदि तुम मे कोई दोष है, तो उसे निकाल फेंको, नही तो सारा जीवन सड उठेगा। अतः दोष को जीवन मे रखने से क्या लाभ ? जैसे जीवन को सस्कृत करने के लिए श्रद्धा से शास्त्र की वाणी का आधार लिया जाता है, वैसी ही रुचि निन्दक की वाणी के प्रति होनी चाहिए। हीरे के गुणो को प्रकट करने के लिए शाण उसे चीरता है। निन्दक की वाणी भी व्यक्ति की तेजस्विता को प्रकट करने के लिए उसे चीरती है। इसी तरह शत्रुता आदि अनेक विरोधी भाव है, जिनमे साधना परायण व्यक्ति के गुणो की खोज होती है। आत्मवान पुरुष इस परीक्षा से कभी विचलित नही होता। उसमे समुद्र का गाम्भीर्य आ जाता है। जिसकी इन्द्रियां ही उसकी आत्मा है, उसके मन और बुद्धि माया या प्रकृति से आवृत है। ये दृश्यमान् जगत् का वास्तविक स्वरूप प्रकट करने में असमर्थ है। आत्मदर्शन विश्व को देखने की ज्ञान शक्ति है। जो प्रकृति के आचरण से विमुक्त होकर सर्वथा पवित्र है, जिसमे विश्व का वास्तविक स्वरूप आत्मद्रष्टा के सामने प्रकट हो जाता है। अतः सत्य, शिव, सौन्दर्य के अतिरिक्त ससार मे और कुछ दिखायी नही देता। जो इन्द्रिय आदि ज्ञान शक्ति का आधार लेकर यात्रा कर रहे है, उन्हे इस सत्यपूर्ण जगत् मे सब जगह असत्य ही असत्य, दोष ही दोष नजर आते है। तालाब और समुद्र मे कोई अन्तर नही, दोनो ही जलाशय है। एक जल की अल्पराशि है, तो दूसरी जल की विशाल राशि। जल के आधार पर कोई छोटा या बडा नही, पर सागर मे जीवन का एक आदर्श है। वह है, उसकी गम्भीरता और उसकी मर्यादा, यही उसकी महत्वपूर्ण विशेषता है। पत्थर फेंकने से सागर अपनी गम्भीरता का त्याग नही करता, मर्यादा का उल्लघन नही करता। तालाब शीघ्र ही क्षुब्ध हो जाता है। आत्मवान् की इस जगत् मे अलौकिक प्रतिक्रिया होती है।

धर्म मानव जीवन की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि है। इस विशाल विश्व में सब कुछ पाकर भी धर्म के अभाव में मनुष्य खाली रहता है। आत्म-दर्शन से बढ़कर मनुष्य का अन्य कोई धर्म नहीं हो सकता, जिसने अपने को नहीं पाया, उसने क्या पाया? अतः मनुष्य वह है, जो आत्मदर्शन के लिए प्रयत्नशील है।

अयं स परमो धर्मो यद् योगेनात्म दर्शनम् ।

योग-साधना के सत्प्रयत्न से आत्मा का दर्शन करना, मनुष्य का सबसे बड़ा धर्म है।

□□

ज्ञान भी सम्पदा है

○ ○

मंसार में सारा श्रेय ज्ञान दृष्टि का है। दृष्टि में ही अमृत और विष का वास है। ज्ञान कैसे और कहां-कहां मनुष्य के अंतर्मन को प्रकाश से भरता है। ज्ञान के अभाव में कैसे वह अंधेरा बटोर लेता है। इस ज्ञान सम्पदा का मनुष्य जीवन में किस प्रकार महत्व मंडित हो रहा है। इसी परिपेक्ष में प्रस्तुत निबन्ध हमारी विचार प्रक्रिया का संबल बनता है। यही इसमें हमें खोजना है। यही पाना है।

—सं

○ ○

ज्ञान भी सम्पदा है, इसके समझने वाले बहुत कम लोग दुनिया में हुए हैं। जिन्होंने इस पर गम्भीर चिन्तन किया, वे लोग दुनिया से बहुत आगे निकल गये।

हीरे और पत्थर के लिये भेद-दृष्टि सबके पास नहीं होती। लाखों में से एक या दो ऐसे मिलेंगे जो हीरे और पत्थर का भेद कर सके। ज्ञान और भौतिक सम्पदा में वही अन्तर है जो हीरे और पत्थर में है। हीरे के सामने पत्थर का कोई मूल्य नहीं होता, ज्ञान के सामने भी भौतिक सम्पदा का कोई मूल्य नहीं है। दोनों में आकाश और पाताल का जो अन्तर है, उसे कोई मिटा नही सका और इस अन्तर को वे ही लोग विश्व को बता गये, जिन्होंने ज्ञान का परीक्षण कर इस अन्तर को समझ लिया, वे प्रतिकार की भाषा में बोल गये—

बुज्झिज्जत्ति तिउट्टिज्जा बंधणं परियाणिया।

—संबोधि से बन्धनों को तोड़ दो।

महावीर जैसे ज्ञानवादी, जिन्होंने ज्ञान पर गम्भीर चिन्तन किया, दुःखों के प्रतिकार का उपाय दुनिया को देकर चले गये। ज्ञान प्रतिकार है उसका, जो मनुष्य नहीं चाहता। कोई इस सृष्टि से पीड़ा नहीं चाहता। दुःख कोई नही चाहता। हिंसा कोई नहीं चाहता। संसार में विशेषतया भारत मे ऐसे धर्म-संघ स्थापित हुए, जो मानव-जाति का दुःख मिटाने के लिए जिस ज्ञान की आवश्यकता थी, उसका सतत अभ्यास करते रहे। भारत मे ज्ञान के नित्य-नवीन मल्य निर्धारित होते रहे। वे भौतिक सम्पदा की अपेक्षा दुःख मिटाने के लिए ज्ञान के मूल्य को दुनिया के लोगों को समझाने में लगे रहे। भारत में जब ईसा आये तब उन्हें यहां के ज्ञान मे दर्पणवत्, जीवन का अर्थ स्पष्ट प्रतीत हुआ और उसके लिए इतना ऊँचा मूल्य अर्पित किया कि वे अपने देश के लोगों को कहने लगे - "अब तुममे से कोई नहीं मरेगा, मैं तुम्हारे लिए आबे हयात लेकर आया हूं।" बाईबल ईसा की सकलित वाणी है। उसमे भी सृष्टि के लिए ज्ञान को जीवन का मूलभूत आधार स्वीकृत करते हुए कहा गया है—

इस सृष्टि मे सबसे पहले शब्द था, और कुछ नही था। और वह शब्द मनुष्यो की ज्योति था।

चरित्र जीवन का मौलिक आधार है, चरित्र की सृष्टि ज्ञान से होती है। अतः ज्ञान जीवन की मूल्यवान् निधि है। चरित्र-हनन से मनुष्य की मृत्यु हो जाती है। सम्पत्ति के अभाव मे मनुष्य नही मरता। ज्ञान और चरित्र के अभाव मे मनुष्य मर जाता है। आकाश और पाताल के विशाल अन्तराल मे जो दुःख छाया हुआ है, ज्ञान ही उस का प्रतीकार है। अग्नि से अग्नि बुझाना जैसे अज्ञान है, वैसे दुःख के हेतु मे दुःख मिटाना अज्ञान है। धन-सत्ता से सुख-सृष्टि कभी सम्भव नहीं हुई। दुःख मिटाने के लिए इसका संचय करना, अज्ञान है। कांटों से बचने के लिए मनुष्य पैरों में जूता डालता है, किन्तु ठोकर लग जाने की दुर्घटना से उसे कौन बचायेगा!

भारत में मनुष्य के भाग्य का निर्णय सम्पदा के आधार पर कभी नहीं किया गया, यहां जो धन का दास है, वह भाग्यहीन है; धन जिसका दास है, वह भाग्यशाली है।

ज्ञान अन्तर्दृष्टि है, जो मनुष्य के विवेक को अनावृत कर स्पष्ट करती है। योगदर्शन मे इसे विविक्त दृष्टि माना गया है। ऐसा दृष्टि सम्पन्न मनुष्य सब कुछ तुलनात्मक दृष्टि से देखता है। अन्तर्दृष्टि का प्रकाश एक तरफ नही, दीपक की ज्योति की तरह चारों तरफ देखता है। यद्यपि ज्ञान अन्तर्द्रष्टा होता है, लेकिन उसका प्रकाश बाहर विस्तृत ब्रह्माण्ड को भी देखता है। अन्दर सत्य है, बाहर असत्य है। वेदान्त की भाषा मे जो मिथ्या है, माया है— उसकी उसे निश्चित प्रतीति हो जाती है। भीतर ज्योति है, बाहर अन्धकार है, इसका भी निर्णायक आभास उसे मिलता है। भीतर उसे अनन्त और असीम दिखाई देता है। बाहर उसके लिए सब क्षणिक है। इन ज्ञानवादियो की दृष्टि म ससार अगाध समुद्र है। ज्ञान ही सबको इसमें डूबने से बचाता रहता है। सागर के तट पर अगाध जल-दर्शन से जो सुखद अनुभूति होती, है, उसमे भीतर उतर जाने से नही। वे ज्ञान का मार दुनिया को बतलाते रहे। भारत का ज्ञान कहता है, इस स्थिति तक पहुचने के लिए मनुष्य अपने जीवन को दर्पण जैसा बना ले। दर्पण के सामने अग्नि और जल दोनो होते है, वह उनसे प्रतिबिम्बित अवश्य होता है लेकिन न अग्नि से जलता है और न जल से आर्द्र ही होती है।

ज्ञान ससार-सरोवर का अरविन्द है। जिन्हें ज्ञान की वास्तविकता की अनुभूति हो गई, वे ससार-सरोवर के अरविन्द हो गये। उनकी मानवता मे वीतरागता प्रकट हो गई। उन्होंने ससार को ऐसे छोड़ दिया, जैसे कमल सरोवर की कीचड छोड़ देता है। इसी ज्ञान ने महावीर को ससार-सरोवर का अरविन्द बना दिया। उन्होने ससार को छोड़ा। कवि की भाषा में उनके उस परित्याग का दृश्य प्रस्तुत है—

Mother, it is no gain thy bondage of finery. It is keey one from the healthful dust of the earth. It is shut one from the common human fair.—*Tagore*

—माँ, तुम्हारा यह सुन्दर परिधान मेरे लिए बन्धन हैं। यह मुझे धरती की स्वस्थ धूल के स्पर्श से वंचित रखता है। यह जन-साधारण के उत्सव में सम्मिलित होने में मेरे लिए बाधा उपस्थित करता है।

महावीर राज्य-सम्पदा छोड़कर ज्ञान के लिए विजन वनों में चले गये। वृक्ष के नीचे निर्लिप्त अरविन्द बनकर बैठ गये। महावीर ज्ञान की अन्तिम उपलब्धि तक पहुंच गये। इस ज्योतिर्मय उपलब्धि के दीपक घर-घर में जलाने के लिए साधु-समाज और गृहस्थ वर्ग ने सम्मिलित रूप से महावीर द्वारा प्रदत्त इस महान् दायित्व को अपने ऊपर लिया और उनके प्रकाश को घर-घर तक पहुंचाने के लिए ठोस प्रयत्न किए। व्यापार-हेतु समुद्र यात्रा करने वाले समुद्रपाल जैसे इभ्यपति भी महावीर की ज्योति-शिखा को भारत से बाहर अन्य देशों में ले गए। इस धर्म-संघ ने महावीर की ज्ञान-ज्योति को अनेक झंझाओं में भी सुरक्षित रखा। नीचे इसका ऐतिहासिक उल्लेख प्रस्तुत है।

अचल-सचेल वादी साधुओं में आचार-विषयक मतभेद जब खड़ा हुआ, तब श्रुत-विषयक कोई भेद न था। दोनों वर्गों को बारह अंग समान रूप से सामान्य थे। यह अभेद-स्थिति भगवान् महावीर के बाद डेढ सौ वर्ष तक रही। दोनों वर्गों के आचार्यों ने अंग-श्रुत के आधार पर छोटे-बड़े ग्रन्थ लिखे, जिन्हें दोनों के अनुयायी तथा शिष्य मानते रहे, किन्तु वे जब अपने कुल गुरु-प्रगुरु की कृति को विशेष महत्व देने लगे। फलत: दलगत भेद उग्र रूप धारण करने लगा। इन्ही ग्रन्थों को उपांग और अंग बाहय कहा जाने लगा। महावीर की ज्ञान-ज्योति का विस्तार संघ के ऐक्य पर निर्भर था, अत: इस विघटन को रोकने के लिए महावीर निर्वाण के 260 वर्ष पश्चात् पाटलिपुत्र में आगम-संगीति हुई। इसके पश्चात् कालान्तर में दो संगीति और हुई-माथुरी और वल्लभी। ये सब प्रयत्न जनहित की दृष्टि से महावीर की ज्ञान-ज्योति को सुरक्षित रखने के लिए हुए।

बुद्ध ने भी मुक्ति हेतु ज्ञान की अर्थवत्ता स्वीकृत करते हुए संसार को उद्घोषित किया।

"जागते हुए को रात दीर्घ हो जाती है। अज्ञानी को दुःख परम्परा भी दीर्घ हो जाती है।"

संसार को इसी ज्ञान का उद्घोष देते हुए, गौतम बुद्ध ने काशी, कौशल अंग और मगध के भीतर विचरण करते हुए पैंतालीस वर्ष तक धर्म प्रचार किया, महान् सम्राटों से लेकर साधारण जनता उनके ज्ञान की अनुयायी हो गई। बौद्ध भिक्षु मठ-विहारों में रहते। उनके लिए अजन्ता, एलौरा, कार्ले, नासिक जैसे गुहा-विहार हजारों वर्षों तक बनते रहे। दुनिया में अन्य धर्मानुयायियों की अपेक्षा आज भी बौद्ध धर्मानुयायी अधिक हैं। बुद्ध के मौखिक उपदेश उनके शिष्यों ने कण्ठस्थ किये। उपदेश की दो धारायें थीं—धर्म-दर्शन और विनय (भिक्षुकाचार)। बुद्ध-निर्वाण के ठीक पश्चात् मतभेद न हो जाए, इसलिए उसी वर्ष भिक्षुओं ने राजगृह की सप्तपर्णी गुहा में संगायन-संगीति की। भिक्षु-संघ के प्रधान थे—महाकश्यप। प्रथम संगीति के कुछ वर्ष पश्चात् वैशाली के भिक्षुओं से विनय-भिक्षुकाचार के कुछ नियमों की अवहेलना प्रारम्भ की। तदर्थ फिर द्वितीय संगीति हुई, इसके पश्चात् पटना में अशोक-निर्मित अशोकाराम में धर्म और विनय का संगयान हुआ। यही हजारों भिक्षुओं का सम्मेलन तृतीय संगीति था। उसी समय स्थविरवादियों द्वारा निकाले गए सर्वास्तिवाद आदि ग्यारह निकायों ने नालन्दा में अपनी पृथक् संगीति की।

तीसरी संगीति के बाद मौद्गलिपुत्र ने अशोक सम्राट् की सहायता से भिन्न-भिन्न देशों में प्रचारक भेजे। विदेशों में भारतीय धर्म के प्रसार का यह पहला ही अवसर था। प्रचारक यूनान, मिस्र, सीरिया, मध्यएशिया, ताम्रपर्णी लंका, स्वर्णद्वीप ब्रह्मा भी पहुंचे। अशोक पुत्र तथा मौद्गलिपुत्र तिष्य के शिष्य भिक्षु महेन्द्र और उस की सहोदरा संघमित्रा भी प्रचारक बनकर गए। लंका का राजा देवानांप्रिय तिष्य बौद्ध धर्म में दीक्षित हो गया। सारी लंका बौद्ध हो गई। सूत्र, विनय और अभिधर्म-तीनों पिटक, जिन्हें त्रिपिटक कहते हैं, जो आज तक कण्ठस्थ चले आए थे, लंका में लेखबद्ध किए गए। यही आज का पालित्रिपिटिक है। मौर्य सम्राट ने विहार स्तूपों का निर्माण कराया। मौर्य सम्राट को मारकर उसके सेनापति पुष्यमित्र

ने शुंगवंशीय राज्य की स्थापना की। यह बौद्धों का द्वेषी था, जिसने अश्वमेधादि पशुबलि-यज्ञ महाभाष्यकार पतञ्जलि के पौरोहित्य में कराए। इसके शासन में महाभारत, मनुस्मृति का संस्करण हुआ। संस्कृत भाषा का पुनरुद्धार किया गया।

इस प्रतिकूल परिस्थिति में मगध से स्थविर-वाद विदिशा के समीप चैत्य पर्वत-वर्तमान साँची में चला गया। सर्वास्तिवाद मथुरा के उरुमुण्ड गोवर्धन पर चला गया। अन्य निकाय भी अपने-अपने केन्द्रों में हटा दिये गये। बौद्धों को भी अपना साहित्य संस्कृत भाषा में करना पड़ा।

जीवन के रहस्य का बोध ज्ञान के प्रकाश में ही सम्भव है। ज्ञान में ही जीवन की दुःखमयता का बोध होता है। दुःख की चिकित्सा ज्ञान है। आग से आग नहीं बुझती, दुःख से दुःख नहीं मिटता। दुःख का अन्त करने के लिए ज्ञान का दीपक जलता रहना चाहिए।

□□

जीवन-सन्देश

O O

मित्र, रुक जाओ ! अरे ! तुम ऐसे भागे जा रहे हो, जैसे मेरा तुम्हारा कोई नेह-नाता ही नही ? क्या अर्थ हुआ मेरे इस प्रलाप का ! तुम तो भागते ही चले जा रहे हो। नही देखा न तुमने एक पल को भी मेरी ओर ? बड़े आग्रही हो। इस आग्रह ने तुम्हे कुछ दिया ? मिला कुछ तुम्हे आग्रह के द्वारा।

मनुष्य जाति को 'मित्र' सम्बोधन द्वारा पुकारने वाली मन-विचार-धारा है। अन्तहीन धारा में बह-कर नष्ट होने वाले मनु-पुत्र को पुकारता यह 'जीवन सदेश मानवता से ओत-प्रोत पुकार है।

—सं

O O

संसार के समस्त प्राणियो ओर उन की क्रियाओ को जब हम गहरी दृष्टि से देखते है, तो वे एक यात्री से मालूम देते है। जैसे कोई यात्री अपनी यात्रा के लिए एक विशेष रूप से तय्यारी में सलग्न रहता है, वैसे ही आकाश से पाताल तक के सभी प्राणी अपनी-अपनी यात्रा के लिए विशेष रूप से तय्यारी में लगे हुए है। ऐसा मालूम देता है कि, इन की यात्रा का मार्ग तो एक ही है, पर इनकी यात्रा की तय्यारी के जो रूपक या प्रकार है, वे सब अलग-अलग है, उनमें एकरूपता नही है। कोई हस रहा है, तो कोई खेल रहा है; कोई वेष-भूषा से अपने शरीर को सजाने की तय्यारी मे है, तो कोई धन-सम्पत्ति के लिए इधर-उधर दौड़ रहा है; और कोई ससार के पदार्थों

की सूक्ष्म प्रक्रियाओ के द्वारा चीर-फाड़ करके उसके अन्दर की दुनिया को देखने में लगा हुआ है।

प्राणियों की वह यात्रा क्या है ? सुख एवं शान्ति की यात्रा। इस से आगे कोई और मार्ग ससार के प्राणियो के सामने आज तक नही रहा है। ससार मे होने वाले आज तक के महान् पुरुष भी उन्हें इस मार्ग से नही मोड सके है, बल्कि वे भी उन्हे इसी मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते आए है, पर दिन-रात जीवन का भार उठाये फिरने पर भी, उनके सुख की यात्रा का अन्त नही आ रहा है। सुख के मार्ग पर दिन-रात चलकर भी, मानो संसार के प्राणी अपनी यात्रा-पथ के सिरे पर ही खडे हुए है। इतना प्रयत्न होने पर भी जगत् के सुख की समस्या क्यो नही सुलझ रही है ? जब तक अपने तथा अपने जीवन के विषय में कुछ प्रश्न नही कर लिए जाते, और ससार के विषय मे सही ज्ञान प्राप्त नही हो जाता तब तक सुख-शान्ति के मार्ग का सही ज्ञान प्राप्त नही हो सकता। भगवान् महावीर ने, मानव जाति को इसी मार्ग का निर्देश करने के लिए, यही महान् सन्देश एक महान् प्रश्न के रूप में उपस्थित किया था—

के अहं ?

—मै कौन हू ?

ये जीवन के उद्बोधक शब्द है, जिन के द्वारा विश्व का एक महापुरुष ससार के प्राणियो को उनकी और उनके चारो तरफ फैले हुए जगत् की वास्तविक स्थिति से परिचय कराना चाहता है। अर्थात्, वह उनकी भूलो को मिटा कर, जीवन के सही मार्ग का निर्देश करना चाहता है। इसीलिए वह सब से पूछना चाहता है—तुम्हारा अस्तित्व क्यो है ? जगत् का अस्तित्व क्यो है ? तुम किस लिए जी रहे हो ? तुम्हे किस तरह का जीवन व्यतीत करना चाहिए, इत्यादि ? जब तक इन प्रश्नो का सही-सही उत्तर नही पा लिया जाता, तब तक सारा का सारा जीवन एक बड़ी बुराई होगा। मनुष्य के अतिरिक्त, दूसरे सभी प्राणियो के लम्बे से लम्बे जीवन को

भी एक बड़ी बुराई इसी लिए माना गया है कि, उनके मस्तिष्क में जीवन के उक्त प्रश्न कभी भी उठ ही नहीं पाते और न कभी उन प्रश्नों का वे हल ही निकाल पाते हैं। स्वर्गों के निवासी देवों का लम्बा जीवन भी इसी लिए कोई उपयोगी नहीं माना गया। इसी लिए भारत के ऋषि-महर्षियों ने कहा—"**मनुष्य को देव न बन कर एक अच्छा इन्सान बनना चाहिए।**" अच्छा इन्सान बनने के लिए अच्छे जीवन की ज़रूरत है, जो सभी बुराईयों से दूर हो, ऐसा तभी सम्भव है, जब इन्सान जीवन से सम्बन्ध रखने वाले प्रश्नों का हल सोच सके।

ये प्रश्न अत्यन्त सीधे-साधे मालूम देते हैं, लेकिन ये जीवन के सवालों में से सब से महत्वपूर्ण और गम्भीर हैं। जिस किसी मनुष्य के दिमाग़ में ये सवाल एक बार ठोस चेतना के साथ खड़े हो जायेंगे, और जब तक वह उनका जवाब देने में असमर्थ रहेगा, तब तक वे बार-बार उसकी प्रत्येक क्रियाओं के सामने आते रहेंगे और उसे जवाब देने के लिए परेशान करते रहेंगे। अगर ऐसा कोई व्यक्ति सम्राट् है, तो वे उस से पूछेंगे—"तुम ने अपने सिर पर यह मुकुट क्यों रखा है? हाथ में तलवार लेकर दूसरे देशों पर हमला करना तुम्हारे किस उद्देश्य की पूर्ति कर सकता है?" यदि इसी तरह के व्यक्ति विद्यार्थी, लेखक, जज, वकील, डाक्टर, धनी, निर्धन मजदूर हैं, तो उन्हें भी जीवन के वे सवाल एक तरह की उलझन में डालते रहेंगे और उनकी ज़िन्दगी का रास्ता रोक कर खड़े हो जायेंगे, उन से यह पूछे बिना जीवन के मार्ग पर आगे चलने नहीं देंगे कि, "*यह जीवन किस लिए है? यह तुम्हें कहाँ ले जा रहा है?*" जब मनुष्य के सामने ये सवाल बार-बार आते रहेंगे, तो उसे जवाब देना ही पड़ेगा। जवाब दिए बिना पृथ्वी पर उसका जीना असम्भव हो जायेगा। दुनिया की जिन चीजों पर खड़ा वह इतने दिनों तक जीवन बिता रहा था, अब वे उसके नीचे से गिरने लगती हैं और फिर कोई ऐसी चीज नहीं रह जाती जिसके आधार पर खड़ा हो कर वह जी सके। अपने चारों तरफ़ फैले

दुनिया के सुख-साधनों, कुटुम्ब, परिवार आदि के विषय में अपने-आप से सवाल करने लग पड़ेगा—'मैं कुटुम्ब के भार को क्यों उठा रहा हूं ? उसकी शिक्षा, पालन-पोषण किस लिए कर रहा हूं ? मेरे पास विशाल सम्पति, दास-दासियां है, भोग-विलास के साधन है, पर इसके बाद ?' ये ऐसे सवाल है, जो जीने के लिये उस से शीघ्र ही जवाव चाहते है, नही तो सारा जीवन और जीने की सारी चीज़े नीरस और निस्सार बन जाती है—ऐसे व्यक्ति के जीवन की गति रुक जाती है। वह सांस लेता है, खाता-पीता है, सोता है, इन कामो को करने के लिए बाधित है, पर उस में कोई जीवन नही रह जाता। यदि कोई देव आकर उसे वरदान मांगने के लिए कहे, तो उसकी समझ में नही आ सकेगा कि, वह उस से क्या वरदान मांगे; क्योकि उसके जीवन-शून्य हृदय में कोई ऐसी कामना नही रह जाती, जिसे वह पूरी करना उचित समझे और वह यह भी समझ गया होता है कि, उस वरदान से उस का कुछ होने-जाने वाला नही है। सत्य यह है कि, उसे सारा जीवन निरर्थक मालूम देता है और जीवन के सारे साधन उसे मृत्यु की तरफ़ घसीटते नजर आते है।

इस मृत्यु का अर्थ क्या है ? यही कि, मनुष्य के जीवन को इतनी सुरक्षा नही दी गई है कि वह खाये-पीये, भोग-विलास में पडा रहे, अपने कामों से अपने हृदय को प्रसन्न रखे। मनुष्य की बुद्धि, वैभव, कुटुम्ब आदि—सब का अन्त हो जाता है। पश्चात् स्वय मनुष्य का कोई चिह्न नही रह जाता, न उसके किसी जीवन-साधन का ही चिह्न रह जाता है। अर्थात् बडे से बडा मनुष्य भी इस दुनिया से बिल्कुल मिट जाता है, उसका किसी तरह का कोई निशान उसके पीछे नही रह जाता। ससार में जो कुछ है, दुःख से परिपूर्ण है। बुद्धि, धन, वैभव, कुटुम्ब, आदि का अहङ्कार मिथ्या अहंकार है, मिथ्या अभिमान है। जैसे मूर्ख मरता है, वैसे ही बुद्धिमान्, और वैसे ही धनी और निर्धन। दुनिया में जो कुछ है उस में यही एक दोष है, जो सब के साथ यही एक मृत्यु की दारुण घटना घटित होती हैं। मनु के पुत्रो का हृदय बुराई से भरा हुआ है और जब तक वे

जीते है, उनके हृदय में अज्ञान भरा रहता है और उसके पश्चात् वे मृत्यु के भयकर मुख में चले जाते है।

जीवन का स्पष्ट मार्ग मनुष्य को कहाँ से दिखाई दे सकता ? क्या शरीर-विज्ञान, मनो-विज्ञान, जीव-विज्ञान, समाज-विज्ञान आदि, मनुष्य के सामने जीवन-मार्ग को स्पष्ट रूप से निर्देश कर सकते है ? वे कहते है—'तुम क्या हो ? क्यो जीते हो ?' ऐसे प्रश्नो का न तो हमारे पास उत्तर ही है, और न उनके बारे मे हम सोचते है। आधुनिक-विज्ञान या जीवन की कोई अन्य कला के दर्पण से भी जीवन मार्ग मे दर्शन नही हो सकते। जीवन का अर्थ क्या है ? इसके उत्तर में वे कहते है—कुछ नही। जीवन का फल क्या होगा ? उत्तर—कुछ नही। जितनी वस्तुए वर्तमान है, उसका अस्तित्व क्यो है, और हमारा अस्तित्व क्यो हे ? उत्तर—हमें पता नही।

इसी दिशा से जीवन के प्रश्नो की खोज में, मनुष्य का ठीक उसी तरह अनुभव होता है जो घने जगल मे रास्ता भूल जाने वाले को होता है। वह जगल क बीच की खुली जमीन मे पहुचता है, किसी वृक्ष पर चढ जाता है और उसे असीम दूरी तक दिखाई देता है, पर वह देखता है कि, उसका घर उधर नही है, न हो सकता है। तब वह और घने जगल मे घुस जाता है। वहाँ उसे अधेरा दिखाई देता है, पर घर वहा भी नही है। इस तरह आधुनिक सिद्धान्तो और वादो के गहरे अन्धकार मे फसता जाता है, जिस मे से बाहर निकलने का रास्ता न है, और न हो सकता है। आज के विज्ञानो से यदि मनुष्य उन जीवन के सवालो को समझने को कोशिश करे, तो वह उन सवालो से ही उस का ध्यान हटा देगे। विज्ञान चाहे कितने भी स्पष्ट और साफ भी हो, आकर्षक हो उनका प्रकाश कितना ही लुभावना हो, पर वे सब मनुष्य के लिए बेकार है और उस के सवालो का जवाब देने में वे असमर्थ है। भगवान् महावीर कहते है—

न चित्ता तायए भासा,
कुओ विज्जाणुसासणं। —उत्तराध्ययन सूत्र

—तरह-तरह की भाषाओ तथा बाह्य विज्ञान से मनुष्य को जीवन की सुरक्षा नही मिल सकती।

जीवन का उत्तर माँगने वाले प्रश्न, किसी एक या दो मनुष्य के सामने नही आते, समस्त मनुष्यो के सामने आया करते है, पर वे जल्दी ही समुद्र-तरंगो की भाँति आते है, चले जाते है। यह सचाई सब को मालूम है कि प्रियजनों को अथवा मुझे जरा एव रोग से पीड़ित होकर मरना ही होगा, तब कुछ शेष न रह जायेगा, कुछ देर बाद लोग मेरी जीवन की सब कहानी भूल जायेंगे। किसी तरह से मेरा कोई अस्तित्व न रह जायेगा, तब जीवन के लिए प्रयत्न करने से क्या लाभ ? मनुष्य को यह बात कैसे नही दिखाई पडती ? कैसे वह जिन्दगी की राह पर चल रहा है ? यह एक बडा आश्चर्य है ! जीवन में इतना धोखा होने पर भी, सारी मानव-जाति जीवन से मतवाली होकर जीवन से चिमटी हुई है। ऐसा क्यो है ? भारतीय कथा-साहित्य ने इस दार्शनिक समस्या को इस तरह स्पष्ट किया है–

एक मुसाफिर कही जा रहा था। जगल में उसे एक क्रुद्ध जंगली जानवर मिला। उस से डर कर वह मुसाफिर पास के सूखे कुएं मे उतर गया। उस की नीचे नजर पडी, तो देखा कि एक भयकर अजगर उसे निगलने के लिए मुह फैलाये हुए है। वह भाग्यहीन मनुष्य हिंसक पशु के भय से न तो कुए से बाहर ही आ सकता है, और न अजगर के भय से कुए के अन्दर ही कूदने का साहस कर सकता है। वह बचने के लिये, कुए की दरार से निकली हुई एक टहनी को पकड कर लटक जाता है। उसके हाथ ढीले होते जा रहे है और वह महसूस करता है कि, उसे शीघ्र ही अपने को मृत्यु के हाथो मे सौप देना पडेगा। इस कठिन समस्या के बीच मे वह देखता है कि, दो चूहे (एक सफ़ेद और एक काला) बार-बार उस शाख के चारो तरफ घूमते हुए उसे काट रहे है। वह मुसाफिर जान लेता है कि अब तो मृत्यु अवश्य ही है। इसी समय शाख पर लटकता हुआ अपने चारो तरफ़ दृष्टि डालता है और

देखता है कि, शाख (टहनी) की पत्तियों पर शहद की कुछ बूंदें पड़ी हुई है। वह जबान से उन्हें झुक कर चाटने लगता है।

जीवन से चिमटे हुए लोगो को वह अजदहा या क्रुद्ध जगली पशु नजर नही आता ? लेकिन वासना के क्षण-भगुर आनन्द की शहद की कुछ बूंदें अजदहा के भय को दबा देती है और मानव जाति को धोखे में रखे रहती है, जिस से वास्तविक सत्य उन की आँखो से दूर रहता है और जीवन के प्रश्नों का हल निकालना भूल जाती है। ये सवाल तब से पूछे जा रहे है, जब से इन्सान की शरूआत है।

जिन्दगी के इन सवालों को समझने और उनका ठीक जवाब देने के लिए भारत के ऋषि-महर्षियो ने 'आत्मा' नाम के तत्व की खोज की है। यह उनकी त्याग से भरी तपस्याओ का महान् एव मुन्दर फल है। उन्होने इसे अपने स्वय के अनुभव से तलाश किया है। यह 'आत्मा' भारत की अन्तिम खोज है। इसी के आधार पर ही मानव-जाति की सभी बुराईयो को दूर किया जा सकता है। आत्म-सस्कृति के मार्ग को छोड कर, मानव-जाति को सुख-शान्ति की राह का कोई निर्देश नही कर सकता। भगवान् महावीर 'के अह'—'मै कौन हू' के रूप मे इसी 'आत्मा' का बोध मानव-जाति को कराना चाहते है, ताकि सब को यह सोचने का अवकाश मिल जाये कि, उसका जन्म कोई आकस्मिक घटना नही है, उसका कोई मूल कारण अवश्य है, जिसके कारण उसे सुख-दु.ख आदि के द्वन्द्वो में से गुजरना पड रहा है। पूर्व जन्म के अच्छे-बुरे सस्कारो से किसी को सुख-दु.ख कैसे मिल सकते है ? उन सस्कारो के जमा होने का कोई अमर साधन अवश्य होना चाहिए, वह व्यक्ति का अपनी 'आत्मा' के सिवा और कोई नही हो सकता। भगवान् महावीर ने इस सचाई को इस तरह से रखा है

अप्पा कत्ता विकत्ता य,
दुहाण य सुहाण य।

—आत्मा ही सुख-दुःखों का कर्ता है, वही उन्हे मिटा सकता है।

सदाचार मार्ग पर आत्मा का सदुपयोग किया जाये, तो जीवन का सशोधन किया जा सकता है। ऐसा व्यक्ति महान्-से-महान् संकट से भी अपने को उभार सकता है ऐसा आत्मा उसके लिए सुन्दर, शान्त प्रकाश मे भरा संसार उपस्थित कर सकता है। यदि आत्मा को कुमार्ग पर चलाया जाये, तो उससे भयकर व्यक्ति का कोई शत्रु नही हो सकता, अर्थात्, उसे जीवन का मार्ग नही मिल सकता। भगवान् महावीर ने इसीलिए सारी जिम्मेदारी व्यक्ति की अपनी आत्मा पर छोडी है—

अप्पा मित्तममित्तं च,
दुप्पट्ठिओ सुपट्ठिओ।

—सुमार्ग पर चलने वाला आत्मा, व्यक्ति का मित्र है; कुमार्ग पर चलने वाला आत्मा व्यक्ति का शत्रु है।

सभी अनर्थों का कारण है—आत्म-विस्मृति, अपनी आत्मा को भूल जाना, अपने को भूल जाना है—कोई भी व्यक्ति पहले मनुष्य है, राजा, न्यायाधीश, मन्त्री, डाक्टर, वकील, विद्यार्थी, व्यापारी आदि वाद मे है। आज वकील, डाक्टर, पदाधिकारी तो अनेक मिल जायगे, लेकिन आत्मा के सन्देशानुसार चलने वाले सच्चे मनुष्य कम मिलगे। राजनैतिक, आर्थिक सिद्धान्तो को तो लोग जानने समझने है और अपनाते है, लेकिन जीवन क मौलिक सिद्धान्त आत्मा को जानने की चेष्टा नही करते। अर्थात् एक व्यक्ति वकालत पास करता है। वह अपना इतना ही कर्तव्य समझता है, जिस से फीस मिले, उसी की पैरवी करे। कोई डाक्टर बनने पर फीस देने वाले की ही चिकित्सा करना है। यदि कोई कष्ट से पीडित फीस नही दे सकता तो उसके लिए डाक्टर के हृदय मे मानवोचित सहानुभूति नही होगी। बिना फीस के वकील भी अन्याय से पीडित की तरफ से वकालत करने को तय्यार न होगा। पर उनकी आत्मा कहती है, ऐसे स्वार्थी, दयाहीन मनुष्य नही है। मनुष्य अपने जिन गुणो के कारण मनुष्य बनता है, वे आत्मा की

ही विभूतियाँ हैं। आत्मिक गुणों के उत्कर्ष से ही वह महात्मा या देवता स्वरूप बनता है। आत्मा नहीं हो, तो मनुष्य के शरीर की क्या कीमत है? एक मिट्टी का ढ़ेर ही है। मनुष्य को अपने जीवन का स्वरूप अपनी आत्मा में देखना है। अत: भारत के ऋषि कह गये है-'तमेवैकं जानथ आत्मानम्'। मैं देह नहीं हूं, आत्मा हूं। यही संक्षेप में मनुष्य का जीवन-विज्ञान है।

आत्मा सब-से-बड़ा दर्शन शास्त्र है। जीवन के महान् सिद्धान्त इसी से निकलते आये हैं। सत्य-असत्य; अच्छे-बुरे, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य की परख इसी से होती है। ऐसा कौन मनुष्य है, जो इन सब विषयों का स्वाभाविक संस्कार ले कर जन्म ग्रहण न करता हो? अमुक मनुष्य अच्छा है, उसने अच्छा काम किया है; अमुक अच्छा नहीं, अच्छा काम नहीं करता—क्या मनुष्य आपस में इन वाक्यों का प्रयोग नहीं करते? गणित या सङ्गीत कला की तरह उन के लिए मनुष्य को शिक्षा लेनी पड़ती है? जीवन की सचाइयों और बुराइयों के ज्ञान के लिए किसी भी मनुष्य को किसी स्कूल या यूनिवर्सिटी में भेजने की जरूरत नहीं। मनुष्य को स्वयं अपनी आत्मा से इनका ज्ञान मिलता रहता है। मनुष्य का आत्मा, उसका सब से बड़ा अध्यापक है। अत: जीवन की कोई ऐसी समस्या नहीं, जिसे आत्मा के द्वारा न सुलझाया जा सके। जीवन का कोई ऐसा प्रश्न नहीं, जिसका आत्मा से जवाब न मिल सके। क्षण-भंगुर जीवन से अमर-जीवन को प्राप्त करने, कुमार्ग से सन्मार्ग पर चलने और अन्धकार से प्रकाश की ओर जाने के लिए भारतीय सन्त-परम्परा भारत के सामने यही पुल तय्यार करती आई है—

अमृतस्यैषा सेतुः।

संसार-समुद्र से पार होने के लिए, सबको इस पुल पर चढ़ने का अधिकार दिया गया। भारत के मनीषी दार्शनिकों ने जाति, वर्ण, वैभव आदि के सभी बन्धनों से मुक्त रख कर, दीन-हीन पतित

मनुष्य के लिए ऊंचा उठने का रास्ता खोला था। इस सेतु पर चलकर बड़े-बड़े पापी हत्यारे, भील, शूद्रों ने भी अपने पापों का हमेशा के लिए त्याग कर मानव-समाज में ऋषि-मुनि का ऊंचा पद प्राप्त किया। शूद्र से लेकर ब्राह्मण तक—सब के सामने समानता का एक सिद्धान्त रखा गया। भगवान् महावीर के पास यदि कोई ब्राह्मण आता, क्षत्रिय आता, वैश्य या शूद्र आता तो वे सब को समानता की दृष्टि से देखते थे और सबके सामने समान रूप से कल्याण का सन्देश रखते थे—

जहा पुण्णस्य कत्थइ,
तहा तुच्छस्स कत्थइ ।।

भारत जैसे आध्यात्मिक राष्ट्र के अन्दर, ब्राह्मण आदि वर्ग की शूद्रों एवं पतितों के प्रति उत्थान की भावना न हो कर घृणा की भावना हो, तो उन के लिए एक लज्जा की बात है। ब्राह्मण आदि वर्ग अपने आध्यात्मिक जीवन से बहुत दूर भटका हुआ है। भगवान् महावीर जैसी भारत की पवित्र आत्माओं ने, अहिंसा का जो पाठ पढ़ाया था, उस का भारत ने क्या अर्थ समझा ? अहिंसा पतितों के उत्थान की एक महान् शिक्षा थी, वह स्थानकों, मन्दिरों या मठों में लेकर बैठने के लिए नहीं थी। उसका प्रयोग उस मनुष्य के लिए करना था, जो समाज में पशु की तरह रह रहा है। महापुरुषों की अहिंसा का अर्थ है—पतित मनुष्य को भी समाज की एक महान् एवं पवित्र शक्ति समझ कर, उसके साथ समान रूप से मानवोचित व्यवहार करना। जिस देश में मनुष्यों का कोई वर्ग सामाजिक, धार्मिक, मानवीय अधिकारों से वञ्चित हो, वह सारे राष्ट्र के लिए कलङ्क है। भारत के सिवा अन्य देशों में शूद्र नहीं मिलते। धन के कारण ही भारत में शूद्र जाति पैदा हुई है। जिन के पास धन नहीं था, जो दूसरों के सब तरह से दास थे, वे शूद्र कहलाये। उन दासों के प्रति भारतीय जनता की घृणा ने उन्हें इतनी पतित अवस्था में ला डाला कि, उनसे हर तरह का सम्पर्क काट डाला। पानी के लिए नगर के कुओं पर न चढ़ने देना, धर्म-उपासना के लिए किसी धार्मिक-संस्था

में भाग न लेने देना, विद्या के लिए पाठ-शालाओं में प्रवेश बन्द रखना, भारतीय समाज के ऊंचे माने जाने वाले व्यक्तियो ने हर तरह से गरीबो के अन्दर पनपने वाली मानवीय सभ्यता के तरीको पर पाबन्दियां लगा दी थी। इस से भारतीय जनता के अन्दर एक गहरा अन्धकार फैलता गया। वह यही था कि, व्यक्ति की आत्मा को न देख कर उस के देह, वर्ण, जाति, वैभव को देखने लगी। 'आत्मा' के सिद्धान्त पर भारत को यही बोध दिया गया था कि, न कोई ब्राह्मण है, न शूद्र, न कोई क्षत्रिय है न वैश्य। प्रत्येक भारतीय का स्वरूप चातुर्वर्णिक है। अर्थात् प्रत्येक भारत का निवासी ब्राह्मण भी है, क्षत्रिय भी है, वैश्य तथा शूद्र भी है। जन्म से किसी को ब्राह्मण आदि मानना, असैद्धान्तिक है। प्रकृति ने सभी मनुष्यो के शरीरो की रचना में कोई अन्तर नही रखा है। अतः किसी को जन्म से ऊंचा-नीचा मानना अधर्म है। इस अधर्म की जड आर्थिक विषमता है। शूद्रो के प्रति भारत मे जो अन्याय होता रहा है, उसका मूल कारण वे ही आर्थिक पाबन्दिया है, जिन्हे हम आप के सामने कह चुके है। आर्थिक विषमता के दूर होते ही, राष्ट्र के सारे मानव समाज में धर्म, न्याय, सभ्यता, मानवता का प्रचार हो सकता है। सारा राष्ट्र ही उन्नति के शिखर पर पहुच सकता है। इसी लक्ष्य को लेकर इंग्लैंड के एक प्रसिद्ध अर्थशास्त्री ने कहा था—

In the day-to-day affairs of man, in the discharge of public affairs, money consideration should not be exalted than human welfare. —केन्ज

अर्थात्—पैसा मनुष्य की उन्नति मे बाधक हो, तो किस काम का? पैसे से मनुष्य की उन्नति करना ही, पैसे का सदुपयोग है। मनुष्य की उन्नति से ऊपर पैसे को महत्व नही देना चाहिए। उसे मनुष्य और समाज के कामो मे लगा देना चाहिए।

ऋषि चाणक्य ने, जो भारत का महान् अर्थशास्त्री था कहा है—अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र है। ऋषि का कहना था कि अर्थ से राष्ट्र मे किसी तरह का अधर्म न फैले। अर्थ का सदुपयोग जनता के लिए होना चाहिए।

एक लोक-सभा के सदस्य से लेकर शूद्र तक के पेशे को समान दृष्टि से देखना होगा। तभी ऊंच-नीच के पाप का भूत जनता के दिमाग से दूर हो सकेगा। समाज के अन्दर जो जितना छोटा काम करता है, औरों की अपेक्षा वह उतना ही महान् है। प्रत्येक मनुष्य, समाज और राष्ट्र की मूल्यवान् सम्पत्ति है। धर्म, राष्ट्र, समाज वह है जो मनुष्य का उद्धार कर सकता हो। किसी राष्ट्र में एक भी गुलाम, नीच शूद्र है, तो वह अधूरा राष्ट्र है। इसी लिए अमेरिका के प्रेजिडेण्टों को राष्ट्र में यह घोषणा करनी पड़ी—यह देश आधा गुलाम और आधा स्वतन्त्र नही रह सकता। इङ्गलैण्ड वालों को भी राष्ट्र-हित के लिए दास-प्रथा हटानी पड़ी। भारत को अखण्ड रखने के लिए आपस में फैलने वाली घृणा और द्वेष को रोकना है। आपस के घृणा और द्वेष से शक्ति क्षीण हो जाती है। भारत दुनिया का एक प्रभावशाली राष्ट्र रहा है, जिस ने सारे राष्ट्रों में वहाँ की जनता को ज्ञान के प्रकाश में जीवन के अमूल्य सिद्धान्त दिये थे। खेद के साथ कहना पड़ रहा है कि भारतीय जनता अपनी इस परोपकार की ऊंची भावना का प्रयोग अपने देश-वासियों के साथ नही कर रही है। पारस्परिक कलह, घृणा फूट के कारण भारत की जनता की कितनी दुर्दशा हो गयी है ?

स्वतन्त्र भारत की जनता की शिकायत अपने शासक-वर्ग के प्रति हर रोज़ बढ़ती जा रही है। वह शासक-वर्ग को अच्छी दृष्टि से नही देखती। लेकिन यह दोष किस का है ? शासक-वर्ग को चुनने का अधिकार, साधारण जनता को दिया गया है। एक तरह सारे राष्ट्र का संचालन साधारण जनता से होता है। प्रजातन्त्र (Democracy) का यही अर्थ है। जनता ऐसे चरित्रहीन राष्ट्रीयताहीन व्यक्ति को चुनती ही क्यों है, जो अपने स्वार्थ के लिये समूचे राष्ट्र के हित की उपेक्षा कर सकता है ? यदि राष्ट्र-संचालन के लिए योग्य व्यक्ति जनता को नही मिल सकते, तो इन त्रुटियों के लिए राष्ट्र की साधारण जनता ही जिम्मेदार है। साधारण जनता यदि अपने नैतिक जीवन को ऊंचा उठा ले तो उससे अच्छा शासक-वर्ग तय्यार हो सकता है। जैसी राष्ट्र की जनता होगी, उसे वैसी ही सरकार मिलेगी—यह एक निश्चित राजनैतिक सिद्धान्त है। ईमानदार नौकर के लिए मालिक

का ईमानदार होना ज़रूरी है। देश के नैतिक-जीवन के सुधार के लिए बड़ी तपस्यायें करनी पड़ती है। विधान-सभाओ के अन्दर बैठ कर जनता विधान-पुस्तको के चाहे कितने ढेर लगा दे, पर नैतिकता के बिना वह उससे कोई लाभ नही उठा सकती। अत. जनता को समझना चाहिए कि, नैतिकता मनुष्य का सर्वप्रथम पथ-प्रदर्शक होने से जीवन का सब से ऊंचा विधान है, जिस के अभाव मे राष्ट्र का कोई विधान उपयोगी साबित नही हो सकता। यूनान के एक प्रसिद्ध राजनैतिक ने कुछ शब्दों में यही बात समझाई है। वह कहता है—

Until philosophers are kings, cities will never cease from ills, nor the human race." —प्लेटो

– भारतीय जनता को नैतिक आदर्शो के लिए बडी कुर्बानी देनी होगी। नैतिक स्तर को ऊंचा उठाये बिना, जनता में राष्ट्रीय भावना नही आ सकती।

देश में नैतिक-जीवन लाने के लिये बडी-बडी तपस्याये करनी पडनी है। अपने भोग-विलासों और स्वार्थो का त्याग करना पड़ता है। इस आदर्श के लिए भारत की सन्तपरम्परा हमारे सामने एक बडा प्रमाण है। भारत के सन्त व्यक्ति-व्यक्ति को जीवन का यह सन्देश देते रहे है तुम अपनी आत्मा को समझो, उसे जानो यह तुम्हारे जीवन का सबसे बडा उद्देश्य है। जीवन का निर्माण तपो-त्याग से होता है। विलासिता जीवन का पतन है। जिसने तप की अग्नि में स्वय को तपाया है, उसी का जीवन कुन्दन बन कर चमका है। आशा है—ऋषि मुनियों के इस जीवनपरक सन्देश को जनता समझने का प्रयत्न करेगी।

□□

सच्ची धर्म-दृष्टि

○ ○

'धर्म' शब्द से जगत् को जितना प्रकाश मिला है, कहीं उससे अधिक अंधकार भी। धर्म के नाम पर ग्रन्थ के ग्रन्थ रचे गये हैं। धरती पर रक्त भी धर्म के नाम पर बहा है।

परंतु 'सच्ची धर्म-दृष्टि' जहाँ मिली, वहाँ गहनतम अंधकार में भी प्रकाश की किरणें फूटी हैं। जीवन धर्म के प्रकाश से भरा कि बस अमृत से परिपूर्ण हुआ। धर्म का विवादास्पद पक्ष छोड़िए। सच्ची धर्म-दृष्टि पाएं और अमृत से स्पर्शित हों।

—सं.

○ ○

'धर्म' आत्मा की राग-द्वेष-हीन परिणति है, जिसका लक्ष्य है मानवीय परिष्कार। जिस धर्म में समस्त जीवों के मंगल की कामना हो, युग-कल्याण का आह्वान हो, सत्य-अहिंसा-अस्तेय ब्रह्मचर्य-अपरिग्रह की प्रतिष्ठा हो, वही सच्चा धर्म है। धर्म अतीत से आज तक युग के लिए वरदान सिद्ध हुआ है, भले ही उसका प्रभाव देर से हुआ हो पर, उसमें इतनी क्षमता होती है, कि वह समस्त बुराइयों को दूर कर, अच्छाइयों की ओर उन्मुख करता है। मानव मन धर्म के सम्बल से ही शांति की अनुभूति करता है। जहाँ धर्म है, वहां मंगल है, जहाँ अधर्म है वहां अमंगल है, यही सत्य है।

धर्म की धुरा पर ही संसार टिका हुआ है। धर्म का ह्रास होने से, अधर्म का अन्धकार छा जाता है, जिसमें सर्वनाश ही एक विकल्प रह जाता है। जन्म-मरण के ज्वार में धर्म ही वह द्वीप जहां मानव को शरण मिलती है। भगवान् महावीर ने कहा है--

जरामरणवेगेणं बुज्झमाणाण पाणिणं।

धम्मो दीवो पइट्ठा य गइसरणमुत्तमं॥

अर्थात् जन्म और मरण के प्रवाह में बहते हुए प्राणी के लिए धर्म ही एकमात्र द्वीप, प्रतिष्ठा, गति, और उत्तम शरण है। अतः धर्म की गरिमा को समझ कर ही मानव अपने जीवन में सुख-शांति से रह सकता है।

सच्ची धर्मदृष्टि समदर्शी, सर्वोदयी, और सर्वमंगलकारी होती है। द्वैत-अद्वैत, व्यष्टि-समष्टि, जीव-जगत् सब-कुछ सच्ची धर्म दृष्टि में मंगलमयी महत्ता से ओत-प्रोत होते है, इसी परिप्रेक्ष्य में—

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं अहिंसा संजमो तवो।

धर्म की महत्ता मंगल में ही है, किन्तु जहां अमंगल है, वहाँ धर्म हो ही नहीं सकता। 'धर्म' का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ भी है। "धारणात् धर्म." अर्थात् जो धारण किया जाए वही धर्म है। धारण करने योग्य पांच महाव्रत हैं। इनसे जीवन का सर्वांगीण विकास होता है। जहाँ अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह की महत्ता है वही धर्म की स्थापना हो सकती है। अन्यथा धर्म के नाम पर अधर्म का ही बोलबाला रहता है। धार्मिक भावना से अभिभूत कुछ लोग हिंसा को प्राश्रय देते है। आज ही नही बरन भगवान् महावीर के युग में भी ऐसी गंभीर समस्या थी, किन्तु उस हिंसात्मक धार्मिक प्रथा का उन्होने कड़ा विरोध किया। अंततः हिंसा का शमन हुआ, किंतु कालान्तरं में वह बन्द प्रथा पुनः जीवित हो उठी। आज भी इस प्रकार की प्रवृत्ति बहुत से क्षेत्रों में है। मनौती के

कारण पशुबलि दी जाती है। इस प्रकार के अज्ञान को धर्म की श्रेणी में रखना न्यायसगत नही है।

धर्म के नाम पर साम्प्रदायिकता को भी प्राश्रय देना अनुचित है, किन्तु आज हम प्राय. देखते है कि धर्म के ठेकेदार अपना स्वार्थ पूरा करने के लिए, धर्म की आड में अधर्म पनपाते है। साम्प्रदायिकता का विस्फोट भी जब धर्म की आड़ में होता है, तब वह वडा भयानक होता है। कुछ धार्मिक नेता, साम्प्रदायिक भावना फैलाकर दो धर्मावलम्बियों को लडा कर सामाजिक विखंडन का जो नाटक प्रस्तुत करते है, वह मानवता के लिए कलंक है।

हिन्दू-मुसलमान, सिख, ईसाई, जन, बौद्ध और दुनिया के सभी धर्मो मे सत्कार्य, समाज सेवा, लोकमगल आदि का उपदेश दिया गया है। कोई भी धर्म बुरा कार्य करने को नही कहता, फिर धार्मिक सघर्ष क्यों होते है ? साम्प्रदायिकता का विष कैसे फैलता है ? आदि गभीर प्रश्न हमारे सन्मुख चुनौती है। ससार के सभी मनुष्य एक समान है। फिर भी टकराव होता है और वह भी धार्मिक व साम्प्रदायिक भावना को लेकर। आखिर ऐसा क्यो होता है ?

धार्मिक भावनाए जो स्वार्थों से प्रेरित होकर दूषित हो जाती है, वे साम्प्रदायिकता की जन्मदात्री होती है। साम्प्रदायिकता का पनपना समाज के लिए अभिशाप स्वरूप है अत: इस घातक रोग को, महामारी को, किसी भी स्थिति मे फैलने नही देना चाहिए, अन्यथा सारा समाज नष्ट-भ्रष्ट हो जायेगा। आज मनुष्य जब विश्वस्तर पर विकास की ओर तीव्र गति से बढ रहा है, संसार में प्रजातत्र प्रतिपल पल्लवित पुष्पित हो रहा है, ऐसी परिस्थिति में साम्प्रदायिकता का विष इसका विनाश न कर दे, इस ओर विशेष सतर्कता रखनी है। राष्ट्र में जो साम्प्रदायिक दगे, धर्म के नाम पर हो रहे है, क्या इन इनसे धार्मिक नेता व प्रबुद्ध-वर्गपरिचित नही है ? परिचित होते हुए भी धर्मान्ध स्वार्थी निजी लाभ के लिए अबोध जनता को ठगते है, धोखा देते है। राष्ट्र को

कमजोर बनाते हैं, और विकास पथ को अवरुद्ध करते हैं ऐसी धर्म व्यवस्था, व धर्म दृष्टि निन्दनीय है, जहां जन असंतोष आग उगलता हो. जिसकी ज्वाला में मानवता जल रही हो। ऐसी स्थिति में सही धार्मिक दृष्टि व धार्मिक धारणा जनमंगल के परिप्रेक्ष्य में परखने योग्य हैं।

विश्वव्यापी धर्म का महात्म्य भी इसी में है कि उससे कितने लोगों का कल्याण हो रहा है। प्रायः धार्मिक भावनाए ईश्वरीय विवाद को लेकर भी तूल पकड़ लेती है, किन्तु यह नही समझती कि ईश्वर, अल्ला राम, कृष्ण, ईसा, बुद्ध, महावीर, मुहम्मद पैगम्बर सभी का आदर्श, उपदेश था मानवता का सेवा करना, फिर भी लोग अपना-अपना राग अलापे तो इसमें दोष किसका है ?

धर्म-दृष्टि में साम्प्रदायिकता का जहर घोलना उचित नही है। इस आग में समाज झुलस कर दुर्बल हो जाता है।

प्रसिद्ध दार्शनिक 'कान्ट' का कहना है कि अपने समग्त कर्तव्यों को ईश्वरीय आदेश समझना ही धर्म है जबकि इसी क्रम में दूसरे विद्वान् दार्शनिक हेगेल का मत है कि 'धर्म' सीमित मस्तिष्क के भीतर रहने वाले अपने असीम स्वभाव का ज्ञान है। मक्टागार्ट की धारणा इस विषय में यह है कि 'धर्म' चित्त का वह भाव है जिसके द्वारा हम विश्व के साथ एक प्रकार के मेल का अनुभव करते हैं। अतः धर्म तो जगत् का रक्षक है।

भारत के विद्वानों ने कहा है -

धर्मो वसेन्मनसि यावदलं स तावद्,
हन्ता न हन्तुरपि पश्य गतेऽथ तस्मिन्।
दृष्टा परस्परं हन्ति जनकात्मजानाम्,
रक्षा ततोऽस्य जगतः खलु धर्म एव ॥

धार्मिक आस्था पर किसी भी प्रकार के अनिष्ट की आंच नहीं आ सकती। अतः प्रत्येक अंतस में धार्मिक भावना का उदय होना सतत

अपेक्षित है। जहा धर्म जगत का रक्षक है, वही उसे भक्षक बनाने का उत्तरदायित्व उन लोगो पर है जो कलुषित भावनाओं से ग्रमित है।

छूत-अछूत, ऊंच-नीच, जाति-पाति का भेदभाव सच्ची धार्मिक दृष्टि में वर्जित है। सच्ची धार्मिक दृष्टि तो समदर्शी होती है जिससे चतुर्विध प्राणी-वर्ग लाभन्वित होता है। सच्ची धार्मिक भावना की परिणति, विशुद्ध प्राणी प्रेम की पराकाष्ठा मे होनी है, जिसमे सर्व-मगल का शखनाद है। यही भाव अंग्रेजी कवि टेनिसन की इस पक्ति में छलकता है—

Ring---the love all truth bright.
Ring in the common love all God.

—Tennyson

□□



मधुर-मृत्यु

○ ○

मृत्यु मिट जाने का नाम नही है। मृत्यु का अर्थ है आह्लाद् भाव, उत्साह और उमगित होकर शरीर के रोम-रोम से खुशी का उठना ही मृत्यु का मन-प्राण से उत्सव मनाना है। मन-प्राण को एकत्र कर जो मृत्यु का अहोभाग्य मे भर स्वागत करता है वही मृत्यु से माधुर्य प्राप्त कर सकता है।

—सं.

○ ○

मृत्यु और मधुर! कैसा विरोधाभास है? यह कैसे सभव हो सकता है? इसी असमजस की तुला पर यदि इस तथ्य की यथार्थता का मूल्याकन किया जाए तो मृत्यु की मधुरता की महत्ता स्वत. प्रकट हो जायेगी।

प्रत्येक प्राणी मृत्यु भयभीत होता है। सभी अपने-अपने प्राण बचाने को प्राथमिकता देते है। प्राण सभी को प्रिय है। भगवान् महावीर ने कहा था—

सव्वे पाणा पियाउया, सुहसाया दुक्खपडिकूला अप्पियवहा पियजीविणो जीविउकामा सव्वेसि जीवियं पिय ॥

सभी प्राणियो को जीवन प्रिय है। सभी सुख चाहते है। दु.ख सभी को अप्रिय है। बध कोई नही चाहता। सभी जीव जीवन को

चाहते है । न चाहने पर भी मृत्यु के ग्रास से भला कौन बचा है ? मृत्यु का भय सभी को होता है। इस विषम परिस्थिति में मृत्यु को मधुर कहना कितना असगत है लेकिन मृत्यु को परख ज्ञान की कसौटी पर करने से उसकी यथार्थता का ज्ञान हो जाता है। तभी तो ज्ञान की गरिमा में कहा गया है ।

नहि ज्ञानेन सदृश्यं पवित्रमिह विद्यते ।

जिनको ज्ञान प्राप्त हो जाता है वे मृत्यु से भयभीत नही होते । कृष्ण ने गीता मे अर्जुन को यही तो उपदेश दिया था। इसी सन्दर्भ में राजा परीक्षित का प्रसग महत्वपूर्ण है ।

एक बार राजा परीक्षित को मृत्यु का श्राप मिला । वे भयभीत हो गये किन्तु इस भय से मुक्ति कैसे मिले, यह प्रश्न उनके सामने जटिल बन गया । अतत. उन्हे गुरू की तलाश करनी पड़ी। उन्होने शुक्राचार्य को बुलाया। गुरू शुक्राचार्य ने सात दिनो तक लगातार राजा परीक्षित को जीवन की क्षणभगुरता का ज्ञान कराया। राजा परीक्षित की आत्मा का मल उच्च चरित्रो के श्रवण से धुलने लगा। अतत. उन्हे भय से मुक्ति मिली । वे मृत्यु की महता को समझ गये कि जब ससार ही मृतप्राय है, प्रत्येक वस्तु का अन्त Universal Truth है, तब भी मृत्यु से क्या डरना ?

मृत्यु की महत्ता इसमे भी है कि उस परिस्थिति से प्राणी के अतीत का या वर्तमान जीवन का मूल्याकन किया जाता है। जीवन भर जिस व्यक्ति ने जो अच्छे या बुरे कार्य किये है उनकी प्रशसा या निन्दा ससार करता हे । यह सब कब होता है? जब अर्थी पर सवार हो कर व्यक्ति श्मशान की ओर जाता है। अत गुण और अवगुण का मूल्यांकन मृत्यु के उपरात अधिक प्रभावशील होता है ।

सासारिक परपरा मे यह कटु सत्य है कि जीवित रहते हुए जो व्यक्ति उपेक्षित रहा है, वही देहान्त के बाद अपने सुकर्म या कुकर्म की तुला पर तौला जाता हुआ प्रशसा या निन्दा का पात्र बनता है । अतः स्पष्ट है कि मृत्यु ही वह क्षण है जो व्यक्तित्व की

परख का आह्वान करता है फिर उस मृत्यु की निन्दा क्यों करे। उससे भयभीत क्यों हों।

मृत्यु अवश्यम्भावी है। जो भी जीव ससार में पैदा होगा उसकी मृत्यु निश्चित है। मृत्यु की दृष्टि में कोई भेद-भाव नही होता। सांसारिक प्राणी अपनी सकुचित प्रवृत्ति के कारण परस्पर भेदभाव रखते रहे कि अमुक इस जाति का है, अमुक निर्धन है, अमुक सम्पन्न है आदि। किन्तु मृत्यु की दृष्टि मे राजा-प्रजा, धनी-निर्धन, छोटा-बड़ा, जाति-पाति आदि का कोई भेद नही होता। मृत्यु सभी को आत्मसात् करती है। यह सत्य है, प्रत्यक्ष है, निर्विवाद है, तब फिर मृत्यु से डरने का प्रश्न ही क्यो उठता है।

ससार में मनुष्य इस तरह भटका हुआ है कि उसे यथार्थता अनुभूति नही हो पाती। वह मरु-मरीचिका के भ्रम में भौतिक सुखो को सर्वोपरि मानकर विलासिता में जीता है। उसी मे तन्मय होकर आनद की अनुभूति करता है। किन्तु मनुष्य के इस स्वप्न का भग मृत्यु ही करती है।

वैभव-विलास में डूबे हुए लोग उसी को सब कुछ मानकर क्षणिक सुख मे जीते हैं। उसका परिणाम कितना दुखद होता है, यह वे समझ नही पाते। मनुष्य की तृप्ति सांसारिक सुखो से कभी नही हो सकती। विश्वविजयी सिकदर असीम धन-दौलत प्राप्त कर भी जब सतुष्ट नहीं हुआ, तो उसने ससार को सावधान रहने का सदेश देने की कामना से अपने सम्बन्धियो को समझाया कि मेरे मरने के बाद अर्थी पर मेरे दोनो हाथ बाहर निकाल दें, ताकि लोग यह जान सकें विश्वविजयी सिकन्दर आज दुनिया से खाली हाथ जा रहा है।

ससार की महान् विभूतिया, ऋषि-मुनि, भी इस ससार से चले गये, लेकिन वे पूर्ण सन्तुष्ट थे। उन्हे मृत्यु का कोई भय नही था। ज्ञान से उन्होने इस सत्य को जान लिया था। उन के लिये मृत्यु विष नही अमृत बन गयी थी। मृत्यु व्यक्ति को मिटाती नही है अपितु उसे अमर बनाती है। जो व्यक्ति को अमरत्व प्रदान करे उससे अधिक मधुर और क्या होगा? □□

स्तोत्र : ऋत की सरिता

○ ○

आप दग्ध है ! पीड़ाओ ने आपको बीधा हुआ है। आप खोज मे भटक रहे है। कही कूल-किनारा दृष्टिगत नही हो रहा है ? तो आइये ! आराध्य देव के चरणो मे खोजे मानसिक पीडाओ का अंत ! पीडाओ से परित्राण पाने का एक ही माध्यम है—आराध्य का स्वरूप प्रतिबिम्बित कर अपने को समर्पित कर देना। समर्पण भाव की उपलब्धि आप कर पायेगे ? अवश्य कर पायेगे 'स्तोत्र : ऋत की सरिता' पढकर।

—सं०

○ ○

स्तुत्य पुरुष के प्रशमात्मक पद्यवाक्य स्तुति का रूप धारण कर लेते है। स्तोत्र अथवा स्तुति संस्तुत पुरुष की आत्मा के दिव्य प्रभाव की निर्मल अनन्त धारा है, जो निर्झर बनकर ससृति के कूलों पर प्रवाहित होती रहा करती है। इसी निर्झर के प्रशान्त कूलों पर आ कर मनुष्य अनादिकालीन अज्ञान-जन्य सन्ताप ज्वाला बुझाता हुआ आत्म-दर्शन की प्रशान्त अवस्था तक पहुच जाता है। सस्तुत की तरह स्तुतिकर्ता भी निर्वाण का ऋत प्राप्त कर लेता है।

स्तोत्र स्तुत्य पुरुष की आत्मोपलब्धियो का प्रतिबिम्ब है। स्तोत्र के माध्यम से स्तुतिकर्ता स्तुत्य का सान्निध्य प्राप्त करता है। उसे अत्यन्त दुःखान्तक स्थिति तक पहुच जाने का मार्ग मिल जाता है।

जब मनुष्य अपने से बाहर संसार में चला जाता है, उसे रास्ता नहीं मिलता, वह भटक जाता है। मनुष्य बाहर से भीतर चला आए तो रास्ता मिल जाता है। स्तोत्र मनुष्य के लिए इसी ऋत का संकेत करते हैं—

Let me sit by thy side for a moment only.
–Tagore

—क्षण भर के लिए तुम्हारे सन्निकट बैठने का इच्छुक हूं। इस के लिए मुझे तुम्हारी अनुमति चाहिए।

महारण्य में परिभ्रमण करते हुए को किसी से मार्ग-निर्देश मिल जाए, तो वह उसे एक उपलब्धि मानता है। जिससे मार्ग-निर्देश मिला उस के प्रति कृतज्ञ भी हो जाता है। कृतज्ञता की प्रतीति में मार्ग-निर्देशक का गुणानुवाद भी करने लग जाता है। स्तोत्र इसी उपकार की प्रतिक्रिया है। जब अन्धकार का आवरण हटाता हुआ सूर्य आकाश मार्ग से अपनी किरणें कमलों पर प्रसारित करता है, तब वे अपने सुप्त दलों को विकसित करते हुए वृतहरि सूर्य का उपकार की भाषा में गुणानुवाद करते प्रतीत होते हैं। ऐसा क्यों है? यह प्रकृति है—स्वभाव है। स्तोत्र की भाषा भी उपकार की विशेष प्रतीति है—प्रकृति की अभिव्यक्ति है।

प्रकृति से स्पन्दित उपकृत मनुष्य के मन में एक स्फोट आता है, जिससे वह स्तुत्य को अपना आराध्य बना लेता है और अपने चुने हुए श्रद्धा के शब्द-पुष्पों से उसके गुणानुवाद करता हुआ उन्हें अर्चना में अर्पित करता है। अतः स्तुत्य की प्रतिदिन की अर्चना अराधक की प्रतिदिन की प्रक्रिया अथवा आचरण बन जाती है।

जो ऋत अर्चना के द्वारा स्तुतिकर्ता के आचरण में अवतरित होता है, उस का स्फोट काव्य की भाषा में किया जाता है। इसी लिए भक्तामर आदि तीर्थंकरों के स्तोत्रों के लिए काव्य-भाषा का प्रयोग किया गया है। काव्य-भाषा कवि की विशिष्ट अभिव्यक्ति है। इसी के द्वारा वह अपनी अनुभूतियों का मनोभावों का ऐसा सम्प्रेषण करता है, कि वे ही भाव दूसरों में भी समुद्भूत हो जाते हैं।

प्रज्ञा-
पुरुषोत्तम
मुनि
रामकृष्ण

सामान्य व्यक्ति भाषा को जिस रूप में पाता है, उसी का प्रयोग करता है; किन्तु कवि मनीषा के द्वारा, साधना के द्वारा ऐसी भाषा की कल्पना करता है, जो विशिष्ट होती है, भावोत्पादक और प्रभावोत्पादक होतो है और जिस के द्वारा रस विशेष की सृष्टि होती है। अर्थ को रमणीय बनाने की शक्ति काव्य-भाषा मे ही होती है। इसी हेतु से ऋत-मन्दाकिनी को मनुष्य तक सम्प्रेषित करने के लिए स्तोत्र-निर्माताओं ने काव्य-भाषा के औचित्य को स्वीकृत किया। ऋत का काव्य-भाषा मे ही स्फोट होता है, इसके लिए महान् कवि मिल्टन की काव्य-भाषा-विषयक प्रशस्ति प्रस्तुत की जाती है—

—Poetry comes down to justify the ways of God to man on earth.

—काव्य आकाश की वह सरिता है, जो भूतल पर उतर कर ऋत के औचित्य को भूतार्थ करती है।

भक्तामर, कल्याणमन्दिर आदि स्तोत्र श्रमण-परम्परा के श्रद्धा-केन्द्र है। ये मनुष्य को कहाँ ले जाते है? शोध का प्रश्न है। स्तोत्र रचयिताओं का देवता ऋत है। वही उनका स्तुत्य है। वह ऋत दु:खातीत है, वीतराग है। स्तोत्रों मे जिस स्वरूप की व्याख्या हुई है, वे वीतराग थे, दु:खहीन थे और वे थे जो उत्तीर्ण हो गए थे। ऐसे ऋत और स्वरूप का नामकरण तीर्थंकर शब्द से हुआ। तीर्थंकरो की स्तुति-व्याज से स्तोत्रो मे ऋत के स्वरूप की व्याख्या हुई है। तीर्थंकर स्वय बोधि-प्राप्त थे। इनका प्रकाश अपना था, दूसरो का नही था। अपनी यात्रा के लिए वे स्वयं दीपक बने। उस आलोक मे जिस ऋत के दर्शन उन्हें हुए, उस का स्वरूप था सत्य, शिव और सौन्दर्य। ऋत के अन्तिम बिन्दु पर इन का सत्य अनन्त हो गया। शिवत्व अनन्त हो गया। सौन्दर्य अनन्त हो गया। स्तोत्र इन्हीं धाराओ का पवित्र सगम है। यही ऋत आत्मा है।

आत्मा स्तोत्रों का प्रतिपाद्य है। स्तोत्र आत्म-विषयक पूरा दर्शन है। अन्धकार में भटकते हुए मनुष्य को दिशाबोध मिले, इसी

लिए ऋत का प्रतिपादन करने वाले स्तोत्रों की रचना हुई। इन से मनुष्य को दर्शन की दिव्य-दृष्टि मिलती है। अनृप्ति के दुःख को दूर करने के लिए दर्शन का समाधान मिलता है। विश्व में अनन्त सम्पदा होने पर भी मनुष्य अनृप्ति के दुःख का अनुभव कर रहा है। जिस ज्वाला से वह दग्ध हो रहा है, उसी से त्राण चाहता है। यह आत्मविस्मृति है—अज्ञान है। जब तक यह रहेगी, मनुष्य जलता रहेगा। इसी अविद्या के अन्धकार में वह अनन्त इच्छाओं के दुःख का अन्त नही कर पाया। अञ्जलि-गत जल बिन्दु-धारा बन कर निकल जाता है। हाथ खाली हो जाते हैं। अर्जित विशाल सम्पदा भी देखते-देखते अदृश्य हो जाती है। मनुष्य के हाथ खाली हो जाते है। मनुष्य के हाथ जो संसार आया, चला गया। जो आज है, कल नहीं है—वह संसार है। अतः अनन्त इच्छाओं का मार्ग छोड़ देने के लिए दिशा परिवर्तन के लिए, मनुष्य को ऋत का ज्ञान कराना आवश्यक हो गया। उपनिषदें कहती है—

—ऋतं वाव दीक्षा।

—ऋत से मनुष्य दीक्षित होता है।

ऋत—आत्म प्रभुसत्ता है। जब सत्ता बाहर ब्रह्माण्ड में आसक्त हो जाती है, तो इस दीपक का प्रकाश बुझ जाता है। जब बाहर से हट कर अपनी ओर चली आए, तब यह दीपक जल उठता है। अज्ञान, जो अन्धकार का प्रतीक है, उसे मिटाने के लिए मनुष्य का आत्माभिमुख होना ज़रूरी है। यही आत्मानुभूति है। दीपक के जलते ही अन्धकार हट जाता है। आत्मानुभूति का दीपक जलते ही आत्म-विस्मृति-जन्य अन्धकार मिट जाता है। ज्वालाएं शान्त हो जाती है।

वेदान्त-सम्मत भागवत-धारा के आगमों में ब्रह्म-साक्षात्कार के उपायों की चर्चा हुई है। वहां भी 'सोऽहमस्मि' इत्याकार अखण्डाकार विद्या-वृत्ति से अविद्या का आवरण हट जाने से आत्मा निरावृत और स्वय-प्रकाश हो जाती है—इस तरह विद्या और अविद्या की चर्चा की गई है। यह प्रत्यावृत्ति-रूप उपासना है। अर्थात् मुमुक्षु स्व-प्रकाश-

रूप विद्या की ओर लौट आता है। स्तोत्रों में इसी प्रत्यावृत्ति-रूप उपासना का दिशा-बोध मिलता है। स्तुति-कर्त्ता को आराधना में जो ऋत स्तोत्र में व्यक्त हुआ, वह उसे अपने ऋत हेतु उपमान बना लेता है। जैसे, किसी आरण्यक पुरुष से गौ उपमान के द्वारा किसी को 'गौरिव गवय' वाक्य से 'गो-सदृश गवय पशु'- जंगल की गौ का बोध हो जाता है। आराधक को भी अपने ऋत-आत्मा का बोध हो जाता है। मनुष्य ऋत से दीक्षित हो जाता है। उस की प्रवृत्ति बदल जाती है। उसका पौरुष बदल जाता है। ऋत की दीक्षा से मनुष्य ऋषि बना, योगी बना। योगी ऋतानुगामी हो जाता है। उसके लिए संसार अनृत है। योगी उसे छोड़ कर वनों में चला जाता है। ये लोग वन के एकान्त-शान्त आश्रम में ऋत के अनुसन्धान में लग गये। ऋत पर जो स्वर्ण-पात्र आवृत था, उसे समाधि के सत्पौरुष से उतार फेंका और वे सत्य, शिव, सौन्दर्य के उसी पवित्र संगम पर आ कर खड़े हो गये, जिस का दिशा-संकेत स्तोत्रों से मिलता है।

धर्म-स्थान और सह-अस्तित्व

प्रज्ञा-पुरुषोत्तम मुनि रामकृष्ण

○ ○

आंखें बंद कर लो ! आंखे बंद कर लीं। बोलो अब क्या अनुभव कर रहे हो ? तुम या तो सो चुके हो या मर चुके हो ? अगर ऐसा नहीं है तो ध्यानस्थ हो चुके हो ! इसके अतिरिक्त किसी अवस्था में जी रहे हो तो तुम्हें स्थान की निराकुलता और सहअस्तित्व की आवश्यकता है। लेख की इन विचार पंक्तियों को पढ़िये और सोचिए कि सह-अस्तित्व का जीवन मे कितना महत्व है ? क्या, सहअस्तित्व के अभाव में उक्त तीन अवस्थाओं के अलावा कोई अवस्था कल्पना में आती है ?

—सं०

○ ○

मनुष्य के सामने जीवन एक सबसे बड़ा प्रश्न रहा है। उसकी प्रत्येक प्रवृत्ति अथवा व्यवहार में जिजीविषा मूलभूत हेतु है। इसके लिये मनुष्य को अपने एकत्व को अनेकत्व में बदलना पड़ा–अपने अस्तित्व के लिए पर-सापेक्ष सहयोग की आवश्यकता का अनुभव उसे हुआ। इसी से जीवन की आवश्यकताओं के लिए भवन, कृषि एवं अन्य विविध कलाकौशल का निर्माण हुआ। इसी लिए एकाकी मानव को स्व-अस्तित्व के लिए किसी दूसरे से सम्पर्क स्थापित करना अनिवार्य हो गया। दुनिया के धर्म-ग्रन्थ इस सत्य को प्रस्तुत करते हुए हमें बताते है, कि कुटुम्ब, परिवार, समाज जैसी पवित्र-संस्थायें इसी स्व-अस्तित्व के सुपरिणाम हैं, जहां व्यक्ति या मनुष्य ने जिजीविषा हेतु सहअस्तित्व के लिए स्वीकृत किया।

इन पवित्र संस्थाओं को स्वस्थ और स्वच्छ रखने के लिए तीर्थंकरों ने जिजीविषा के आधार पर 'जीओ और जीने दो' का सन्देश सारी मानवजाति को दिया।

मानव-सभ्यता के प्रारम्भ में सामूहिक प्रवृत्ति मे जिजीविषा का विश्लेषण और अन्वेषण शुरू हुआ। भारत के प्राचीन साहित्य में कुछ ऐसे वाक्य मिलते है, जो निर्धारित करते है, कि एकाकी जीवन के मूल्य पशुत्व से अधिक उन्नत नही हो सकते, अत. मनुष्य के लिए एकाकी जीवन अरुचिकर हो गया। वह अपने जीवन को समृद्ध करने के लिए स्वय का सामूहिक चेतना मे विस्तार करने लगा—

एकोऽहं बहुः स्याम्।

—मैं एक से अनेक होकर रहूं।

ऐसी सामाजिक जीवन की व्याख्या व्यक्तिगत चेतना के विस्तार में की गई है। इन शब्दो में यह निर्देश मिलता है, कि असगठित मानव ने यह सोचना प्रारम्भ किया, कि दूसरे के सहयोग के विना जीवन का रथ आगे नही बढ सकता। इसी जीवन-दर्शन को प्रतिपादित करते हुए, भारत के महान् कवि कालिदास ने अपनी साक्षी देते हुए कहा है—

जनानुराग-प्रभवा हि सम्पदः।

—परम्परानुराग से मनुष्य-जीवन समृद्ध होता है।

परस्परानुराग अथवा सामूहिक चेतना की अभिव्यक्ति से ससार को महान् लाभ हुआ। जिस धर्म की मनुष्य और समाज को सबसे बडी आवश्यकता थी, उसके नायक तीर्थंकर, अवतार और पैगाम्बर सारी दुनिया को मिलते रहे, जिनके धर्म का सन्देश सामाजिक पापों और बुराइयो का विरोध और समाज मे सच्चे चरित्रशील इन्सानों को तय्यार करने के लिये था। व्यक्ति और समाज के सम्बन्ध क्या

हों ? इन दोनों के पारस्परिक उद्देश्य क्या हों ? इस तरह के सभी प्रश्नों का स्वच्छ विलेषण के साथ उत्तर देने वाला आधार ही धर्म है। तीर्थंकरों ने अहिंसा को सबसे बड़ा आधार माना था। उसके जो अर्थ अभी तक उपलब्ध हुए हैं, उनमें जिजीविषा पहला अर्थ है, जिसे जीने की इच्छा कहते हैं इसलिये अहिंसा जीवन की वह मूल्यवान् उपलब्धि है, जिसमें व्यक्ति और समाज-दोनों को एक-दूसरे की जीवन-बाधाओं को हटाते हुए पारस्परिक सुख-समृद्धि के लिये प्रयत्नशील होने का कर्तव्य सुनिश्चित है।

धर्म-स्थान सामाजिक जीवन के प्रतीक या स्मारक हैं। इनका निर्माण सामाजिक अभ्युन्नति के लिये होता है। ऐसे सामाजिक भवन जहां खड़े किये जाते हों, वहां की जनता का यह कर्तव्य हो जाता है, कि सब ग्राम-नगर वाले अपने ग्राम-धर्म, नगर-धर्म को अपनायें। उक्त धर्म से व्यक्ति को यह प्रेरणा लेनी होगी, कि हम सभी ग्रामीण या नागरिकजनों को अपना बन्धु मानेंगे और उन के दुःखों को उनकी जीवन-बाधाओं को दूर कर उनकी समृद्धि के लिये प्रयत्नशील रहेंगे।

हिंसा, झूठ, चोरी, मादक वस्तुओं का सेवन, भ्रष्टाचार आदि दुर्व्यसनों की प्रवृत्ति का भी अपने ग्राम या नगर में विरोध करते रहेंगे, जिससे हम उन्हें आदर्श व्यवस्था दे सकेंगे।

धर्म-स्थान बनाने वाली जनता को सोच लेना चाहिये, कि ये पवित्र स्थान सामाजिक अभ्युदय के चिन्तन और मनन के लिये हैं। ये समाज में वैर-विरोध को बढ़ाने और कलह उत्पन्न करने के लिये नहीं हैं। धर्म-स्थानों की उपासना-विधि में और जनता के साथ व्यावहारिक जीवन में विरोध नहीं होना चाहिये। धर्म-स्थान के निर्माण-हेतु जनता से जो धन एकत्रित किया जाता है, उसका लाभ इसी रूप में नहीं उठाया गया, तो यह विश्वासघात का एक महान् पाप होगा, जिसका निराकरण दीर्घ-कालीन तपस्या से भी नहीं हो सकेगा।

समाज में प्रधान, मन्त्री आदि के पद कलह करने के लिये नहीं होते। वे सामाजिक अभ्युदय और अपनी मानवता को उन्नत करने के लिये होते है। अग्रणी लोग धर्म-स्थानों को अपनी पैतृक सम्पत्ति समझने की कभी भूल न करें। वे पवित्र स्थानों को और स्वयं को समाज-सम्पत्ति समझकर ग्राम-धर्म या नगर-धर्म को बहुमान देते हुए चलेंगे, तो धर्म-स्थान बनाने का जो उद्देश्य है, सफल हो सकता है और वहां की जनता या समाज को सम्मान की दृष्टि से देखा जाने का सौभाग्य प्राप्त हो सकता है।

□□

भारत का लोकतंत्र : एक अनुचिन्तन

○ ○

लोकतंत्र जैसे विषय पर गुरुदेव ने कितना सूक्ष्म अनुशीलन प्रस्तुत किया है यही अपने आप में कम महत्वपूर्ण नही है। लोकतंत्र की जडे कहा से पोषण प्राप्त करती रही है ? कहना होगा महावीर व बुद्ध एवं उनमें अनत आस्थावान् राजा श्रेणिक व चन्द्रगुप्त को नही बिसारा जा सकता । वह स्वस्थ लोकतत्र आज के सदर्भ में देखे तो किस प्रकार स्वार्थी तत्वों द्वारा उपभुक्त हो गया है ? एक राष्ट्र चिंतन मुनि के विचारो को पढकर देखे ।

—सं०

○ ○

भारत में जनतंत्र के निर्माण हेतु भारतीय जनता ने बहुत बड़ा त्याग किया है। उसके लिए भारत ने बहुत बड़ी तपस्या की है । अत: भारत के जनतंत्र को भारत की जनता के श्रद्धामय बलिदानों का स्मारक मानने में सदेह नही हो सकता। दासता की जगह जनतंत्र के रूप में स्वतंत्रता लाने के लिए भारत के लोगों ने गोरे लोगों से अहिसा के मार्ग पर चलते हुए साहस, नैतिकता एवं सत्य के आधार पर ऐतिहासिक संघर्ष किया है। इस सघर्ष में जो बलिदान अपेक्षित हुआ, उस की आहुति दी गयी। जीवन धन, कुटम्ब-परिवार सब कुछ जनतंत्र की वेदिका पर फूलों की तरह चढ़ा दिया गया। भारत का ही नहीं, विश्व का इतिहास भी इस ऐतिहासिक घटना के बलिदानों को अपने श्रद्धांजलि

समर्पित कर रहा है। भारत को जनतंत्र की भितिका पर जिन शहीदों के नाम अंकित हैं, उन सत्याग्रहियों के तपःदीप्त बलिदानों का प्रतिदिन श्रद्धा से स्मरण करना भारत के जनतंत्रवादी जनगण का नैतिक कर्तव्य है। मानवीय मूल्यों पर जिन तपस्वियों ने प्रजातंत्र या लोकतंत्र की भारत में प्रतिष्ठा की, उस से भारत की जनता को यही प्रेरणा लेते रहना है कि व्यक्तिगत स्वार्थ-भावनाओं से उन्मुक्त होकर राष्ट्रीयता के सामूहित हित-चिंतन को प्राश्रय दें। जब तक व्यक्ति लोकतंत्र की सुखद-शीतल छाया में जीवन व्यतीत करता है। तब तक उसके लिए ऐसी तपः साधना अनिवार्य हो जाती है। धरती में बीज बो देने के पश्चात् उसे विकसित करने के लिए जल-सिंचन आदि प्रयत्नों की निरंतर आवश्यकता रहती है। भारत की जनता ने जिस लोकतंत्र के बीज का वपन किया है, उसे विकसित करने के लिए भी जनता का तप-त्याग निरंतर अपेक्षित है, कोई भी सदुद्देश्य तप के बिना प्राप्त नही होता। लोकतंत्र स्वतंत्र देश का महान् उद्देश्य है। बिना स्वच्छ लोकतंत्र के स्वातंत्र्य का मूल्य नहीं होता। तदर्थ देश की जनता को तपोमय स्वार्थविहीन जीवन की परंपरा जीवित रखनी पड़ती है।

लोकसभा लोकतंत्र की पवित्र संस्था है। लोकतंत्र को स्वच्छ-स्वस्थ रखने का दायित्व लोकसभा पर है। भारत में लोकतंत्र को स्थापित हुए कितना समय गुजर गया। लेकिन इतने दीर्घकाल की अवधि में भी जनता अपने लोकतंत्रीय अधिकारों से अपरिचित रही है। उसे पता नहीं कि लोकसभा के साथ संबद्ध व्यक्ति और उसके मत का क्या अर्थ है और उसका कितना महत्व है? वह सही निर्णय लेने में पंगु है कि अपना मत किस प्रत्याशी को देना चाहिए और क्यों देना चाहिए! प्रत्याशी की योग्यता-अयोग्यता का कोई प्रश्न उसके सामने नहीं होता। स्वच्छ-स्वस्थ प्रशासन की अपेक्षा अपने मताधिकार का स्वल्प क्षुद्र स्वार्थ ही उसका अभिप्रेत है। राजनीतिक संस्थाओं के लिए प्रत्याशियों का

भी ऐसा ही निम्नस्तरीय ध्येय होता है, जिसमें लोकतंत्रीय भावनाओं की कोई प्रेरणा नहीं होती। इस तरह प्रत्याशी और मतदाता के बीच स्वार्थमय आदान-प्रदान से प्रजातांत्रिक देश में जनहितार्थ की जाने वाली तपः साधना की कैसे आशा की जा सकती है? और ऐसी लोभाभिभूत जनता से स्वस्थ जीवन-नीतियों के आदेश कैसे प्राप्त किये जा सकते हैं?

प्रजातांत्रिक देश में जीवन-नीति के लिए स्वार्थ का आधार असैद्धांतिक हैं। लोभ से दूषित प्रजातंत्र में समाजवाद एक कल्पना का विषय बनकर रह जाता है। स्वार्थ परित्याग के बिना समाजवाद के लिए जनता के चिंतन में परिष्कार नहीं आ सकता।

लोकसभा भंग होते ही सफलता के लिए देश के सारे राजनीतिक दल चुनाव मघर्ष में उतर पड़ते हैं। सभी दल अपने को जनतंत्रवादी कहते हैं। अपने-अपने दृष्टिकोण से सभी जनकल्याण की घोषणाएं करते है। सब के हाथों में जनता की दुःखमुक्ति की मशाल है। क्या ये जनता के उद्धार की चिंता से परेशान हैं, या किसी और समस्या का हल तलाश कर रहे है? देश का राजनीतिक वातावरण संदिग्ध है। राजनैतिक नेताओं में कृत्रिमता अधिक है। उनके विचार-प्रच्छन्न है। मुग्ध जनता उन के विचारों तक पहुंच नहीं पाती। ऐसे नेताओं के पीछे चलने वाली प्रजा जिंदगी की मंजिलों को पार करती हुई अपने लक्ष्य तक नही पहुंच सकती।

समाजवाद कोई नया सिद्धांत नहीं है। यह प्रत्येक युग की आवाज है। भारत का यह सांस्कृतिक संदेश है। तीर्थंकर, अवतार मानव-जाति के लिए यही संदेश लेकर आये। इसी के लिए उन्होंने अपनी सारी जिन्दगी लगा दी। अंतिम तीर्थंकर महावीर का सारा जीवन समाजवाद था। महावीर राजकुमार थे। राजा सिद्धार्थ के वे पुत्र थे। उनके पास विलासिता का कौन-सा साधन नहीं होगा? फिर भी वे इस विलासिता का त्याग करके भिक्षुक बन गये। सब कुछ होते हुए भी भिक्षुक बन जाना, समाजवाद का आदर्श उदाहरण है। भारत के नेता यह धारणा बना लें कि किसी भी

सिद्धांत का प्रचार शब्दों से नहीं होता, स्वयं के आचरण से होता है! जनता को प्रभावित करने का वैज्ञानिक उपाय आचरण ही है। यदि नेता अपने जीवन में समाजवाद ले आयें, तो उन्हें चिल्लाने की जरूरत न होगी। आज के समाजवादी नेता अपने लक्ष्य तक पहुंचने में क्यों असफल रहते हैं? वे समाजवाद को सिद्धान्त के रूप में जनता के ऊपर लादने का प्रयत्न करते हैं। वे उसे आचरण के रूप में प्रस्तुत नहीं कर पाते। जनता की श्रद्धा, नेता के आचरण में होती है, शब्दों में नहीं। समाजवाद का जो अर्थ है, यदि वह समाजवादी नेता के जीवन में चरितार्थ नहीं हुआ है, तो अर्थ-शून्य शब्दों को जनता उसके पास वापिस लौटा देती है। जो औषध जिस मर्ज के लिए जनता का नेता उसे देना चाहता है, उसके परीक्षण के लिए उसे पहले स्वयं को तैयार करना पड़ता है।

आज भारत की नग्न और क्षुधा-पीड़ित जनता अपने नेताओं के प्रति विलासी होने के आरोप लगा रही है। उनके मदिरापान आदि अनैतिक कृत्य, धन-बाहुल्य, अनावश्यक विशाल भवनों पर आधिपत्य के प्रति उसका आक्रोश है। अतीत के राजा-महाराजा तो समाप्त हुए, लेकिन उस की छाती पर अगणित विलासी सम्राट् आ बैठे। इन के रहने के अय्याशी तरीकों में कितना अपव्यय होता है। इतना होने पर भी इन का प्रजा की सुख-सुविधा का कोई लक्ष्य नहीं। अतीत के महाराजा शायद ही इतना अपव्यय करते हों, इसमें संदेह है। फिर भी वे रात्रि के अंधकार में प्रच्छन्न रूप से जनता के सुख-दुःख का पर्यवेक्षण करने के लिए राजभवनों से नगर के गली बाजारों में निकल पड़ते थे। अपने अतीत के इतिहास को जब भारत की जनता दुहराती है, तो चन्द्रगुप्त सम्राट् के संयमी महामात्य चाणक्य को जीर्ण-शीर्ण कुटीर में विशाल साम्राज्य का प्रशासन करते हुए देख कर उस के सामने अपना सर श्रद्धा से झुका देती है। भारत का निस्पृह नेता गांधी जब झाड़ू हाथ में लिये सड़क पर खड़ा हुआ मिलता है, तो उस की जनता स्पृहणीय नेता की स्मृति में आंसू उंडेल

देती है। क्या ये भारत के राजनीतिक नेता भी कभी गौरवमय अतीत की आवृत्ति कर पाते है ? क्या तृण-कुटीर में बैठे हुए सयमी चाणक्य और राजनीति-निष्णात सेवाकुशल नेता गांधी को भी कभी देखने का प्रयत्न करते है ? ये जनता के प्रश्न हैं। जिन का उतर आज के राजनीतिक नेताओं को देना होगा।

दल-परिवर्तन करने वाले राजनीतिक नेताओं ने भारत की राजनीति को अस्थिर बना दिया है। जनता के ये घृणा-पात्र वन चुके है। उसका इनमें कोई विश्वास नही रहा है। ये जो कुछ बोलते हैं, वह सब माया-छल लगता है। इसीलिए जनता इन्हे अभिशाप दे रही है—ये सब गद्दार है। इनको अपना मत देना लोकतंत्र के विरुद्ध है। पहले जमाने में एक जयचंद गद्दार था। अब ये हजारो गद्दार है। सब लोकतंत्र के सिहासन पर बैठने के लिए भटकते फिरते है।

समाजवाद भारत के लोकतंत्र का आह्वान है। समाजवाद के शब्दो का अर्थ साम्यवाद न हो। साम्यवाद से उलझा हुआ समाजवाद भारतीय लोकतंत्र को मान्य नही होगा। अपने ही सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भारत मे समाजवाद लाना है। चुनाव मे साम्यवादी लोकतंत्र के लिए मत देना हिसा अराजकता को आमंत्रित करना है। भारत में आज का लोकतंत्र अहिसा और सत्य के मार्ग से प्राप्त हुआ है। इस में धनि-निर्धन-दोनो के अभ्युदय के लिए सोचा जायेगा। समाजवादी लोकतंत्र में दोनों को सहअस्तित्व का अधिकार है। खून किसी का नही बहाया जा सकता। यहां शस्त्रो के स्थान पर ज्ञान से क्रांति की जायेगी। इसके लिए समाज मे आत्मा के सिद्धांत को आगे लाना होगा। आत्मा कमल की तरह निर्लेप है पुरुषस्तु पुष्कर-पलाशवन्निर्लेपः। आत्मा तृष्णा-संक्षेप का मार्ग है। इस के बिना समाजवाद प्रशस्त नही हो सकता। आत्मा की अनुभूति से तृष्णा के तंत्र पर आवश्यकता का तंत्र लाना होगा।

समाज में श्रम सबको करना होगा। उसके बदले उतना लेना होगा, जितनी आवश्यकता है। डाक्टर और मोची, दोनों के श्रम को समान प्रतिष्ठा मिलेगी। यहाँ पर व्यक्ति की योग्यता नहीं, समाज के लिए किया गया श्रम महत्वपूर्ण समझा जायेगा। अतः दोनों की आवश्यकता पूर्ति के साधनों में कोई अन्तर न होगा।

आने वाले प्रशासन से भारत की जनता ऐसी ही जीवन-नीति की अपेक्षा रखेगी, ऐसी आशा है।

□□

शिक्षा का आदर्श

○ ○

शिक्षा का आदर्श क्या है ? जब यह अमृत रस गले से उतर जाएगा, तभी शिक्षा, शिक्षित को आदर्श के उच्च-शिखर पर पहुंचा सकती है। केवल साक्षरता ही पर्याप्त नहीं है। आत्म-ज्ञान के अभाव में शिक्षा, अशिक्षा है। सम्पूर्ण शिक्षा तो पूर्णत्व में निहित है। यही यहां पर निर्दिष्ट है।

—सं.

○ ○

समाज का अभ्युदय, उसकी समुचित शिक्षा की व्यवस्था पर निर्भर होता है। अतः संस्कारपूर्ण शिक्षा का आदर्श, अंतस को आलोकित कर मानवीय साँचे में ढालता है, अन्यथा समाज अशिक्षा का शिकार बनकर अनेक दुर्गुणों से ग्रसित होकर अधः पतन की ओर अग्रसर होता है। इसलिए आवश्यक है कि समाज कल्याण की कामना से शिक्षा के ऐसे आदर्श प्रस्तुत किये जाएं जिससे जनता अपने समस्त उत्तरदायित्वों का निर्वाह सजग व सचेष्ट होकर करे।

सुसंस्कारो से समाज को संवारने वाली शिक्षा का प्रारम्भ पहले अपने घर से ही होता है। अबोध बच्चों में सर्वप्रथम माता-पिता द्वारा डाले गये सुसंस्कार ही उनके जीवन-विकास के आधार स्तम्भ बनते हैं। जिस पर उनका सुन्दर भविष्य आधारित होता है।

यदि बचपन में कुसंस्कार स्थापित हो गये तो समाज की आशाओं का महल गिरते देर नहीं लगती, जिसका परिणाम बड़ा भयानक होता है। अतः प्रारंभिक संस्कारपूर्ण शिक्षा तो घर से ही शुरू होती है। यही शिक्षा बच्चे के अविकसित मानस को परिमार्जित करती है।

बालक का मानस उस मिट्टी के कच्चे घड़े के समान होता है जिसे कुम्हार स्वेच्छानुसार रूप प्रदान कर सकता है, किन्तु पक जाने पर वही घड़ा परिवर्तन को स्वीकार नही करता। अतः बचपन में डाले गए सद्संस्कार ही जीवन निर्माण करते है।

शिक्षा का आदर्श जीवन का समग्र विकास है। जिसमें माता-पिता, गुरु एवं समाज के प्रति अपने पावन कर्तव्यो को आकना होता है। मनुष्य अपने इन स्वजनो (माता-पिता-गुरु) के प्रति कर्तव्यो के ऋण से कभी उऋण नही हो सकता। इसकी व्याख्या करते हुए हमारे ऋषि-मुनियों ने 'मातृ देवो भव, पितृ देवो भव' कहा था।

कर्तव्य बोध कराना ही शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य है जिसमें स्वजनो के प्रति, सुहृदों के प्रति, समाज के प्रति, शास्त्र के प्रति और विश्व के प्रति कर्तव्य पालन की क्षमता है, वे ही अजर-अमर होकर जन-जन के अराधक बनते है, अन्यथा लाखों प्राणी प्रतिपल जीते-मरते ही है, किसको कौन स्मरण करता है।

भारतीय सस्कृति में शिक्षा की इस विधा को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई है, किंतु आज पाश्चात्य प्रभाव से स्थिति प्रतिकूल हो गई है। आज की बढती हुई अनुशासनहीनता का प्रमुख कारण है, विद्यामंदिरों मे आदर्श शिक्षा का अभाव तथा नवाकुरो के उभार में स्वजनो की असावधानी और बढ़ती हुई विलास-प्रवृत्ति का दुष्परिणाम।

'सा विद्या या विमुक्तये" का आदर्श क्षीण होता जा रहा है। आज विद्यार्जन का तरीका और लक्ष्य कुछ और ही हो गया है। जो सर्वविदित है। नकल की प्रवृत्ति कितनी घातक सिद्ध हो रही है। अच्छी-अच्छी उपाधियों से अलंकृत लोग अल्पज्ञ रहकर समाज व राष्ट्र के लिए अभिशाप बनते जा रहे हैं। यही नही

वरन नित्य-प्रति नैतिकता का ह्रास, सामाजिक उत्थान के लिए चुनौती बन गई है। बाबूपन का बढ़ता हुआ प्रभाव, लार्ड मैकाले के उस स्वप्न को साकार कर रहा है जो भारतीय पीढ़ी को पंगु बनाने के लिए उसने सोचा था। मैकाले ने कहा था—

We cannot import the English from England for the clerical job for Rs. 60-70 per montn.

यद्यपि शैक्षणिक विकास के लिए अनेक प्रयास किये जा रहे हैं, जिसमें शिक्षण संस्थाओं का बाहुल्य महत्वपूर्ण है, किंतु उसका घटता हुआ स्तर चिन्तनीय है। आदर्श शिक्षा का सम्बल इतना सशक्त होता है कि वह सारे राष्ट्र की गतिविधियों को बदल देने में समर्थ हुआ करता है। अतीत से अब तक की अनेक घटनाएं, राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कीर्तिमान स्थापित करने में सक्षम हुई है। महान् दार्शनिक शिक्षा शास्त्री, समाज सुधारक इस महत्ता का प्रतिपादन समयानुसार करते रहे है। सुकरात टाल-स्टाय, महात्मागांधी, आदि की आदर्श शिक्षाए जहा आधुनिक युग में स्मरणीय है वहां राम-कृष्ण, महावीर, बुद्ध की आदर्श शिक्षाएं सामाजिक, नैतिक सुधार तथा आध्यात्मिक उत्थान की अमर थाति है जिनसे भारतीय संस्कृति गौरवशील है।

राष्ट्रीय पुनर्जागरण मद् शिक्षा की अभूतपूर्व भूमिका का परिणाम है कि अहिंसा के बल पर भारत ने अपनी खोई हुई स्वतंत्रता को प्राप्त किया। भारत की परतन्त्रता का कारण उसकी जनता की अशिक्षा ही थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् अनेक क्षेत्रों में विकास अवश्य हुआ है और समाज सतत प्रगति की ओर अग्रसर है किन्तु आज की अनुशासनहीनता और नैतिकता का निरन्तर ह्रास सोचने के लिए विवश कर रहा है कि आखिर त्रुटी कहां है ?

शिक्षा कैसी हो, उसका उद्देश्य क्या हो, शिक्षा के समुचित प्रसार में क्या व्यवधान हैं आदि समस्याएं गंभीरता के साथ

प्रता- पुरुषोत्तम मुनि रामकृष्ण

विचारणीय हैं। इन समस्याओं के समाधान में शिक्षा के उस आदर्श का पालन अनिवार्य है जिसमें चरित्र-निर्माण, संयम, अनुशासन तथा परिश्रम के साथ अध्ययन का विशेष प्रावधान हो। आज विद्यार्थी बड़ी विषम परिस्थिति से गुजर रहा है जिसकी यथार्थता से सभी परिचित हैं। अतः समयानुसार सुधार ही आदर्श शिक्षा की महत्ता है। राष्ट्रभक्ति और कर्तव्य परायणता की भावना होना भी अति आवश्यक है।

विद्यार्थी राष्ट्र के भावी निर्माता हैं, जिनपर सम्पूर्ण उत्तरदायित्व का भार आने वाला है। अत: उनका सुसंस्कृत होना आवश्यक है।

विद्यार्जन तो साधना है। साधना में आराम कहाँ है। इसीलिए प्राचीन काल में आश्रम पद्धति को प्राथमिकता देकर शिक्षा की व्यवस्था की गई जिसमें समन्वय की भावना थी। कृष्ण और सुदामा का आदर्श अद्वितीय है जिसमें सहपाठी की परख राजा-रंक के भेदभाव को मिटाकर की गई है।

इस प्रकार समुचित शिक्षा समाज को बहुमुखी विकास की ओर अग्रसर करते हुए वरदान स्वरूप है। इसके विपरीत कुशिक्षा या अशिक्षा समाज के लिए अभिशाप है। अत: दोनों की परख जानी अपेक्षित है।

□□

विद्वान् : देश के वरदान

○ ○

विद्वान् की विनम्रता, उसका देवत्व है। पशुता विद्वान् में भी होती है, जब उसका मन अहं से युक्त हो। विद्वान् देश के लिए क्यो वरदान है ? क्योकि वह ज्ञान-सरिता के उस घाट पर बैठा होता है जहा अहं को दीप-दान की तरह विसर्जित कर दिया जाता है। ज्ञानी इस विसर्जन लीला को देखने वाला द्रष्टा होता है।

—सं.

○ ○

राष्ट्र का सर्वांगीण विकास उसके विद्वानों की बौद्धिकता पर निर्भर है। भारत की उज्ज्वलता संसार के सम्मुख इतनी विशाल अध्यात्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, दार्शनिक उन्नति के कारण ही आदर्श रूप में पूज्य है, क्योंकि तत्कालीन विद्वानों ने अध्ययन की उत्तमता को आधार बना कर जो कुछ लिखा, वह ठोस धरातल पर आधारित था। इसलिए तो वह अक्षुण्य है और अमर है।

भारतीय वाङ्मय का आदर्श उसके पठन-पाठन की प्रमुख प्रक्रिया रही है। प्रात काल ब्रह्म मुहुर्त में उठना, दैनिक नैसर्गिक क्रियाओं के पश्चात् मनन-चिन्तन, स्वाध्याय, आदि की उत्तमता जो गुरुभक्ति की गरिमा से मंडित है। सहज रूप से किया

गया स्वाध्याय अत्यधिक पुष्ट, लोक मंगलकारी, जन-जन के लिए रुचिकर होता है, क्योंकि विद्वान् उसमें उन विशिष्टताओं का समावेश करता है, जो समाज को गति प्रदान करे।

विद्वान् अपने साहित्य में समाज की यथार्थता को भी प्रतिबिंबित करने का प्रयास करता है, तभी तो साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया है। किसी भी काल की सामाजिक व्यवस्था को, तत्कालीन साहित्यिक कृति में परखा जा सकता है। अतः साहित्यकार पर बहुत बडा उत्तरदायित्व होता है कि वह अपनी कृति में सामाजिक यथार्थता को उजागर कर, उसका दिशानिर्देश करे।

भारत के प्राचीन साहित्य में जिन आदर्शों की स्थापना की गई है, वे सामाजिक सर्वांगीण विकास के लिए दीपस्तम्भ है, जिसके आलोक में ही हम अपनी वास्तविकता को परख सकते है।

उपनिषदकाल का आदर्श कुछ और है तो भक्तिकाल का कुछ और है इसी प्रकार वीर-गाथाकाल, रीतिकाल, तथा आधुनिक काल अपना-अपना अस्तित्व अपने-अपने कृतित्व के साथ उजागर करते हैं।

अतीत से अब तक का मूल्यांकन यदि किया जाय, तो स्पष्ट होता है कि प्रत्येक काल में विद्वानो ने जनता को आह्वान किया है कि, सभी लोग अध्ययन करें, ज्ञानार्जन करे मनन-चिन्तन, पठन-पाठन, लेखन, सृजन करे। यही समय की माँग रही है। उपनिषद काल का एक उदाहरण विचारणीय है—जब एक राजा कहता है कि मेरे जनपद में कोई भी अज्ञानी अथवा मूर्ख नहीं हो। इससे स्पष्ट होता है उस काल का पाण्डित्य क्या था। यही नहीं वरन अतीत में तो अज्ञानी रहना पाप माना जाता था।

समाज के सर्वांगीण शैक्षणिक जागृति में जो साहित्यकार संलग्न है, वही तथ्यतः साहित्यकार या विद्वान् कहलाने का अधिकारी है किंतु इसके विपरीत जो धनार्जन में संलग्न है या तुच्छ, अभद्र

साहित्य का सर्जक है वह देशद्रोही और अज्ञानी ही माना जायेगा। अतः विद्वत्ता और विद्वान् से समाज का सर्वांगीण विकास व लोकमंगल ही अपेक्षित है।

किसी भी कवि, विद्वान्, साहित्यकार का मूल्यांकन उसकी कृतियों से ही किया जाता है। सामाजिक परिपेक्ष्य में जो कुछ भी वह देखता है, परखता है, अनुभूति करता है, उसी को आत्मसात करके, अपनी प्रतिभा की कसौटी पर कस, अभिव्यक्त करता है। वही उसकी सच्ची व श्रेष्ठ रचना होती है, क्योंकि उसमें ही यथार्थता की अनुभूति का परिष्कृत अभिव्यक्तीकरण होता है। आदिकवि वाल्मीकि ने क्रौंच-वध का जो दृश्य देखा, वही उनकी करुणा, दया, अचानक कविता के रूप में फूट पड़ी जिसकी यथार्थता, नैसर्गिकता अकृत्रिमता का परिणाम है कि वे आदि कवि की महत्ता से मंडित राम-साहित्य के अमर गायक हैं। इसी प्रकार मिल्टन, शेक्सपियर, होमर, कालिदास, तुलसीदास आदि अपनी-अपनी श्रेष्ठता में अद्वितीय हैं।

साहित्यिक प्रवाह एक नैसर्गिक निर्झर है, स्वतः प्रवाहित सरिता है, जिसकी स्वाभाविकता अक्षुण्य, अमर है। कृत्रिम नहर में उस की महत्ता कहां? अतः स्वतः प्रवाहित साहित्य समाजोपयोगी उत्तम व ग्रहणीय होता है। जन-जीवन उसी से अनुप्राणित हो ऊर्ध्वगामी होकर जन-मंगल करता है। अतः विद्वान् और उसकी विद्वत्ता का जनोपयोगी वरदान युग को उबारने वाला अमर गौरव है।

□□

विद्यार्थी

○ ○

छात्र, एक ऐसी चिन्ता मुक्त वेला से प्रतीत होता है, जहा भविष्य यात्रा की तैयारी के पश्चात् अनन्त सम्भावनाओ के द्वार खुले रहते है । जिस छात्र में बुद्धिबीज के अंकुरण की शक्ति होती है वह जगत्-जीवन का उल्लेख्य पुरुष बन जाता है । जो छात्र भविष्य की ओर उद्ग्रीव होकर चिंतन नही कर पाता मात्र मस्ती एव किशोर जनित चपलता में उलझा रहता है उसे आगे चलकर 'यथास्थिति' की निराशा के अंधेरे मे ही जीना पडता है । छात्र सोच सकता है 'विद्यार्थी' विश्लेषण को पढकर, वह कहा पहुचाना चाहता है ?

—सं०

○ ○

विद्यार्थी राष्ट्र का मेरुदण्ड है। वह भावी भाग्य का निर्माता है, जिस पर समाज और राष्ट्र का पूर्ण उत्तरदायित्व आनेवाला है। अतः विद्यार्थी-जीवन बडी सतर्कता, श्रम और सावधानी का जीवन है। जीवन के इस प्रथम सोपान पर जो असफल हो जाता है, वह समस्त जीवन असफल रहता है। जो विद्यार्थी एकबार पिछडा, कि फिर जीवन भर पिछड़ता ही जायेगा। इसलिए विद्यार्थियों को बहुत संभल कर आगे बढने का उत्तरोत्तर प्रयास करना चाहिए।

अनुशासन विद्यार्थी जीवन का मूलमंत्र है। इसका नित्यप्रति ह्रास आज के शिक्षा-जगत् की गंभीर समस्या है। पाश्चात्य सभ्यता की कृत्रिमता में भटकती हुई आज की नयी पीढ़ी हड़ताल, नकल, अनुशासनहीनता, रैगिंग, और बिना श्रम के केवल उपाधियां लेने की

स्पर्धा में लगी हुई है ? इस मार्ग पर चलकर यह कहां जायेगी ? शिक्षा का स्तर गिर रहा है। इसका ही परिणाम है, बेरोजगारी की जटिल समस्या, जिससे, समाज और सरकार त्रस्त है। आज विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयो, तथा अन्य शिक्षा सस्थाओ की बाढ़-सी आ गई है, किंतु नित्यप्रति गिरते हुए शिक्षा-स्तर की समस्या चिंतनीय है। पूरा समाज गंभीर सकट में फंसा है। बढती हुई अपराध-प्रवृत्ति के कारणों में प्रायः पढ़े लिखे युवक ही पकड़े जा रहे है। सिनेमा से दुर्गुण सीखकर, ये हत्या, लूट, अपहरण आदि में निमग्न है। इस गभीर समस्या के प्रति समाज को समय रहते ही जागना आवश्यक है।

अतीत के आलोक में यदि इस तथ्य को देखे तो ज्ञात होता है कि बाल्मीकि, कालिदास, पाणिनी, पतञ्जलि, तुलसीदास, धर्म-कीर्ति, समन्तभद्र आदि विद्वानो ने किस कालेज मे शिक्षा प्राप्त की थी। उस समय की परिस्थिति तो आज से बिल्कुल विपरीत थी, फिर भी वे मनीषी अपने असीम श्रम व आस्था से जो गरिमा समाज का दे गये है. वह अद्वितीय अनुपम और अवर्णनीय है।

वेद, पुराण, उपनिषद, आगम, आदि जिन विभूतियों की देन है. वे कैसे थे ? कितनी प्रतिभा, कितना ज्ञान. कितनी लगन थीं उनमें। वे सब कुछ अनूठा आदर्श युग-युग के लिए छोड़ कर गये है, जिसपर भारतीय संस्कृति को गर्व है, किंतु उसके प्रतिकल आज का अपराधी और अनुशासनहीन वातावरण कितना विषाक्त हो गया है, यह सत्य किसी से छिपा नही है।

विद्यार्थी की श्रेष्ठता इसी में है कि वह अपने सर्वांगीण विकास के लिए विद्याध्ययन को ही प्रमुखता दे। विद्यार्जन के लिए गुरु-भक्ति, अनुशासन, कर्मठता, आदि सद्गुणों का तथा श्रम और रुचि का होना अति आवश्यक है। विद्यार्थी जीवन तो एक तपस्या का काल है। वैभव-सुख-विलास का तो उसके लिए प्रश्न ही नही उठता। कहा भी गया है—

सुखार्थिनः कुतो विद्या, विद्यार्थिनः कुतः सुखम् ।

अतः सुख की अभिलाषा विद्यार्थी—जीवन में सर्वथा त्याज्य है । विद्यार्थी का तो प्रमुख उद्देश्य है विद्यार्जन ! यह उपलब्धि अनुशासित अध्ययन पर ही निर्भर है । इसी क्रम में अतीत के एक आख्यान का अवलोकन उपयुक्त होगा ।

एक बार मुनि विश्वामित्र अपने कुछ अनुयायियो के साथ कही जा रहे थे । रास्ते में सतलुज नदी के तीव्र आवेग ने उन्हें आगे बढ़ने से रोक दिया । मुनि विश्वामित्र ने बड़ी विनम्रता के साथ कहा - हे सतलुज ! तुम थोड़ा वेग कम करो, जिससे हम पार होकर-गन्तव्य तक पहुच सकें । एक मुहूर्त के लिए भी अपना वेग कम कर दो तो हम पार हो जायेंगे । नदी ने उत्तर दिया—हे ऋषि! जैसे माता बच्चे को उठाने के लिए झुकती है उस प्रकार तुम्हारे लिए उत्सुक हूं । तभी अचानक सतलुज को ध्यान आया कि इतने बड़े ऋषि के लिए मैं किस प्रकार की भावाभिव्यक्ति कर रही हूं । संकोच से झेंपते हुए पुन. सतलुज ने कहा—जैसे कन्या पिता के सामने मर्यादा मे झुकती है वैसे ही मैं हे महर्षि ! आपके सम्मुख सादर नत हू । नदी के उतरते ही ऋषि पार हो गये ।

तात्पर्य यह है कि ज्ञान, साधना, अवस्था में अग्रगण्य की सर्वत्र ही पूजा होती है । इसलिए तो कहा है—

विद्वान् सर्वत्र पूज्यते ।

विद्वत्ता से विभूषित व्यक्तित्व सर्वत्र समादर पाता है । लेकिन यह योग्यता, विद्वत्ता विनय से प्राप्त होती है। कहा है "विनय विद्या का भूषण है ।" अतः विद्यार्जन को अपना लक्ष्य मानने वाले विद्यार्थी के लिए विनम्रता और अनुशासन आवश्यक गुण है। विद्यार्थी के ये गुण ही उसे उसके गन्तव्य तक पहुचा सकते है । जैसे बादल जल से पूरित होने पर झुक जाते है, वृक्ष फलोसे लद जाने पर विनम्र हो जाते है, उसी उसी प्रकार विद्या से विभूषित व्यक्तित्व में विनम्रता-सहनशीलता और अनुशासन आवश्यक है ।

भारत में विद्या का अर्थ केवल शब्द-बोध मात्र नही है। आत्मज्ञान की अनुभूति होना विद्या है। यहां ब्रह्म विद्या प्राचीन काल से सर्वोपरि मानी जाती है। तदनुरूप व्यक्ति पहले स्वय को समझे उसके बाद वह समाज और परिवार को समझे। जो व्यक्ति आत्म वेत्ता है वही पर-दुःख की अनुभूति कर सकता है। इस को जानने के बाद व्यक्ति का व्यक्तित्व निखरता है।

आज विद्यार्थी तोड-फोड, मार-धाड, छेड-छाड जैसी उद्‌दण्डता मे अत्यधिक रुचि लेते है। यदि उनके परिवार जनो (माता, बहिनो) के साथ भी ऐसी ही घटनाएं घटे तो उनपर क्या प्रतिक्रिया होगी ? यह अनुभूति उनमे होनी चाहिए। यदि विद्यार्थी इस तथ्य को समझ जाए तो बहुत कुछ सुधार सभव है। अत विद्यार्थी-समाज पर राष्ट्र का बहुत बडा उत्तरदायित्व है। इस यथार्थता को उन्हे गभीरता से समझना चाहिए।

आत्मगुणों का विकास अति आवश्यक है। यदि व्यक्ति स्वय मे अनुशासित रहे, तो पूरा समाज सुसस्कृत, समुन्नत हो जायेगा। अत आत्मानुभूति की उपेक्षा करना उचित नही है। जब व्यक्ति स्वय को समझेगा तब समाज को समझने की क्षमता प्राप्त होगी किन्तु इन समस्त उपलब्धियो के लिए स्वय का व समय का मूल्याकन आवश्यक है ? विद्यार्थी का समय ही उसका धन है, समृद्धि है। भविष्य निर्माण की अपरिमित थाती है। कहा भी गया है "क्षणत्यागे कुतो विद्या।"

इसी प्रसग मे एक दृष्टान्त प्रस्तुत है। एक बार एक महात्मा खडाऊ पहन कर पानी पर चलते हुए नदी पार कर गए ? सभी दर्शक अवाक्। इस अद्‌भुत प्रदर्शन को देख दग रह गये, तभी समीपस्थ मल्लाह जो नाव द्वारा यात्रियो को नदी पार उतार रहा था, महात्मा के समीप आया और बोला—महात्मा जी! आपका यह प्रदर्शन तो वास्तव में बडा आकर्षक है, किन्तु इस सफलता में कितना समय आपका लगा। महात्मा अपनी उपलब्धियो पर फूला नही समाया। बडे गर्व के साथ बोला—बारह वर्ष। मल्लाह मुस्कराया और बोला-महात्मा जी! बारह वर्ष की कठोर साधना में आपने अपना अमूल्य समय लगा

कर नदी पार करने की सिद्धि प्राप्त की किन्तु मैं तो दो-दो पैसे में सैकड़ों लोगो को हर-रोज़ नदी पार कराता हूं। इस प्रकार आपकी उपलब्धि का मूल्यांकन दो पैसे की तुलना में भी नहीं ठहरता। जीवन का अमूल्य समय आपने इस छोटी-सी उपलब्धि के लिए लगा दिया।

विद्यार्थी के लिए समय अमूल्य है। जो जीवन के स्वर्णिम समय को खो देता है वह पश्चाताप में जिन्दगी बरबाद करता है। अतः समय की उपेक्षा सदैव ही कष्ट देने वाली होती है। बुद्धिमान सदैव ही, वर्तमान, भूत और भविष्य की परख करते हुए जीवन-क्रम को गतिशील बनाता है।

भारतीय संस्कृति में इन्हीं आध्यात्मिक मूल्यों की प्रशंसा की गई है। भारत की इस आध्यात्मिकता से विदेशी विद्वान् भी सदैव प्रभावित होते रहे हैं। 'हुएनसांग' चीनी यात्री जब भारत की यात्रा पर आया था, तब उसने भारतीय ज्ञान-गरिमा की प्रशंसा की थी। 'हुएनसांग' ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि—भारत में शासक सेनाधिकारी व अन्य प्रभुता सम्पन्न लोग विद्वानों का अत्यधिक आदर करते हैं। शिक्षा की भी इतनी महत्ता है कि लड़के-लड़कियों को पाँच वर्ष की उम्र में ही पांचो शास्त्र, व्याकरण, कला कौशल, आयुर्वेद, न्याय दर्शन आदि की शिक्षा प्रारम्भ करदी जाती है।

आज के छात्र पाश्चात्य सभ्यता से विशेष प्रभावित होकर आत्म-ज्ञान को भूल रहे हैं। यदि पाश्चात्य लोगों का अनुकरण भी करें तो उनकी जो अच्छी बातें हैं उनका करना चाहिये। आज अनुकरण फैशन में, खाने-पीने में तो करते हैं किन्तु श्रमशीलता, समय की पाबंदी आदि को नहीं अपनाते। किसी भी कार्य-क्रम के सम्बन्ध में कहा जाता है कि यह भारतीय समय है। अर्थात् 1-2 घंटे लेट चलता है, पर अंग्रेजों की समय-पाबंदी पर हमारा ध्यान नही जाता। इसी प्रकार प्राचीन एथेंस के युवक 12 वर्ष की आयु में ही राष्ट्रीय कर्णधार बन जाने की क्षमता रखते थे। विश्व के विद्वानों, मनीषियों के आदर्शों को अपनाना चाहिए। पाइथागोरस, हेगेल-सुकरात आदि के आदर्शों

का अनुकरण श्रेयस्कर है न कि आज की अनुशासनहीन पाश्चात्य सभ्यता का अनुकरण।

आत्मज्ञान को पराकाष्ठा सन्यास में मानी गई है—नैष्कर्म्य सिद्धि परमा सन्यासेनाधि" किंतु जो सन्यास नही ले सकते वे गृहस्थ जीवन में रहकर भी आत्मज्ञान सीखें। उच्चादर्शों, नैतिकता, धर्म आदि के पालनार्थ जहा सन्यास अपेक्षित है वही राष्ट्रीय प्रकर्ष हेतु भी इनकी आवश्यकता है। अतः प्रत्येक व्यक्ति को अपने कर्तव्यों का पालन करना चाहिए। व्यष्टि नही वरन समष्टि की भावना से सामाजिक सामजस्य-स्थापित करते हुए प्रगतिपथ पर बढना ही विद्या की महत्ता है।

अतः राष्ट्र के प्रत्येक विद्यार्थी के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह निष्ठा, श्रम व लगन से करे। विद्यार्जन उसका प्रमुख कर्तव्य है। अतः उसके प्रति किंचित भी लापरवाही न करे। विद्यार्जन के पश्चात् वह राष्ट्र व समाज के प्रति पूर्ण समर्पित भाव से कार्य करना, यही उसके ज्ञान, शक्ति और शरीर धारण की महत्ता का मापदड है।

□□

सृष्टि की आदि भाषा : प्राकृत

○ ○

भाषा-विज्ञान प्रबुद्ध वर्ग के चिन्तन का लम्बे समय मे विवादास्पद विषय रहा है। गुरु देव ने इस पर चिंतन किया है। चिंतन के बाद वे इस निर्णय पर बात पहुंचे हैं कि मानव की आदि भाषा प्राकृत है। प्रकृति के नैकट्य मे उसने व्याकरण के विधि निषेधो को नही ओढा था। कालान्तर में ही व्याकरण के विधि निषेध खड़े हुए। लिपि आई और पूर्व मानव समाज की भाषा विषय का एक आधार सहिता बनी। प्रस्तुत निबंध मे ऋषभ-युग और उसकेपश्चात् का युग भाकना दिखाई देता है।

—सं०

○ ○

तीर्थंकर महावीर का ज्ञान सर्वोदयी था। उन की ज्योति अखण्ड सृष्टि की मङ्गल-निदशक थी। भारत में कुछ शूद्र आदि जातियाँ थी जो वर्णांतर मानी जाती थी। कुछ वर्णाश्रमी वैश्य, ब्राह्मण, क्षत्रिय लोग थे। वर्णेतर जातियाँ ग्राम-नगरो के सीमान्त पर झोपडियो में अपनी पल्ली—घोष बनाकर रहा करते। वर्णाश्रमी लोगो के नगरो, मोहल्लो मे ईटो के पक्के मकान बना कर रहना, सामाजिक निषेध था। वर्णाश्रमियो की धर्म- सभा में वेदों के मन्त्र और ऋचाये वे नही सुन सकते थे। महावीर अपनी ज्योति का प्रकाश इस अन्धकार में भी ले जाना चाहते थे। शूद्र आदि जातियो को भी बोध देना चाहते थे। जिस भाषा का ज्ञान इन जातियों को था, उसी प्राकृत भाषा में महावीर का उपदेश मुखरित हुआ। वह भाषा सभी जीवों की अपनी-अपनी

भाषा में परिणत हो जाती थी। ऐसा प्रमाण समवायाङ्ग और औपपातिक सूत्रों में प्रस्तुत है—

भगवं च णं अद्धमागहीए भासाए धम्ममाइक्खइ।

—समवायांग सूत्र

सा वि य णं अद्धमागही भासा तेसिं सव्वेसिं आयरियमणाय-रियाणं अप्पणो सभासाए परिणामेणं परिणमति।

—औपपातिक सूत्र

—भगवान् महावीर अर्धमागधी भाषा में धर्म-व्याख्या करते थे। वह अर्धमागधी विश्व के सभी जीवों की अपनी भाषा में परिणत हो जाती थी।

गणधर सुधर्मा ने भी अगाध ज्ञान-समुद्र द्वादशाङ्गी की अर्ध-मागधी में ही रचना की।

प्राकृत प्रकृति की भाषा है। समस्त सृष्टि प्रकृति है। समस्त मानव-जाति की एक ही भाषा है। भगवान् महावीर ने मानव-सृष्टि को कभी विखण्डित नहीं माना। उन्होंने एक ही अखण्ड मानवजाति को स्वीकृत किया और समस्त सृष्टि की एक ही भाषा प्राकृत को स्वीकृत किया। पृथ्वी पर विशाल भूखण्ड महाद्वीप, तदन्तर्गत भारत, इंग्लैण्ड, रूस, आदि देशों की मानव-जातियों की एक ही सृष्टि-भाषा प्राकृत है। संसार की भाषा एक होने पर भी, उनके शब्दों में जो विरूपता दिखाई पड़ती है, उस का हेतु वहाँ के प्राकृतिक वातावरण भौगोलिक परिस्थिति तथा जल-वायु है। शब्द-गत अक्षरों के उच्चारण-भेद से शब्द-विरूपता उत्पन्न हो जाती है।

आङ्गल-भाषा के मैन् (Man), नेम (Name), कैमल् (Camel), पाथ (Path) पाट (Pot)

प्राकृत भाषा **मणुव, नाम, क्रमेल, पह-पथ** के रूप में प्रचलित हैं।

दोनों भाषाओं के शब्द कितने मिलते-जुलते हैं! कितने परस्पर समीप हैं! रूस, फ्रान्स, जर्मन, अफ्रीका, अमेरिका आदि राष्ट्रों का

भाषायें भी प्राकृत भाषा के बहुत समीप हैं। ये सभी भाषायें प्राकृत भाषा के ही अन्तर्गत हैं। यूनान आदि देश की भाषायें तो प्राकृत भाषा के बहुत ही सन्निकट हैं। अमेरिका के रैड इण्डियन्ज तो भारत के मूल-निवासी माने जाते हैं। उन की वेष-भूषा, सभ्यता-संस्कृति भारत का अनुसरण करती पाई जाती है। उन की भाषा भी भारत की प्राकृत भाषा से अलग नहीं पाई जा सकती।

ईरान, अफ़गानिस्तान, फारिस आदि अरब देशों के मुस्लिम राष्ट्रों की ईरानी, फ़ारसी, अरबी भाषायें तो अभी भी प्राकृत के इतना समीप हैं, कि उन के उच्चारणों मे कोई विशेष अन्तर दृष्टिगत नहीं होता।

उदाहरण के लिये—

फ़ारसी :	प्राकृत :	अर्थ :
बुत	मुत्ति	मूर्ति, (चित्र)
मादर	मायर	माता
पिदर	पियर	पिता
बादर	भायर	भ्राता
महर	मिहिर	सूर्य
तौ	तुं	तू
कदाम	कतम	कौन-सा
के	के	कौन
हमा	हम (सम)	सब
ने	नो	नहीं
बर	उपरि	ऊपर
हर किरा	तुम्हकेर	तुम्हारा

प्राकृत अतिविस्तृत विशाल भाषा है। अरबी, फारसी भाषा का कोई ऐसा शब्द नहीं जो प्राकृत-भाषा की सामा से बाहर हो। 'हर किरा' और 'तुम्हकेर' में 'किरा' और 'केर' सम्बन्ध-बोधक प्रत्यय हैं। 'णम्' धातु के मकार की तरह मूर्ति के 'म्' को 'ब्' हो गया है।

फ़ारसी में धातु को 'मस्दर' कहते हैं। उस का चिन्ह 'तन्' या 'दन्' है। जैसे गिरफ्तन्, नशिस्तन् । ये सब प्राकृत-धातु 'गेण्ह' आदि से बने हैं।

जिस भाषा में बुद्ध ने उपदेश दिया, वह पाली भी एक प्राकृत भाषा है। वैदिक कालीन ऋचात्मक उपदेश जिस संस्कृत भाषा में दिया, वह भी प्राकृत भाषा ही है। वैदिक सस्कृत जन-साधारण की भाषा थी।

ऋग्वेद में '**बे कनाट**' शब्द आया है। यास्क ने निरुक्त मे इस का अर्थ कुसीद-जीविन:—ब्याज के ऊपर जीने वाले, सूदखोर किया है। यास्क ने इस की व्युत्पत्ति करते हुए लिखा है—'**द्विगुणं कामयन्ते**'.. जितना धन उधार में दिया, उस से दुगुना लेने की इच्छा रखने वाले । इस के तीन खण्ड है. बे-कन-अट। 'बे' वैदिक युग की जनभाषा शब्द है, जिस का प्रयोग ऋषिपरम्परा और जनता ने किया । 'बे' का अर्थ दुगुना है । कन का अर्थ कनक (स्वर्ण) है। कन मे स्वार्थिक 'क' प्रत्यय लग कर 'कनक' बनता है। जैसे 'बाल:' से 'बालक:'। 'अट' आदि गत्यर्थक धातु हैं। 'अट' का अर्थ है घूमने वाले । बे कनाट दुगुना धन कमाने वाले। प्राकृत भाषा में द्वित्व संख्या वाचक के लिये 'बे' शब्द आता है। प्राकृत भाषा की तरह वैदिक संस्कृत में भी कही-कही शब्दों के अन्तिम हल का लोप हुआ मिलता है; जैसे मधुमान् को मधुमाँ बोला जाता है। और जैसे प्राकृत में 'ल' को 'ळ' भी बोला जाता है । वैदिक संस्कत में 'ळ' ध्वनि का भी प्रयोग पाया जाता है '**अग्निमीळे पुरोहितम्**' सामने रखी अग्नि की स्तुति करता हू।

वेदों की रचना के समय और उस से पहले विभिन्न आर्य-गण, आर्य-जातियाँ थी। उन में विभिन्न आर्यभाषाये प्रचलित थी। उनमें इतना ही साम्य और वैषम्य था, जितना आज की हिन्दी पंजाबी,राजस्थानी, गुजराती आदि मे है।

पश्चात् पाणिनि ऋषि ने अष्टाध्यायी संस्कृत-व्याकरण का निर्माण कर लौकिक संस्कृत का निर्माण किया। इससे भाषा

के दो विभाग हो गये—वैदिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत । भाषा की दृष्टि से यह विभाग उचित प्रतीत नहीं होता ।

दोनों भाषायें प्राकृत-भाषा-शैली की उपेक्षा नहीं कर सकी। वैदिक संस्कृत में तो प्राकृत की तरह वर्णागम, वर्ण-विकार आदि पाये ही जाते हैं; किन्तु लौकिक संस्कृत में भी शब्द-व्युत्पत्ति के लिये उक्त शैली का अवलम्बन पाणिनि के लिये अपरिहार्य हो गया। अत: पृषोदर आदि शब्दों को अष्टाध्यायी-सम्मत मान कर साधु शब्द मान लिया गया। प्राकृत की तरह स्वरों की वैकल्पिक सन्धि, समास आदि वृत्तियों के स्वरों का दीर्घ ओर ह्रस्व होना आदि नियमों का लौकिक संस्कृत वैयाकरणों को भी अनुसरण करना पड़ा। कालिदास आदि महान् कवियों को भी अपने अभिज्ञान शाकुन्तल आदि में प्रचलित प्राकृत को सम्मान पुरस्कृत करना पडा। नाटक गत पात्रों का संलाप प्राकृत मे पाया जाता है। उणादि सूत्रों से व्यत्पन्न कितने ही शब्द प्राकृत-भाषा-सम्मत हैं, जिन का प्रयोग संस्कृत में भी होता रहा। चन्द्र शब्द के लिये उणादि-व्युत्पन्न चन्दिर का भी चाँद के अर्थ में प्रयोग होता रहा।

प्राकृत भाषा की तरह ससार की भाषाओं का वर्णध्वनियों की संख्या समान नही है। प्राकृत भाषा मे क-ग-च-त-द आदि की तरह फारसी में ट-ड-ड़, छ-फ-घ ध्वनियाँ नही होती। ससार की भाषाओ की कितनी ध्वनियाँ मिटती है, कितनी ही बनती है। कथित आङ्गल भाषा की ध्वनियाँ लिखित- भाषा मे नही होती। जैसे Motion (मोशन्)। यहाँ 'श' लिखने में नही आता। Walk (वाक्) में 'L' 'ल' बोलने में नही आता; भाषाओं में कितने ही शब्द मिटते है, कितने ही वनते हैं।

भौगोलिक परिस्थिति के कारण शब्दोच्चारण में वड़े आश्चर्य-जनक परिवर्तन संभवित है। भूगोलीय परिस्थिति मे व्यक्ति के उच्चारण-स्थान कण्ठ, तालु आदि की रचना भी प्रभावित होती है।

'अवधी' हिन्दी भाषा की एक प्रमख बोली है। बोलने वालों की संख्या की दृष्टि से हिन्दी में खड़ी बोली (ग्रामीण एवं नगरीय)

प्रथम स्थान पर है। दूसरे स्थान पर भोजपुरी और अवधी आती है। तीसरा स्थान ब्रज और चौथा मैथिली भाषा का है।

अवधी की उपबोली बघेली को मिलाकर अवधी बोली का क्षेत्र विस्तार एक लाख वर्गमील है। बोलने वालों की संख्या 3 करोड़ 60 लाख है। बिहार के मुसलमानों में भी बिहारी बोली से प्रभावित अवधी बोली आती है।

अवधी का उल्लेख 'कुवलय माला' में कोसली के नाम से आठवी शती में हुआ है। यह कोसली उस कोशल-राज्य की भाषा थी, जो भारत के प्राचीन राज्यों में एक था। उत्तर और दक्षिण कोशल—इस पूरे कोशल को महाकोशल कहा जाता था। बघेली का क्षेत्र दक्षिण कोशल का है, पश्चात् राजपूतों के प्रभुत्व के कारण इसे बघेल-खण्ड कहा जाने लगा। हिन्दी-भाषा-विशेषज्ञों ने प्रदेशीय अवधी की उपबोलियों का वर्गीकरण करते हुए, उन के पारस्परिक रूपों के अन्तर का ऐसे निर्देश किया है—1. पूर्वी-दक्षिणी उपबोली 2. उत्तर-मध्यवर्ती उपबोली 3. पश्चिमी-दक्षिणी उपबोली।

इन तीनों रूपों को भविष्यत् प्रत्यक्ष विध्यर्थ एक वचन स्पष्ट कर देता है—

हिन्दी	पूर्वी-दक्षिणी	उत्तरी-मध्य	पश्चिमी-दक्षिणी
देखो	देखा	देखो, देखउ	द्याखो
	बोला	बोलो, बोलउ	बवालो
कोई	केऊ	कोई, कोईरक	कोऊ
खड़ी बोली	अवधी	खड़ी बोली	अवधी
खत	खयात	टेढ़ा	ट्याढ़
मोल	म्वाल	झोला	झ्वाल

ये 'ए' और 'ओ' के 'य' और 'व' युक्त रूप हैं। कुछ क्षेत्रों में उकार-युक्त रूप मिलते है—घरु, रसु, खेतु, मोलु, इत्यादि। कुछ अवधी-भाषी क्षेत्रों में खेत, घर, मोल इत्यादि रूप ही मिलते है। पूर्वी प्रान्तों में वा-युक्त रूप बहुत प्रयुक्त है—घोड़वा आदि।

कतिपय सर्वनाम पदों के क्षत्रीय रूपान्तर—उत्तम पुरुष एक वचन और बहुवचन के एक मूल और विकार रूपों में प्राय: सर्वत्र हम और हमार रूप मिलता है। कुछ क्षेत्रों में मैं, म्वार रूप भी प्रचलित हैं, उकार क्षेत्र में हमु रूप मिलता है।

मध्यम पुरुष—पूर्वी क्षेत्र में तैं और तू। पश्चिमी क्षेत्र में त्वै और तुम रूप प्रचलित हैं। विकारी रूप में तोहार और पश्चिम में तुम्हार रूप है।

अन्य पुरुष और संकेत-वाचक सार्वनामिक पदों के क्षेत्रीय रूपान्तर—

सर्वनाम	पूर्वी अवधी	पश्चिमी अवधी
यह	ई	इउ
वह	ऊ	वहु

सर्वनाम	पूर्वी अवधी	पश्चिमी अवधी
ये	यं	इं
वे	वं	उइ

स्थान-वाचक क्रिया विशेषण—'यहाँ' के लिए पश्चिमी क्षेत्र में 'हिआँ' और पूर्वी में 'इहाँ',वहाँ' के लिये 'हुआँ' 'उहाँ'।

दिशा वाचक—'इधर-उधर' के लिये 'यहर-वहर', 'एकैती-वकैती' 'इंघी-उंघी', यन्घै-वन्घै' रूप मिलते हैं

रीति-वाचक क्रिया विशेषण—'धीरे-धीरे' के लिये 'रसे—रसे', 'कल्ले-कल्ले' 'गते-गते' रूप के मिलते हैं।

प्रतिषेधक समुच्चय-बोधक अव्यय 'लेकिन' के लिये 'मुदा, मुला, मुना, पै' रूप मिलते हैं।

नकारात्मक अव्यय 'नहीं' और 'मत' के लिये 'नाहीं, नाईं',मत, न,जिन' शब्द मिलते हैं। 'में' के लियै 'माँ, मइहाँ' रूप मिलते हैं।

आज हम प्राकृत-युग से हिन्दी युग में है। प्राचीन युग में प्राकृत जन-भाषा थी। आज वह हिन्दी है। इन्हीं जन-भाषा-युगों के बीच

एक अपभ्रंश-भाषा-युग आया। उसका रूप प्राकृत और हिन्दी से भिन्न था। अपभ्रंश प्राकृत का परिवर्तित रूप है और हिन्दी अपभ्रंश का। इस परिवर्तन से प्रतीत होता है, जन-भाषा का कभी एक रूप स्थायी नही रह सकता। इसीलिये आज की जन-भाषा हिन्दी हो गई। जन-भाषा-वृक्ष का मूल प्राकृत है। अपभ्रंश, हिन्दी, गुजराती आदि उसकी शाखा-प्रशाखाये हैं। हमारे अपने निर्णीत अनुमान के अनुसार प्राकृत भाषा ही सृष्टि की आदि भाषा है।

□□

न्यायाधीश

○ ○

न्यायाधीश संसार का वह व्यक्ति है जिसे परम सत्ता के निकट का न्यायी कहा जा सकता है। निष्पक्ष निर्णय करना उसका सर्वाधिक श्रेष्ठ लक्ष्य होता है। अपराधी भी यही कारण है कि न्यायाधीश के प्रति रोष से नहीं भरता। पक्ष-विपक्ष दोनों के चेहरों पर जब सन्तोष का भाव उभर आये, तब सच्चे न्यायधीश और उसके द्वारा किये गये सत्यासत्य निर्णय को सम्यक् कहा जायेगा।

—सं०

○ ○

न्यायालय से सदैव न्याय की अपेक्षा की जाती है, क्योंकि अन्याय का निराकरण न्यायालय द्वारा ही होता है। न्यायाधीश न्यायालय का प्रमुख व्यक्ति होता है। वादी, प्रतिवादी, अभियुक्त आदि इसके अङ्ग हैं, जो अपना-अपना पक्ष प्रस्तुत कर अपने-अपने, वकीलों द्वारा न्याय की मांग अनेक तर्क-वितर्कों के द्वारा करते हैं। न्याय और अन्याय का निराकरण करना न्यायाधीश की महत्ता का माप-दण्ड है।

वादी और प्रतिवादी, न्यायी और अन्यायी दोनों पक्ष न्यायालय में अपने-अपने न्याय का साक्ष्य दृढ़ता के साथ प्रस्तुत करते हैं। उसमें दोनों पक्षों के वकीलों की भूमिका बड़ी रोमांचक व पेचीदा होती है। अन्यायी भी न्याय की पुकार करता है, जब कि न्यायी तो न्याय

मांगता ही है। सत्य का निर्णय करना न्यायाधीश की योग्यता का परिचायक होता है।

न्यायालय किसी भी राष्ट्र की प्रतिष्ठा के वे प्रतिष्ठान हैं, जहां जीवन और मृत्यु का मापदण्ड निर्धारित होता है। अतः न्यायालय और उससे जुड़े हुए व्यक्तित्वों पर असीम उत्तरदायित्व है। उन सभी का कर्त्तव्यनिष्ठ व न्यायपरायण होना अतीव आवश्यक होता है। अपराधी दण्ड से बचने का पूर्ण प्रयास करता है। ऐसी परिस्थिति में न्यायाधीश और वकील का निष्पक्ष होना बहुत जरूरी है।

आज संसार में वकील की श्रेष्ठता की प्रशंसा तभी होती है, जब वह अपराधी को निरपराधी घोषित करवा देता है। इस परिस्थिति में न्याय प्राप्त कर्त्ता के प्रति अन्याय की दुर्गन्ध वातावरण को विषाक्त बना देती है। अतः न्याय और अन्याय पक्ष से जुड़े हुए जीवन-तत्व गंभीरता से परखने के योग्य हैं।

जनता की अदालत में जीवन का मूल्यांकन, न्याय या अन्याय की तुला पर परखने का कार्य न्यायाधीश करता है। मृत्यु-दण्ड देकर जीवन को समाप्त करने का अधिकार जिसके हाथ में हो उसकी न्याय परायणता की पराकाष्ठा को आँकना आसान नहीं होता। अतः न्यायाधीश का समाज में अत्यधिक महत्व है। उसका पावनतम कर्तव्य है कि वह उचित न्याय दे।

अभियुक्त उन्माद में आकर अपराध तो कर देता है, किन्तु मानवीय मन उसे समाज में प्रतिठष्ठित करने को प्रताड़ित करता है। तभी बड़े से बड़े अपराधी अन्ततः सात्विक जीवन जीने के लिए आकुल हो उठते हैं, और जब समाज उन्हे क्षमा प्रदान कर अंगीकार कर लेता है, तब वे निर्मम अपराधी सात्विकता की भूमिका बड़ी सहृदयता के साथ निभाते हैं।

निष्पक्ष न्याय करना जहां न्यायाधीश का कर्त्तव्य है, वहीं निष्पक्ष न्याय माँगना अभियुक्त का भी उत्तरदायित्व है, न कि दया की भीख मांगना। सुकरात को मृत्युदण्ड दिया गया जो कि सत्पथ पर था,

किंतु उसने सहर्ष उस अन्यायपूर्ण न्याय को भी स्वीकार किया। न्यायाधीश को कभी सत्ता के सामने झुक कर अन्याय नहीं करना चाहिए। उसे निष्पक्ष न्याय ही करना चाहिए और यदि कोई अपराधी अपना अपराध स्वीकार कर ले तो यह उसकी विशेषता होगी। इससे समाज में एक अनूठा आदर्श स्थापित होगा जो दूसरों के लिए अनुकरणीय हो सकता है।

न्यायालय की भूमिका पर किसी भी देश या समाज का भविष्य निर्भर करता है। यदि न्यायालय सत्य का पालन करते हुए वास्तविक निर्णय देता है, तो समाज का सुधार होगा। इसके विपरीत आचरण करने पर समाज में अन्याय, दुराचार फैलेगा, जिससे समाज विनष्ट हो जाएगा। अत: न्यायालय को निष्पक्ष भूमिका निभानी चाहिए।

कानून का पालन करना प्रत्येक व्यक्ति का प्रमुख कर्तव्य है। जब कानून का उल्लंघन होता है, तब समाज में अराजकता फैल जाती है। वातावरण विषाक्त हो जाता है और सामाजिक जीवन अस्त-व्यस्त होकर नष्ट हो जाता है, इस लिये कानून-पालन के परिपेक्ष्य में न्यायालय की उत्कृष्ट न्यायपूर्ण भूमिका अपेक्षित है।

राष्ट्र में सत्य-अहिंसा की स्थापना में भी न्यायाधीश और न्यायालय का महत्वपूर्ण स्थान है। पाश्चात्य विद्वान् कवि टेनिसन ने भी कहा है—

Yet not for power, but to live by Law.
Acting the Law, we live by without fear.
—Tennyson

कानून का पालन निरातंक जीवन के लिए होता है, सत्ता के लिए नहीं।

न्यायालय वह धर्म-स्थान है, जहाँ धार्मिक न्यायाधीश सत्य-धर्मन्याय की स्थापना में अपनी अपूर्व भूमिका निभाता है जब कि इसके विपरीत वकील अपने विविध तर्क वितर्कों से पक्ष-विपक्ष के अनुकल-प्रतिकूल न्याय का गला घोटने को तत्पर हो जाता है। इस प्रकार की प्रवृत्ति घातक होती है।

अतीत के आलोक में इस यथार्थता को और बारीकी से परखा जा सकता है, कि जब भी किसी ने अन्याय किया, तो उसका परिणाम व्यक्ति एवं राष्ट्र के लिए घातक सिद्ध हुआ। पाप का परिणाम तो सभी को भोगना ही पड़ता है। उसमें कुछ विलम्ब अवश्य हो, पर अन्याय का बुरा अंत निश्चित ही है। महाभारत का भीषण नर-संहार द्रौपदी के प्रति अन्याय (चीरहरण) से आरम्भ हुआ। रावण की सोने की लंका सीता के प्रति अन्याय (अपहरण) से दग्ध हो गयी। इसी प्रकार अतीत के अनेक उदाहरण, अन्याय के परिणाम को बताते हैं। अतः अन्याय समाज व राष्ट्र के लिए सदैव ही हानिकारक रहा है।

अन्यायी को दण्ड दिया जाना आवश्यक है, अन्यथा अन्याय बढ़ता ही रहेगा, किंतु उस प्रक्रिया में भी नीति व धर्म का पालन आवश्यक है, क्योंकि अपराधी के अपराध से अधिक दण्ड यदि उसे दिया गया तो यह भी पाप हो जायेगा। धर्म की दृष्टि ही सही न्याय कर सकती है। अतः न्याय-अन्याय का परीक्षण बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से किया जाना चाहिए। गाँधी का अहिंसक स्वराज्य 'अहिंसा परमोधर्मः' की पराकाष्ठा में रामराज्य की कल्पना है। गांधी उसे भारत में लाना चाहते थे। उन्होंने विश्वव्यापी अंग्रेज सत्ता को केवल सत्य-अहिंसा के बल से पराजित कर स्वतंत्रता प्राप्त की। इस तरह सत्य व अहिंसा का सम्बल सदैव ही न्याय दिलाने में सक्षम होता है।

विश्वव्यापी द्वन्दों को न्याय दिलाने में अलग-अलग संस्थाओं की अपनी-अपनी भूमिकाएं हैं। एक राष्ट्र का दूसरे राष्ट से एक प्रान्त का दूसरे प्रान्त से, एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति से झगड़ा न्यायालय में जाता है। न्यायाधीश न्याय पद संभालते हुए, यदि न्याय नहीं करेगा तो समाज की क्या स्थिति होगी? अणु-आयुधों के आविष्कार ने संसार को भयभीत बना दिया है। अतः इस नाजुक परिस्थिति में राष्ट्रसंघ के न्यायाधीश की भूमिका कितनी महत्वपर्ण है जिसे आंकना आसान नही है। इसी

प्रकार प्रत्येक राष्ट्र, ज़िले, तहसील, पंचायत, आदि में जहां जहाँ भी न्यायिक प्रकरण हैं, वहाँ-वहाँ विशेष उत्तरदायित्वों का आह्वान है। न्यायाधीश का न्यायासन पर बैठकर योगी के समान संयमी होना अपेक्षित है।

अधिकार पदं प्राप्य नोपकारं करोति यः।

जिस राष्ट्र में, समाज में न्यायालय पथ-भ्रष्ट हुए कि उसका पतन, पराभव निश्चित है। अतः न्यायाधीश व उससे सम्बद्ध लोगों का चरित्र बड़ा ऊंचा, आदर्शवादी, त्यागी और लोकोपकारी होना चाहिए। विलास-वृत्ति अधिकारी; समाज-सेवी, राष्ट्रभक्त, वह अन्य सभी लोगों के लिए अभिशाप है। विलास के भंवर में जो फंसा कि उसका जीवन और पद की गरिमा समूल नष्ट हो जाते हैं। न्याय के क्षेत्र में तो विलास विष के तुल्य है, क्योंकि उसके प्रलोभन में अधिकारी भ्रष्ट हो जाता है। अतः इस प्रवृत्ति को पनपने नहीं देना चाहिए।

रागद्वेष से रहित होना भी न्यायाधीश के लिए आवश्यक है। यदि वह इस प्रवृत्ति का पोषक है तो निश्चय ही अन्याय करने में नहीं सकुचायेगा। इसके विपरीत यदि वह सत्य व न्याय का पक्षधर है और अपने निर्णय इसी पर आधारित कर देता है तो, उसे निन्दा आलोचना की बिल्कुल भी चिन्ता नहीं होगी। अतः न्यायाधीश को निन्दा स्तुति से दूर रहकर निष्पक्ष न्याय देना चाहिए। न्याय की महत्ता में कहा भी गया है –

निन्दन्तु नीति-निपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥

लोग चाहे निन्दा करें या स्तुति करें। लक्ष्मी आये या चली जाये। मृत्यु सद्यः आ जाये अथवा जीवन युग-युगान्तरों तक चलता रहे। श्रेष्ठ पुरुष न्याय के पथ से कभी विचलित नहीं होते।

अतः न्यायाधीश के पद पर प्रतिष्ठित व्यक्ति का बहुत बड़ा उत्तरदायित्व होता है। उसे अपने पद की गरिमा बनाए रखने के लिए सदैव ही न्याय पर अडिग रहकर कार्य करना चाहिए। □□

वकील

○ ○

न्याय भौर अन्याय के कंटीले मंघर्ष में वकील की भूमिका प्रश्न चिन्हों के नुकीले शर-संधान की भूमिका है ! स्वार्थ की सास प्रलोभन की उसास लेता वकील जब शर-संधान से चूक जाता है तो न्याय, अन्याय का और अन्याय, न्याय का रूप धरकर कैमा विदूषक दिखाई देता है—यही वकील शीर्षक का सत्य है।

पकड लीजिये न्याय, अन्याय, न्यायाधीश-वकील, पक्ष-विपक्ष के कटीले मंघर्ष के मैदान में गेन्द-मा लुढकता सत्य !

○ ○

—सं०

न्याय और अन्याय के क्षेत्र में वकीलों की भूमिका न्यायालय में विशिष्ट होती है। उसका निर्णायक न्यायाधीश होता है। वादी-प्रतिवादी, पक्ष-विपक्ष, आरोपी-प्रत्यारोधी क झूठे-सच्चे मुकदमे लेकर वकील अपनी प्रतिभा से निर्णायक भूमिका प्रस्तुत करता है। न्यायाधीश पर यह उत्तरदायित्व होता है कि वह सम्यक् न्याय करे। इस प्रकार सत्य की तुला पर न्याय-अन्याय को तोलने में न्यायाधीश व वकील की भूमिका अनूठी होती है। किसी को प्राणदण्ड दिलाने या प्राणरक्षा करने में दोनों का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है।

जनता को न्याय दिलाने के परिप्रेक्ष्य में वकील व न्यायाधीश के पद अत्यधिक प्रतिष्ठा के पद है। जनता यह आशा रखती है कि न्याय मिले, किन्तु इसके विपरीत ऐसा भी होता है कि

अपराधी धन के बल पर अपने को निर्दोष सिद्ध कराने में सफल हो जाता है और निर्दोष व्यक्ति अपराधी सिद्ध कर दिया जाता है। इस प्रकार न्याय, अन्याय में बदल जाता है। जनता की नजरों में जो यथार्थता रहती है वह तो यथावत् रहेगी ही, लेकिन वकील और न्यायाधीश प्रजा की नजरों से गिर जाते हैं।

व्यापार का जहाँ तक सम्बन्ध है, वकील अपने कार्य क अनुरूप यदि अपराधी को न बचाए तो उसे समाज में कौन पूछेगा? किंतु इसके साथ-साथ मानवीयता भी जुड़ी हुई है। यदि हत्यारा खुले आम अपराध, हत्या करके बच जाता है तो जनता पर उसका क्या प्रभाव पड़ेगा? यह बड़ी गम्भीर समस्या है। इससे अराजकता फैलने का भय है। अतः सामाजिक संतुलन बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि वकील, न्यायाधीश और जनता, सत्य-धर्म-न्याय और नैतिकता को आचरण में उतारें।

वकील और न्यायाधीश दोनों सत्य और न्याय-निष्ठ होने चाहिए। सत्यान्वेषण ही उनके पावन पद की प्रतिष्ठा है। प्रश्न है— क्या इसका उचित निर्वाह वे करते हैं?

अन्याय अक्षम्य होता है। युगों-युगों तक जनता अन्याय का तिरस्कार करती है, आक्रोश व्यक्त करती है, अन्यायी को धिक्कारती है और उसे बुरा कहती है।

सुकरात को मिली सजा का आक्रोश आज भी विद्यमान है। ईसा के प्रति किये गये अन्याय की आग आज भी उठती दिखाई देती है। द्रौपदी के साथ हुए अन्याय पर आज भी प्रजा का अन्तस् क्रुद्ध है। इसी प्रकार विश्वस्तर पर अनेक उदाहरण हैं जो न्याय का गला घोटने वालों को उपालम्भ देते हैं, धिक्कारते हैं। अतः न्याय को सर्वोपरि स्थान देना आवश्यक है, अनिवार्य है, उचित है और जनाकांक्षा के अनुरूप है।

सदाचार का प्रसार, सद्गुणों की गरिमा, न्याय में निखार, नैतिकता का पालन आदि सामाजिक उत्थान के सम्बल हैं। इन्हें लोकोपयोगी बनाने का उत्तरदायित्व बुद्धिजीवियों पर है। वकील

उन बुद्धिजीवियों में विशेष रूप से प्रतिष्ठित है। भारत के प्रजातंत्र के निर्माण में विश्वविख्यात बैरिस्टर (वकील) मोहनदास कर्मचन्द गांधी की गरिमा कितनी महत्वपूर्ण है। अंग्रेजों के अन्याय के प्रति न्याय का आह्वान और वह भी सत्य-अहिंसा के सम्बल से कितना आश्चर्य है? स्वराज्य प्राप्ति की प्रेरणा से लेकर पल्लवित पुष्पित करने तक की भूमिका में वकीलो का अभूतपूर्व योगदान चिर-स्मरणीय रहेगा। अतः जनता की अदालत में वकील का पद अत्यधिक महत्वपूर्ण है। जनता वकील से सदैव ही न्याय की मांग करती है। वकील का पावन कर्त्तव्य है कि वह जनता को न्याय दिलाये।

अधर्मवृत्ति का निरोध और सत्य-धर्म का पालन वकील का बहुत बडा उत्तरदायित्व है। अपने पद की प्रतिष्ठा को बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि वह अनैतिक रूप से केवल धनोपार्जन को ही अपना उद्देश्य न बनाए। झूठे मुकदमे लड़कर वैभव-विलास के साधन जुटाने में अपनी प्रतिभा को नष्ट न करे। जनता का भी कर्त्तव्य है कि वह वकील को अनैतिक रूप से धन न दे। रोम मे कभी ऐसा हुआ था कि लोग वकीलों की जेबों मे प्रभूत धन डाल देते थे। इस प्रवृत्ति से न्याय बडा सस्ता हो गया जो अन्तत. रोम के लिये घातक सिद्ध हुआ। धर्म ग्रन्थों की कसमें खाने वाले, झूठे शपथ पत्र भरने वाले, जनता मे अनीति का बीजारोपण करते है जो समाज के पतन का कारण बनता है।

तामिल वेद में कहा है—जैसे लोग बादलों की ओर देखते है वैसे ही न्यायार्थ लोग राजदंड की ओर देखते है। वकील को न्याय का पक्षधर बनकर, सत्य-धर्म-न्याय की स्थापना का सकल्प ले कार्यक्षेत्र मे प्रवेश करना चाहिए। उसका कर्त्तव्य है कि सामाजिक समन्वय, शान्ति, सदाचार, सद्व्यवहार आदि की स्थापना हेतु सतत प्रयास करता रहे। जनता द्वारा उसके उपर बहुत बड़ी जिम्मेदारी सौंपी गई है। अतः पूरे देश और समाज का उत्तरदायित्व उनके कंधों पर रहता है जिसका निर्वाह उसे पूर्ण निष्ठा व कर्त्तव्य परायणता के साथ करना चाहिए।

जो वकील, वकालत करते हुए केवल धनोपार्जन को ही लक्ष्य बनाता है उससे समाज को कोई अपेक्षा नहीं रखनी चाहिए, क्योंकि इस परिस्थिति में उसका उद्देश्य न्याय की प्रतिष्ठा न होकर धनोपार्जन होता है। इस प्रकार सम्पन्न व्यक्ति पैसे के बल पर न्याय को खरीद लेगा, और पूरा समाज दूषित हो जायेगा। धन से न्यायपालिका दूषित न हो इसी उद्देश्य से गांधी ने कहा था कि " न्याय निःशुल्क होना चाहिए तभी अपराधों में कमी आ सकती है। "

सत्य, सत्य ही होता है। असत्य जब सत्य पर प्रभावशील होता है तो कुछ दिन भले ही वह अपना चमत्कार दिखाए किन्तु अंततः असत्य अर्थात् अन्याय का पराभव तो होता ही है। सत्यान्वेषी सत्य के लिए अपना सर्वस्व अर्पित करने में कभी सकुचाता नही है। सुकरात जहर पीते हुए भी कहता रहा कि वह सत्य की तलाश मे मृत्यु का वरण कर रहा है। वह अपनी अंतिम सांस तक भी सत्यान्वेषण से विमुख नही हो सका।

गांधी पूरे जीवन ब्रिटिश सत्ता से सत्य के लिए लड़े। वे लंगोटी पहन कर ब्रिटिश साम्राज्य की प्रमुख बैठको मे भाग लेते थे। सत्यान्वेषी की महत्ता उसकी वेशभूषा में नहो, उसकी निष्ठा में है। एक वकील की भूमिका का ऐसा अनूठा कीर्तिमान विश्व के लिए आदर्श है, अनुकरणीय है। ईसा सूली पर चढ़ गये, पर अन्याय का विरोध करते रहे। इसी प्रकार विश्व की अनेक विभूतियों ने अन्याय के विरोध में अपना सर्वस्व अर्पित करने में किञ्चित् भी संकोच न किया।

भगवान् महावीर ने जन-जन को सत्य की दीक्षा कष्ट सह कर भी दी। वे लाढ देश में गये। वहाँ उन पर धूल-पत्थर फेंके गये, कुत्तों से कटवाया गया। लोगों ने प्रताड़ना दी। असीम पीड़ा पहुचाने पर भी वे अपने ध्येय से विचलित नही हुए। असह्य कष्टों को सह कर भी उन्होंने जनता को सत्य-निष्ठ बनाया। सत्य की प्रतिष्ठा उनका पूर्णत्व था। यही कारण है कि वे आज विश्ववंद्य विभूतियों में अग्रगण्य हैं।

ईसा को कौन्सिल के सम्मुख प्रस्तुत कर पूछा गया, कि क्या तुम ईश्वर की सन्तान हो ? ईसा ने कहा—मैं ईश्वर और मनुष्य की संतान हूं और सत्य का संदेश देने आया हूं। सत्य और न्याय ही मेरा अटल सिद्धान्त है। न्याय पर मर मिटने में मुझे संकोच नहीं है। अंततः सूली पर चढ़कर भी ईसा अमर है। अन्याय के प्रतिकूल उनकी न्याय की तुला गुरुत्तर है।

इसी प्रकार विश्व के न्यायालयों के अनेक उदाहरण हैं, जहां अन्याय हुआ, किंतु सत्य और न्याय की महक, अन्याय की दुर्गन्ध को दबाकर, उभर आयी और संसार में फैल गयी। इस सुगंध से सम्बद्ध व्यक्तित्व वंदनीय हुए। यह निर्विवाद सत्य है, कि न्याय ही जगत् में सर्वोपरि शक्ति है, जो बड़े से बड़े सिंहासनों, सत्ताधारियों, को हिला देने में सक्षम है।

मानवता की यह मांग है, कि न्यायाधीश, वकील तथा सभी सम्बद्ध अधिकारी अपने कर्तव्यों का सम्यक् पालन करें, जिससे समाज में सुख-शान्ति की स्थापना हो।

इसी तथ्य को प्रकृति के कवि सुमित्रानंदन पंत की पंक्तियों में भी देखा जा सकता है—

> सुन्दर है सुमन, विहग सुन्दर,
> मानव तुम सबसे सुन्दरतम।

मानवता की महत्ता के परिप्रेक्ष्य में वकीलों व न्यायाधीशों का पावनतम कर्तव्य है, कि वे न्याय की स्थापना से, सुन्दर समाज-व्यवस्था में अपना पूर्ण योगदान प्रदान करें। यह संभव तभी होगा, जब सर्वत्र सत्य को प्रतिष्ठित किया जायेगा।

□□

प्रज्ञा-पुरुषोत्तम मुनि रामकृष्ण

प्रज्ञा-पुरुषोत्तम मुनि रामकृष्ण

सर्वोदय-दृष्टि

○ ○

मानव मात्र के अभ्युदय को 'सर्वोदय' कहते हैं। महावीर ने इसे 'सर्वोदयतीर्थ' के नाम से अपनी धर्मदेशना में जन-हितार्थ प्रसारित किया था। सर्वोदयतीर्थ शब्द 2500 वर्षों से जैनवाङमय में यात्रा करता चला आ रहा है। आधुनिक चिन्तकों ने तीर्थ शब्द हटा दिया, परन्तु इसकी सार्थकता तीर्थ शब्द हटा देने पर शून्यवत् हो जाती है। महावीर ने मानव मात्र के अभ्युदय प्रयत्न को तीर्थ कह कर, महिमा-मण्डित किया था। इसी को सर्वोदय दृष्टि में कहा है।

○ ○

—सं०

'सर्वोदय' का शाब्दिक अर्थ है सबका उदय, अर्थात् सबका उत्थान। सामाजिक समन्वय की कामना से सभी लोगों की उन्नति और जीवन-यापन के समान अवसर उपलब्ध कराये जायें। इसी दृष्टिकोण से सर्वोदय को 'सर्वजन-हिताय, सर्वजन-सुखाय' से समलंकृत किया गया है। यह शब्द चिरकाल से ही इसी उद्देश्य की पूर्ति-हेतु प्रयुक्त किया जा रहा है। जैन साहित्य में इसकी महत्ता का प्रतिपादन इस रूप में किया गया है—

सर्वापदामन्तकरं निरन्तं
सर्वोदयं तीर्थमिदं तवैव।

—समन्तभद्र आचार्य

भारत का पवित्र आदर्श, सबके उत्कर्ष, उदय, विकास, सामाजिक एकता पर आधारित है। वैदिक संस्कृति का आह्वान है—

सर्वेऽपि सुखिनः सन्तु, सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत् ।।

सभी सुखी हों, सभी नीरोग हों, सभी का कल्याण हो, कही भी कोई दुःखी न रहे । अतीत का यह आह्वान आज भी प्रजातंत्र के रूप में प्रकट हो रहा है।

सर्वोदय अद्वैत नीति है, जिस पर मानव कल्याण का भव्य प्रासाद प्रतिष्ठित है । सामाजिक विषमताओं को मिटाकर एकरूपता लाना ही सर्वोदय का उद्देश्य है । यह सर्वोदय सिद्धान्त, अहिंसा के विविध अंग सदाचार, सद्व्यवहार, सहानुभूति, आत्मीयता आदि गुणों पर आधारित है। समस्त संसार के उत्थान का यह अद्भुत मंत्र है। संकीर्णता को समाप्त कर, उदारता के आधार पर इसकी व्यापकता का आह्वान सर्वोदय नाम की महत्ता है।

'जीओ और जीने दो' के सिद्धान्त पर सभी को समानता का अवसर देना ही सर्वोदय का आदर्श है। जब तक समाज के सभी लोगों के पास भोजन वस्त्र और मकान की व्यवस्था नही हो जाती, तब तक समाज में शांति संभव नही है। एक व्यक्ति वैभव-विलास मे डूबकर समाज का शोषण करे, और दूसरा व्यक्ति अन्न के कण को तरसे—यह अन्तर मिटे बिना सामजिक एकता सभव नही है। इससे अन्याय बढ़ता ही जायेगा। इस सत्य को परिलक्षित कर के कहा है—

"बुभुक्षितः किं न करोति पापम् ?"

एक बार महात्मा बुद्ध के सम्मुख एक दरिद्र व्यक्ति को प्रस्तुत कर, आग्रह किया गया, कि वे उसे उपदेश दें। बुद्ध ने कहा कि, यह व्यक्ति भूखा है, अत उपदेश देना निरर्थक है। उदर की आग को शान्त किये बिना कोई भी कार्य संभव नहीं है। भूख की विभीषिका में सब कुछ भस्म हो जाता है। अत जब तक भूख की समस्या का समाधान नहीं हो जाता, तब तक सारे आदर्श अर्थहीन है।

शोषक और शोषित का भेद मिटाये बिना, सर्वोदय की सफलता संदिग्ध है। पाश्चात्य मनीषियों ने भी इसी परिप्रेक्ष्य में कहा है—

Live and let live.

सभी की इच्छाएं समान होती हैं। अतः किसी के मनोभावों को कुचलना, कहां तक उचित है ? सभी को समानता के धरातल पर लाना ही मानवता है :—

Survival of the fittest.

आज की राजनीतिक उथल-पुथल में निर्धनों की दशा कितनी दयनीय है, यह यथार्थता किसी से छिपी नहीं है। लाखों बच्चे कुपोषण के शिकार होकर मर रहे हैं। कितनी मार्मिक सामाजिक विकृति है ? जबकि धनवानों के कुत्तों को दूध उपलब्ध है। आज के प्रगतिवादी युग में विपन्नता और सम्पन्नता के सामंजस्य का क्या समाधान है ? आर्थिक विषमता के विषय में एक सन्त ने एक अर्थशास्त्री से पूछा—

A Saint said to an economist who claims to turn the world into paradise.

If these politicians go to sleep for sometimes, the world be a better place to live in

अर्थात्, इस संसार को स्वर्ग के समान प्रतिष्ठा कैसे प्राप्त हो सकती है ? तब अर्थशास्त्री ने कहा कि यदि सभी राजनीतिक कुछ देर के लिए सो जाएं, तो संसार की सारी गतिविधियां बदल कर स्वर्णिम बनने के स्वप्न को साकार कर सकती है।

अतः सर्वोदय के सिद्धान्त को सर्वव्यापी बनाने के लिए जन-जागरण का आह्वान अतीत से ही किया जा रहा है, किन्तु धनी और निर्धन के भेद मिटते नजर नहीं आ रहे। अपितु दिन-प्रति-दिन यह दूरी और बढ़ती जा रही है। जब तक Law of Equality समता का

नियम लागू नहीं होता, सामाजिक विकृति बढ़ती रहेगी। इस विषम परिस्थिति में धर्म और न्याय का पालन संभव नहीं।

सर्वोदय के सम्बल से समाज का सर्वाङ्गीण विकास तभी हो सकता है, जब परित्यक्त जनों को निर्धनों व कमजोर वर्ग को ऊपर उठाया जाए। उन्हें आत्मीयता से अपनाया जाए, तब वर्गहीन शोषणहीन समाज का निर्माण संभव है। सर्वहित में विश्वास करने वाला ही सर्वोदय को साकारता प्रदान कर सकता है।

जाति-पाति, छूत-अछूत, ऊंच-नीच, बड़े-छोटे के भेद को भुलाकर सभी के कल्याण की कामना से, समानता के सिद्धान्त को कार्य रूप में परिणित करना ही सर्वोदय है।

शैले ईश्वर पर विश्वास नहीं करता था, किन्तु सर्वोदयी सिद्धान्त को साकारता प्रदान करने पर तुला हुआ था। उसकी इस सर्वोदयी विचारधारा के विरोध में उसपर नास्तिकता का आरोप लगाकर लंदन के विश्वविद्यालय से निकाल दिया गया। शैले अ ने सिद्धान्त का इतना पक्का था कि वह बड़े-बड़े धनवानों, पुरोहितों और सम्राटों की सत्ता को भी चुनौती देने की हिम्मत रखते हुए, अपने अचल पथ पर बढ़ता रहा। समाज के शोषकों को उसका यह कार्य पसंद नहीं आया। इसी प्रकार अनेक सर्वोदयी सिद्धान्तवादियों कार्यकर्ताओं की हतोत्साहित करने के अनेक प्रयत्न होते रहे।

राज्यसत्ता, धनसत्ता, शस्त्रसत्ता आदि शक्तियां सर्वोदय के पनपने में व्यवधान उपस्थित करती है। इनके प्राश्रय से ही अपराध बढ़ते हैं, व्यभिचार पलते है, और अन्याय पनपता है, तथा सब पर छा जाता है। यदि सर्वोदय को सर्वव्यापी बनाना है तो अनेक संघर्षों से जूझते हुए सतत अन्त्योदय की ओर उन्मुख हो सामाजिक समन्वय का शंखनाद करना होगा।

समाज में सभी लोग समान हैं, न कोई ऊंच है और न कोई नीच है। शारीरिक रूप से सभी समान हैं अर्थात् दो हाथ, दो पांव

दो आँख, नाक, कान आदि सब-कुछ समानता पर आधारित हैं, असमानता तो मनुष्य की विकृत व्यवस्था है। जैसे शरीर के अंगों में सिर सबसे ऊपर और पैर नीचे होने के कारण छोटे बड़े के भेद-भाव से दूर है, दुःख-सुख में दोनों पर समान प्रभाव पड़ता है उसी प्रकार समाज के सभी व्यक्ति समान हैं, किसी में कोई भेद नहीं है।

सर्वोदय की स्थापना के लिए सच्चरित्र, सदाचार, जन-सेवा आदि सद्गुण आवश्यक है। सत्य-अहिंसा को समर्पित जीवन ही सर्वोदय को सर्वव्यापी बनाने में सफल हो सकता है। उदाहरणतः अरिस्टॉटल को सत्य ही सर्वाधिक प्रिय था।

Plato is dear to me but truth is still dearcr to me.—Aristotle

सत्य भौतिकता में भटकने वाली सम्पन्नता, विलासिता से बचाता है और आत्मिक सुख-शांति की सुधा प्रवाहित कर मनुष्य को तृप्ति प्रदान करता है।

"Truth will not make us rich, it will make us free."

जीवन निर्वाह के लिए धन आवश्यक साधन अवश्य है पर आवश्यकता से अधिक धन दुःखदायी ही होता है। धनसंचय किस जीवन सिद्धान्त या अर्थशास्त्र के सिद्धान्त से बाहर है।

If the coins are abundant in a state, think that the policy of the government is bad.

(Economist)

भगवान् महावीर ने भी कहा है कि अपरिग्रह मनुष्य के लिए आवश्यक है। 'परिग्रह' से तो पाप ही पनपता है। अतः धन का आवश्यकता से अधिक सचय, विषवत् हानिकारक है। शोषण या अनाचार से संग्रहीत धन कभी भी सुख नहीं दे सकता।

जे पावकम्मेहि धणं मणूसा,
समाययन्ती अमइं गहाय।
पहाय ते पासपयट्टिए नरे,
वेराणुबद्धा नरयं उवेन्ति ॥

अर्थात् जो मनुष्य धन को अमृत मानकर, दुष्कर्मों से धन कमाता है, वह कर्मों के दृढ़ पाश में बंध जाता है और अनेक जीवों के साथ वैरानुबन्ध कर अन्त में सारा धन ऐश्वर्य यहीं पर छोड़कर नरक में जाता है। धन किसके साथ जाता है? अंततः सबको खाली हाथ ही तो संसार से विदाई दी जाती है। केवल रह जाता है उसका अच्छा और बुरा कार्य। आवश्यकता से अधिक धन संग्रह सदैव ही अभिशापवत होता है—

वित्तेण ताणं न लभे पमत्ते,
इमम्मि लोए अदुवा परत्थ।
दीवप्पणट्ठे व अणंत—मोहे,
नेयाऊयं दट्ठुमदट्ठुमेव ॥

इस लोक और परलोक में धन शरण देने वाला नहीं। अंधकार में जैसे दीपक बुझ जाए तो दीखा हुआ मार्ग भी अनदीखा हो जाता है उसी प्रकार पौद्गलिक वस्तुओं के (धनादि) अंधकार में न्याय मार्ग को देखना असम्भव हो जाता है। धन-धान्य, सोने-चांदी, हीरे-मोती की आसक्ति मनुष्य को मदान्ध बना देती है, विश्वविख्यात कवि शेक्सपियर ने तभी तो कहा है—

Gold is worse poison to man's in souls daring more murders in this world than any mortal drug.

विषवत् विनाशक स्वर्ण समाज के लिए अभिशाप है। जिसके लिए दुनिया पागल बनी हुई है। इस तथ्य की अनुभूति सभी करते हैं, फिर भी समाज इसे ही प्राथमिकता देता है। मनुस्मृतिकार ने भी कहा है—**अर्थकामेस्वसक्तानां धर्म ज्ञानं विधीयते**" एक उर्दू शायर ने अपरिग्रह को लक्ष्य कर, अपनी भावाभिव्यक्ति यूं की है—

न लुटता दिन को तो क्यों रात को यूं बे-खबर सोता,
रहा खटका न चोरी का, दुआ देता हूं रहजन को।

मानव मन में शांति कैसे स्थापित हो, समाज सुखी कैसे बनें ? यह सर्वोदय की सफलता पर ही संभव है। स्वर्ण का ढेर तो मनुष्य को और महत्वाकांक्षी बना देता है। सोने की लंका रावण को तृप्ति प्रदान न कर सकी परिणामत: उसकी वह स्वर्ण नगरी खाक बन गई। अत: मनुष्य का लालच उसे सदा ही बुभुक्षित बनाये रखता है।

We complain of the want of many things. We want votes, we want liberty, we want amusements, we want money. which of us, feels or knows that we want peace (Ruskin)

वास्तविक सुख तो त्याग में है। सम्पत्ति की विशालता में तो मृगमरीचिका की अनुभूति होती हो। महमूद गज़नवी अपार धन दौलत बर्बरता के साथ लूटकर ले गया, किंतु जब मृत्यु-शय्या पर उसने विशाल संपदा को देखा तो फूट-फूट कर रोने लगा कि कितने जुल्म मैंने इसके लिए किये। अत: सत्ता का दुरुपयोग नहीं करना चाहिए। सत्ता और शक्ति प्राप्त कर जन कल्याण करना चाहिए। न कि जनता का शोषण। राजनीतिज्ञ के लिए यही तथ्य विचारणीय है कि वह जन-कल्याण की कामना से कार्य करे। राज्य संचालन, राजनीतिक गतिविधियां, उथल-पुथल उचित है पर उसमें सर्वोदय की सुगन्ध आवश्यक है। एक विद्वान् ने कहा है—

State is a necessary evil

The theory of politics no more teaches an end than politics itself. Taken as whole a political theory can hardly be said to be true.

सत्य की नींव पर आधरित राजनीति व सत्ता सफल होती हैं, अन्यथा अनीति व शोपण पर टिकी सत्ता समाप्त होते देर नहीं लगती। जनता के प्रति अनाचार की आग भला कब तक शान्ति दे सकती है ?

मनुष्य के [illegible] को जीतने के [illegible] उसके पेट [illegible] जीवन के साधनों की समस्या का निदान करना, उनके आर्थिक साधनों को शोषण-मुक्त करना आवश्यक है तथा कुछ व्यक्तियों को दूसरों मनुष्यों पर शासन करने का कोई अधिकार नहीं हैं।

The way to man's heart is through his stomach to solve their problems of livelihood by freeing them from economic exploitation. A few have no right to ride over the backs of millions.

अत: सर्वोदय का सिद्धांत साँसारिक शांति, सुव्यवस्था, सुख के लिए अति आवश्यक है। आज के वैज्ञानिक युग में सांसारिक सन्निकटता जहाँ प्रगाढ़ होती जा रही है वही सर्वोदयी समन्वयात्मकता यदि यथार्थता के साथ उभरे तो विश्वकल्याण के लिए सुधामय सिद्ध हो सकती है। अत: सर्वोदय की व्यापकता पर गभीरता से विचारकर उसे स्वीकृत करना चाहिए। इसी में मानवता का कल्याण है।

□□



सैनिक-जीवन

○ ○

आराध्य को भक्त समर्पित होता है। सेवक, स्वामी के प्रति समर्पित है। गुलाम, शासन-सत्ता को समर्पित कहलाता है। हमें इन सब की अभी कोई चर्चा इष्ट नहीं है। हम कहना चाहते हैं --देश के लिए संकल्पित समर्पित, निष्ठाशील नैतिक-मानो को मानवता के पुष्पहार मे पिरोने वाला सैनिक होता है। उसी की चर्चा है इस लेखन मे।

○ ○
- सं०

आपने सैनिक को देखा होगा ? उनके रूप-रंग, आकार प्रकार के सम्बन्ध में प्रश्न किया जाए तो आप गौरवपूर्वक यह उत्तर देंगे—शत्रु सेना के समक्ष सीना खोलकर रणांगन में अडिग रहने वाला सैनिक कहलाता है।

ऐसा तो होता ही है। इसके साथ-साथ समझने को एक बात है—सैनिक एक भाव है। देश के प्रति समर्पण उसके अन्तर का परम आनन्द है। नैतिकता उसका नाद है। प्रलोभन को वह विनाश मानता है। पलायन उसके मन के कोष से नष्ट हो जाता है। आसक्ति को उसका वीर मन कभी स्वीकार तक नहीं करता है। सच्चा सैनिक वासना को जला लेता है। ऐसा होता है सैनिक का स्वरूप !

सैनिक भाव को जीने वाला ही सैनिक हो सकता है। रणक्षेत्र में उतरने वाला मन से सैनिक बना होता है। वीरता ओढ़ी हुई चादर

नहीं होती। वीरता तो मन में उपजा हुआ कवच होता है। सैनिक तन और मन से सक्षम पुरुष होता है। उसके मन में कभी कायरता जन्म नहीं लेती। यदि कायरता आ जाए तो सारा खेल बिखर जाता है। जिसके मन में कायरता जन्म ले लेती है तो वह विजय को कभी प्राप्त नहीं कर सकता। कायर व्यक्ति तो रणक्षेत्र में पिछवाड़े के रास्ते की तलाश में लगा रहता है।

समरांगण में सैनिक का शरीर तो शस्त्रों के प्रहार से आहत हो जाता है परन्तु उसका मन कभी आहत नही होता। जिसका मन घायल नहीं होता, उसका शरीर शस्त्र प्रहार से रक्तरंजित क्यों न हो जाए उसे इसकी चिन्ता नहीं होती। उसका वीर मन प्राणांत की अन्तिम श्वास लेते समय भी देश की रक्षा का संकल्प करते हुए ही अन्तिम श्वास छोड़ता है।

सैनिक इस तरह कठोर जीवन जीने वाला आदमी होता है। उसकी देह के नष्ट होने को सैनिक का नष्ट होना नहीं कहते हैं। देह का क्या है ? वह तो नष्ट होती ही है। पशु के जीवन में राष्ट्र के प्रति न कोई कर्तव्य भाव होता है न देश रक्षा का कोई प्रण उसमें होता है। पक्षी कभी कर्म के संगीत नहीं गाता है। क्या इनके देह कभी नष्ट नहीं होते ?

शरीर का मरण तो भारत की संस्कृति में कभी स्तुत्य रहा ही नही है। शरीर के नष्ट होने के पीछे कर्तव्य व कर्म का निनाद होता है तो उसका शरीर नाश भी महत्वपूर्ण होता है।

हमारा पहला प्रश्न है सैनिक देखा है आपने कभी ? विशेष प्रकार की वेश-भूषा में बंधा-जुड़ा लिपटा और शस्त्रों से मंडित व्यक्ति ही सैनिक नहीं है। सैनिक में नैतिकता होती है। निष्ठा उसके कण-कण में समाई होती है। बलिदान की भावना उसका परम कर्त्तव्य होता है। मृत्यु उसका पर्व होता है। यह सब कैसे होता है उसमें ? इसलिए कि देश व धर्म की रक्षा उसके जीवन का व्रत है। वह शत्रु के प्रति निष्ठुर अवश्य होता है परन्तु देश के प्रति करुणा से ओत-प्रोत होता है। देश के प्रति करुणा का अर्थ है मानवता के प्रति सौहार्दता।

सच्चा सैनिक जब विजयी होता है तो वह अहंकारी नहीं बनता। उसके विजय-गान में कर्तव्य की सुगन्ध आती है। शत्रु पक्ष के क्षेत्र में विजय प्रवेश करते समय भी उसकी मानवतापूर्ण हृदय की आंख खुली रहती है। विजय उन्माद में शत्रु पक्ष को नारी वर्ग में मातृत्व भगिनित्व के सम्मान से उसका मन शून्य नहीं होता।

आध्यात्मिक क्षेत्र में भी सैनिक की पूजा होती है। भगोड़ों की अथवा मन के कायरों की नहीं। आत्म-जगत् में भी असली नकली सैनिक-भाव पाया जाता है। एक बार उमंग आ गई। वैराग्य-तरंगों से मन भर गया, तो गुरु के पास पहुंच गए। कहा—संसार को बहुत देख लिया। अब कोई आकर्षण नहीं रहा। मुझे दीक्षा प्रदान कर दें। गुरु ने देखा-परखा और दीक्षा दे दी।

परन्तु गुरु को क्या पता था कि शिष्य का मन परिपक्व नहीं है। एक दिन आध्यात्म जगत् के उस सैनिक शिष्य का मन भाग छूटा आध्यात्मिक रणक्षेत्र से। आध्यात्मिक क्षेत्र के इन भगोड़ों को भी सच्चा सैनिक नहीं कहा जा सकता। जो आत्म सैनिक होता है वह सभी प्रकार के उपसर्ग और परीषहों को सहन करता है! इसलिए वह सच्चा आत्म-सैनिक कहा जाता है।

सैनिक कोई किराये का आदमी नहीं होता, उसे किराया मिल जाए—बस! देश डूबे या तरे। देश पराजित हो तो क्या और विजयी हो तो क्या? जो किराये का सैनिक होता है वह भागने के प्रत्येक छिद्र से पूरा-पूरा परिचित होता है। अतः शत्रु सेना से मर मिटने की बात उसके मस्तिष्क में कभी उत्पन्न नहीं होती। उसके मन में भागने के गलियारे और उन गलियारों के मोड़ उसके मस्तिष्क में सदैव विद्यमान रहते हैं। सच्चे सैनिक के हृदय में राष्ट्र का अमर गौरव जागा होता है। राष्ट्र के इस गौरव की प्राण देकर वह स्वयं रक्षा करता है।

अपनी स्वीकृत प्रतीज्ञा से पीछे हटने का तो प्रश्न ही नही होता। वह अपने परिचय के हर व्यक्ति में देश-अभ्युदय व देश-मंगल की भावना जगाता रहता है। सैनिक इतना करके ही विराम नहीं लेता।

अनुशासन सैनिक का जीवन धन होता है। वह सैन्य-भावना से प्रेरित तो रहता ही है साथ ही उसने एक शक्ति 'सेनापति' के आदेश को सर्वस्व मान कर उसे मन में पूजा भी होता है। हर पल उसका आदेश उसके लिए सर्वोपरी होता है। सेनापति शत्रुबल को तौलता रहता है। जब वह उचित समझता है तभी आदेश घोषित कर देता है कि अब आगे बढो। अब जी-जान से डटे रहो। सैन्य दल में सेनापति शत्रु-शक्ति के वार और दाव की दृष्टि से पूर्व और पश्चिम दिशा को मापने वाले यन्त्र की तरह होता है।

इस चर्चा में यह प्रसंग भुलाए नही भूलता कि अतीत में राज्य व्यवस्था और सैन्य-भावना का जन्मदाता या नियामक संन्यासी होता था। जो स्वयं निर्लिप्त हो वही तो अनासक्त भाव की दीक्षा दे सकता है। जहाँ स्वार्थ की ज़रा भी गध हो उस से सैन्य भाव की शुद्ध दीक्षा तो क्या सैन्यभाव का छू पाना भी कठिन होता है।

दर्शन : दिव्य-दृष्टि

○ ○

जैन दर्शन ने चिन्तन मूलक एक शब्द दिया है—'सम्यक् दर्शन।' जिसका दर्शन, सम्यक् है—उसका सभी कुछ सम्यक् है। जीवन और जगत को समझने का सम्यक् दर्शन एक नेत्र है। जिसने इसे प्राप्त कर लिया, समझ लीजिए उसने जीवन और जगत् को देखना सीख लिया। दुःख, द्वेष, कलह, क्लेश, मोह और मूढ़ता के परिताप से मुक्त हो गया। इस आलेख में यही बताया जा रहा है।

○ ○

सं०

'दंसण मूलो धम्मो'

धर्म की धुरा पर दर्शन की दिव्यता द्युतिमान होती है। दर्शन का का तात्पर्य है विशिष्ट रूप से देखना "दृश्यते अनेन इति दर्शनम्।" यह दृष्टिकोण विवेक, चिन्तन व प्रज्ञा से परिष्कृत होना चाहिए। जिस वस्तु को सामान्य व्यक्ति सामान्य रूप से देखता है, उसी वस्तु को विशिष्ट व्यक्ति विशेष रूप से देखता है, वही है दर्शन। अर्थात् बाह्य चक्षुओं की अपेक्षा आन्तरिक चक्षुओं से देखना। विवेक, चिन्तन, विचार इसी आन्तरिक चक्षु के पर्याय हैं। डा० राधाकृष्णन ने दर्शन की महत्ता के विषय में कहा है—

Philosophy is intellectual attempt to understand the reality.

वास्तविकता को परखने का दर्शन बौद्धिक प्रयास है। दार्शनिक जीवन और जगत् का अखण्ड अध्ययन करता है, जबकि 'दर्शन' जीवन और जगत् को परखने का प्रयास है। सांसारिक समस्याओं के समाधान का अध्यात्म की नींव का चिन्तन-मनन करना ही दर्शन का आदर्श है। भौतिकता में भटकता हुआ मन, जब विषमताओं से संत्रस्त हो जाता है वह दर्शन की ओर अभिमुख होता है। दर्शन की दिव्य दृष्टि से ही वह शाश्वत सुख प्राप्त करता है।

आत्मानुभूति दर्शन की महत्ता का परिचायक है। आत्मानुभूति के बिना दुःखों का लय असम्भव है। अत: आत्मतत्व को जानना चाहिए। आत्मद्रष्टा-दिव्य नेत्र वाले के सामने का सत्य-ज्ञान-आनन्द के द्वारा खुल जाते हैं। तभी तो कहा गया है—

परम निधान प्रकट मुख आगाले रे...
आँख बिना रे अंधार !

दिव्य नेत्र सच्चाई पर पड़ते हैं, किसी क्षुद्रादि या अन्य पर नही। महर्षि बाल्मीकि भील थे किन्तु उन्होंने जो कुछ किया विश्व के सम्मुख आदर्श है।

आत्मानुभूति मे उत्पन्न उत्कृष्टता अमर होती है। दया, करुणा, आत्मीयता से अभिभूत बाल्मीकि के मुख से अचानक श्लोक की धारा प्रवाहित हो उठी थी, जब उन्होंने एक युगल क्रौंच पक्षी को व्याध के शर से विधा हुआ देखा, क्रौंची के विलाप पर करुणार्द्र हो महर्षि की वाणी फूट पड़ी थी—

मा निषाद प्रतिष्ठा त्वमगमशाश्वतीशमा।
यत्क्रौंचमिथुनादेक भवधीकाममोहित: ॥

हे निषाद ! तुम्हें प्रतिष्ठा कभी नहीं प्राप्त हो सकती जो तुमने क्रौंच युगल को अपने शर से घायल कर निष्ठुर हिसा की है। जो रत्नाकर अज्ञान और पाप का प्रतिरूप बना वह दर्शन की दृष्टि प्राप्त कर महर्षि बाल्मीकि बनकर आदि कवि की महत्ता से मंडित हुआ। इसी आत्मानुभूति को अभिव्यक्ति सुमित्रानन्दन पंत ने इस प्रकार कि—

वियोगी होगा पहला कवि,
आह से उपजा होगा गान,
उमड़ कर आँखों से चुपचाप,
बही होगी कविता अनजान ।।

दार्शनिक दृष्टिकोण आत्मा को विशेष महत्व देता है । भगवान् महावीर, महात्मा बुद्ध संसार के दु:ख को देखकर द्रवित हो उठे। उन्होंने संसार को आत्म-दर्शन के लिए प्रेरित किया। संसार समुद्र में निमज्जित प्राणियों को यथार्थता समझने की दृष्टि प्रदान की। उसे जैन परिभाषा में सम्यक् दर्शन कहते हैं। यह सम्यक् दर्शन कितना मूल्यवान् है ? जैनाचार्यों ने कहा है—

दंसणसुद्धो सुद्धो दंसणसुद्धो लहेइ निव्वाणं,
दंसणविहीणपुरिसो न लहइं तं इच्छियं लाहं ।

जो सम्यग्दर्शन से शुद्ध है, वही शुद्ध है। दर्शन से शुद्ध मनुष्य ही निर्वाण को प्राप्त कर सकता है। दर्शन से विहीन इच्छित लाभ से वंचित हो जाता है। अत: सम्यकत्व ही तो दर्शन का प्राण है। इसकी महत्ता-मण्डन में और भी कहा गया है—

रयणाणमहारयणं सव्वजोयाण उत्तमं जोयं ।
रिद्धीणं महारिद्धी सम्मत्तं सव्वसिद्धियरं ।।

अर्थात् रत्नों मे महारत्न, समस्त योगों में उत्तम योग और ऋद्धियों में महाऋद्धि तथा सम्पूर्ण सिद्धियों का कारण सम्यकत्व है। अत: सम्यग्दर्शन का विशिष्टतम स्थान है ।

धर्म और दर्शन भारतीय संस्कृति के मूलतत्व हैं। जब मनुष्य चिन्तन के महासमुद्र में उतरता है तब दर्शन का, और जब उस चिन्तन को अपने जीवन में उतारता है तब धर्म का उदय होता है। अत: धर्म और दर्शन दोनों सापेक्ष हैं एक दूसरे के पूरक हैं। धर्म में आध्यात्मिकता की महत्ता है, तो दर्शन में बौद्धिकता की। इस दृष्टि से दर्शन और धर्म का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है।

दर्शन और धर्म जीवन की परिशुद्धि के सम्बल हैं। इनसे मनुष्य का उत्थान, नैतिक निखार और आत्म-कल्याण होता है। □□

निर्धनता का अभिशाप

○ ○

'निर्धनता' मानव-जीवन का सतत रिसता हुआ नासूर है। हृदय-हीनता, शोषण का विषैला कांटा है। ईश्वरवाद और भाग्यवाद के समर्थकों ने सदैव शोषक का ही पोषण किया है। संवेदनशील अहिंसक मन ही सदैव शोषित के प्रति सदय रहा है। प्रस्तुत निबन्ध को पढ़िए। निर्णय हो जाएगा। आप किस ओर मुखातिब होते हैं?

—सं०

○ ○

निर्धनता मनुष्य के लिए अभिशाप है। निर्धनता में डूबा मानव, समाज द्वारा तिरस्कृत होता है। वह अनेक कष्टों को भोगता हुआ, देखा जाता है। ऐसे व्यक्ति के जीवन की कोई भी इच्छा पूर्ण नहीं हो पाती। वह कदम-कदम पर ठोकर खाता हुआ, दुनिया के द्वारा दुत्कारा जाता है। अत: दीनता, दुनिया में सबसे बड़ा अभिशाप है। दीनता के दर्द को वही समझता है, जो दीन-हीन जीवन से गुजरा हो या उसमें विशिष्ट आत्मानुभूति हो।

गरीबों पर दया करने वाला, दीनबंधु की दिव्यतम महत्ता से मंडित होता है। वास्तव में दीन-हीन जीवन अति कष्ट का जीवन है। दूसरों के सामने हाथ फैलाकर मांगना बहुत बड़ा दु:ख है। सभ्य कहे जाने वाले लोग उससे नजर बचाकर निकल जाते हैं। यथार्थत:

निर्धनता का जीवन बेहद कष्टकारक होता है, जिसकी एक झलक कविवर निराला की इन पंक्तियों में झलक रही है—

चाट रहे थे जूठी पत्तल,
कहीं सड़क पर पड़े हुए।
और झपट लेने को उनसे,
कुत्ते भी हैं अड़े हुए।

कितना मार्मिक चित्रण है। एक भिखारी अपना पेट भरने के लिए सड़क के आसपास बिखरे पत्तों को बीनता है। धनवान परिवार द्वारा, प्रीतिभोज के उपरान्त जूठी पत्तलें फेंकी गई है। भिखारी उन जूठी पत्तलों में ढूंढ़-ढूंढ़ कर भोजन के टुकड़े उठाता है। पत्तल पर चिपकी हुई सामग्री को खाना चाहता है, तभी कुत्तों का समूह भी झपटने को आतुर है। इस मार्मिक चित्रण का दृश्य आज भी देखा जा सकता है। सर्वत्र गरीबों के कवि निराला की यह कविता अत्यधिक लोकप्रिय है, जिसमें भिखारी का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया गया है—

वह आता,
दो टूक कलेजे करता, पछताता पथ पर आता
साथ दो बच्चे भी हैं,
सदा हाथ फैलाए,
बाएं से वे मलते हुए पेट को चलते—
दाएं, दयादृष्टि पाने का हाथ बढ़ाए,
भूख से सूख होंठ जब जाते।
घूंट आंसुओं के पीकर रह जाते।

राष्ट्रकवि दिनकर ने भी निर्धनता का मार्मिक वर्णन किया है। जब एक मां अपने बच्चे को दही मथते हुए, न तो दही देती है न मक्खन बल्कि, छाछ देकर बहलाते हुए कहती हैं—पुत्र! घी-दूध तो कर्ज व ब्याज की पूर्ति में देना पड़ता है अन्यथा व्यापारी हमें दंड देगा—

शिशु मचलेंगे दूध देख, जननी उनको बहलायेगी,
मैं फाडूंगी हृदय, दर्द से आह नहीं रो पायेगी।
फटेगा मूक हृदय कठोर, चलो कवि बन फूलों की ओर ॥

कार्लमार्क्स ने इस लिए कहा था--सामाजिक क्रान्ति करके करोड़ों शोषक मजदूरों को मुक्ति देनी है। जो कर्ज मे ही पैदा होते हैं, और कर्ज में ही मरते हैं। दुनिया के कोने-कोने मे मजदूरों के शोषण का जो तांडव है, उससे उनको रक्षा अपेक्षित है। समाज का नवनिर्माण अति आवश्यक है, जिसमें शोषक-शोषित का अन्तर समाप्त किया जाये। सामाजिक एकरूपता लाए बिना विश्वशांति असंभव है।

भूख-अशिक्षा-अस्वस्थता, आदि समाज को विकृत बनाते है। निर्धन वर्ग इन दोषों से ग्रसित, दिन प्रति दिन और निर्धन होता चला जाता है जबकि शोषकों का शोषण और अधिक बढ़ता जाता है। जिस समाज मे इतनी अधिक असमानता हो जाती है कि वहां निर्धन के विकास के द्वार बन्द हो जाते है। ऐसी विषम परिस्थिति में तो वर्ग संघर्ष होना स्वभाविक है। आज संसार दो वर्गों में बंटा है। वे हैं—धनी और निर्धन। दोनों का टकराव विश्व के लिये घातक है। अतः सामाजिक समानता के लिए बहुत कुछ अपेक्षित है।

सदियों से संसार में धर्म, जाति, रंग-भेद आदि के नाम पर जो संघर्ष हो रहे हैं। इसका समाधान क्या है? धनी-निर्धन का भेद कैसे मिटेगा? ये गंभीर समस्याएं चिंतनीय है। अहिंसा सभी धर्मों में श्लाघ्य है, फिर भी हिंसा का दिन-प्रति-दिन बढ़ता प्रभाव समाज के लिए गंभीर चेतावनी है। छूत-अछूत का उन्माद कब समाप्त होगा? सांसारिक शांति ओर सुव्यवस्था के लिए, इन बुराइयों को मिटाकर, हृदय को उदार बनाना होगा जिसमें सभी को आत्मीयता से आत्मसात् करने की क्षमता हो। प्रसिद्ध विद्वान् बर्न ने कहा है—"विश्वस्त तथा मानवीय हृदय के बिना मनुष्य की कोई कीमत नही।"

समाज में पूंजीवाद का बढ़ता हुआ प्रभाव चिंतनीय है। शोषण से ग्रस्त श्रमिक वर्ग पंगु होता जा रहा है। उदाहरणार्थ-एक मजदूर दिन भर कठोर श्रम करते हुए भी उदरपूर्ति में असमर्थ रहता है, जबकि इसके विपरीत पूंजीपति वैभव विलास में डूबता हुआ तृप्त ही नहीं होता। कोयले की खान, में सोने की खान में, काम करने वाला मजदूर पूर्ण श्रम करके भी इतना ही उपार्जन कर पाता है कि जिससे उसका उदर कठिनता से भर पाता। स्वर्णाभा से संसार को चमकाने वाले मजदूर की यह कैसी दशा है। मनुष्यता का विकास समाज-प्रणाली पर निर्भर है। जैसा समाज होगा, उसी के अनुरूप मनुष्य ढलता जायेगा। अतः सामाजिक परिवर्तन आवश्यक है। व्यक्ति की सारी शक्तियों को जागृत करके, उसे सामाजिक मूल्य देना है। भारत के ऋषियों का आह्वान है–समाज ही समस्त संपत्ति का स्वामी है–"सर्व भूत हिते रताः"

वैभव विलास में डूबा मनुष्य स्वयं के अस्तित्व को भूल गया है। मानवीय महत्ता की यथार्थता की परख आवश्यक है। मनुष्य को अपनी महत्ता का मूल्यांकन स्वयं करना चाहिए। प्रख्यात कवि कीट्स की यह कविता वृक्ष को उत्तमता विषय में विचारणीय है–

Too happy happy tree,
Thy branches never remember
Their green felicity.
Thy bubblings never remember
Appolo's summer look
But with a sweet forgetting
They stay their crystal fretting
Never never petting.

वृक्ष सौभाग्यशाली है, क्योंकि उसकी शाखाएं यह याद करके नहीं रोती कि हम शरदऋतु में निष्पत्र है, ग्रीष्म में पुष्पित पल्लवित अथवा ऋतुअनुसार उनकी क्या दशा होगी ?

मानवता का मंगल और सामाजिक एकता का संकल्प सभी को लेना चाहिए। आत्मतुष्टि ही सबसे बड़ा सुख है किंतु जब असंतुलन की स्थिति हो, तब यह कुछ और ही रूप ले लेता है। सभी लोग समानता के आधार पर उन्नति करें, यही विकासवादी युग से अपेक्षित है।

इस सन्दर्भ में परमात्मा की तलाश में चलने वाले लोगों को एक उर्दू शायर का आह्वान स्मरणीय है—

इफ़लास की राहों में खुदा को ढूंढो,
मुफ़लिस की निगाहों में खुदा को ढूंढो।
शंख और अजान में ढूंढते हो उसको,
मजदूर की आहों में खुदा को ढूंढो॥

□□

पत्र, पत्रकार और प्रजातंत्र

○ ○

पत्रकारिता मात्र व्यवसाय नहीं है। यह एक मार्ग है। पत्रकार इस राह पर चल कर, मानवता का सच्चा सेवक सिद्ध होता है। नीरव वेला में जब सब अग-जग सोया होता है, तब भी पत्रकार की चौकन्नी आंखे जागती हैं। कहीं मानवता, नैतिक मूल्यों का अपहरण तो नहीं हो रहा! सजग प्रहरी की भांति वह देखता रहता है, और जहां उसे लगा कि मानवता, नैतिक-मूल्य अपहृत हो रहे हैं, वह समाज को निद्रा से जगाता है। और उनकी रक्षा करता है।

पत्रकार केवल पत्रकार बनकर रहे, व्यापारी नहीं। यह गुरुदेव यहां बताना चाहते हैं।

—सं०

○ ○

पत्र, पत्रकार और प्रजातंत्र—यह एक प्रकार का संगम है। संगम शब्द से एक धारणा जुड़ी है। भारत की तीन नदियों गंगा, यमुना और सरस्वती का मिलन ही पवित्र संगम है। इस संगम के पीछे हजारों वर्षों से भारतीय मानस पवित्रता, स्वच्छता और मन की निर्मलता की अनुभूति करता आ रहा है। इसी प्रकार यह दूसरा संगम भी वैचारिक पवित्रता और स्वस्थ विचारों का एक मार्गदर्शक संगम तीर्थ है।

पत्र किसी भी श्रेणी का हो मासिक, पाक्षिक, साप्ताहिक अथवा दैनिक! निसंदेह उसकी भूमिका सामाजिकों के लिए एक मार्गदर्शक की होती है। पत्र को हम शिक्षा का सबल माध्यम कहेंगे तो पत्रकार को शिक्षक भी। पत्र और पत्रकार दोनों का अस्तित्व

प्रजातंत्र की देन है। पत्रों को पूरी स्वतंत्रता है कि वह जन सामान्य को स्वस्थ विचार सामग्री देकर जनहित करें। जन सामान्य के दुःख-सुख, हित-अहित, सही और निर्भीक रूप से कहकर शासन-तंत्र को भी जनता के प्रति उसका क्या कर्तव्य है? इससे अवगत कराते रहें।

पत्रों का प्रकाशन तुरन्त और नियमित रूप से जन-जन तक पहुंचता है। अतः विज्ञापन जैसा प्रचारित माध्यम विज्ञापित करना, पत्रकार और प्रकाशनों ने आर्थिक आधार बना लिया है। यह ठीक है, इसके माध्यम से पत्र को आर्थिक लाभ होता है। परंतु सामग्री चयन की, जैसे मार्गदर्शक पथप्रदर्शक पक्ति होती है वैसे ही विज्ञापित करने की भी एक पथप्रदर्शक पंक्ति होनी चाहिए। यह कोई तरीका है ही नहीं कि पत्रप्रकाशक और पत्रकार शील-अश्लील, नैतिक-अनैतिक, विज्ञापनों का भेद किए बिना ही विज्ञापन छापते रहें। अश्लील विज्ञापनों का सीधा सम्बन्ध पाठको की नैतिकता से जुड़ा हुआ है। अश्लील विज्ञापन अपराध प्रचारक सूचनाएं पाठकों के मस्तिष्क को प्रभावित करतो है, उन्हें अपराध प्रवृत्ति की ओर प्रेरित भी करती है। शील, सदाचार एवं नैतिक मानदण्डों को परवाह किए बिना अंधाधुंध अश्लील विज्ञापनो का प्रचार समाज को भ्रष्ट, उच्छृंखल्न तथा उद्दण्ड बनाने के लिए जिम्मेवार है। यह स्वस्थ पत्रकारिता का नासूर है। इस से पत्रकार को अपने पाठको को असपृक्त रखना अति आवश्यक है।

अश्लील सामग्री का प्रकाशन, अपराधप्रकृति को निसंदेह प्रेरित करती है। हजारों युवक-युवतियां इस प्रकार की सामग्री पढ कर पथभ्रष्ट होते रहते हैं, इससे पत्रकार भी सम्यक् प्रकार से परिचित हैं। फिर भी निरंतर उस तरह की सामग्री का प्रकाशन वे क्यों करते रहते हैं, यह समझ में नही आता है।

अश्लील सामग्री छाप कर वे समाज को तो अंधकार में धकेलते ही हैं स्वयं भी नैतिक दायित्वों के पद से भ्रष्ट होते हैं। अपने पद से गिरने का अर्थ है बौद्धिकता का विनष्ट होना। पत्रकार जब बुद्धि

से भ्रष्ट हो जाता है तो उसके पत्र प्रकाशित करने का अधिकार समाप्त हो जाता है । ऐसे कुपथ प्रेरक प्रकाशन निसंदेह प्रतिबन्ध के योग्य होते हैं ।

सच्चे पत्रकार की परिभाषा ही यह है कि सामाजिक बुराइयों को देखते ही उसका हृदय क्षुब्ध हो जाये । बुद्धि की समस्त चेतना जुटा कर बुराइयों के उन्मूलन के लिए कटिबद्ध हो जाये ।

जनतांत्रिक प्रशासन का यह अर्थ कदापि नहीं है कि जो और जैसा मन में आया लिख दिया । जिससे समाज विश्रृंखलित हो, उसमें भ्रष्टाचार फैले व्यक्ति का अधःपतन हो इस प्रकार की सामग्री का प्रकाशन स्वतन्त्रता का यह स्पष्ट दुरुपयोग है । जनतंत्रीय कहें या प्रजानंत्र । इसकी यह परम उदारता है कि व्यक्ति अपने विचारों को स्वतंत्र रूप से निर्भीक हो कर प्रकट करें । निर्भीकता पशुता जगाने लगे तो उसे सामाजिकता कभी क्षमा नहीं कर सकती । मनुष्य में पशुत्व न आये अपितु उसमें मानवता का विकास हो यही तो प्रजातंत्र का उद्देश्य है । प्रजातंत्र निर्भीकता का पक्षधर है, पशुता का नहीं ।

ऐन्थोनी कैरशा का कहना है—"जनतत्र की हत्या करने वाले वे अखबार या पत्रकार ही होते हैं जो विकारों को उभारने वाली खबरों को दफनाते नहीं वल्कि बढ़ा-चढ़ा कर प्रस्तुत करते हैं । उसके पीछे जनहित की दृष्टि से जो कहना आवश्यक होता है, उस ओर से वे आंखे बंद कर लेते है ।" जो पत्रकार मात्र पैसे या प्रशंसा की लूट में लग जाते हैं वे यह नहीं समझ सकते कि देश हित क्या है, जनहित किसे कहते हैं ?

टालस्टाय ने हमेशा इस बात का पूरी शक्ति से विरोध किया कि अपनी प्रशसा के लिए दूसरों की कीर्ति को धूमिल किया जाये । धन और प्रशंसा के लिए जो पत्र कार्य करते हैं वे स्वस्थ पत्रकारिता के शरीर पर रोग है । प्रतिष्ठा को आधार मानकर पत्रों का परस्पर टकराव, होना यह वैचारिक और आचारगत हत्या होती है ।

किसी भी राष्ट्र के बुद्धिमान व्यक्ति का चुनाव करने का प्रसंग उपस्थित हो जाये तो निर्विवाद रूप से पत्रकार का चुनाव होगा। कहा जाता है—पत्रकार स्वर्ग के बंद द्वार को खोलना जानता है। नरकका फाटक बंद है तो वह उसे भी खुलवा सकता है। केवल उसके हाथ में लेखनी का होना आवश्यक है।

एक पत्रकार मर गया। वह स्वर्ग मे पहुचा तो द्वार बद मिला। अदर जाने की निषेधाज्ञा लिखी मिली। नरक ही चला जाए। वहा से भी निराश लौटना पड़ा। शैतान ने समझ लिया था कि यह पत्रकार है तो वह भी क्यों शरण देता। इस दुविधा की कठिन वेला में भी पत्रकार की निर्णायक बुद्धि ने एक उपाय खोज निकाला। वह एक उजडे हुए स्थान मे पहुचा। सप्ताहान्त होते-होते उसने एक साप्ताहिक पत्र प्रकाशित कर दिया। तभी स्वर्ग और नरक दोनो स्थानो में अव्याबाध प्रवेश के लिए 'प्रेसपास' उसे मिल गया।

उपर्युक्त प्रसग का उल्लेख मात्र इसलिए किया है कि पत्रकार सामाजिक चेतना का प्रबुद्ध व्यक्ति है। उसे निम्न से निम्न, घृणित से घृणित घटना प्रभावित नही करती। वह नैतिक स्तर से गिरी हुई और नैतिकता के विधि निषेधों से ऊपर उठे हुए छलाचार से भी प्रभावित नही होता। दोनों ही स्थितियों में उसकी बौद्धिक चेतना लुप्त नहीं होती। जनहित को सटीक और निर्लिप्त बात कहना ही उसे प्रिय होता है। पत्रकार ऐसा दायित्व सम्पन्न व्यक्तित्व होता है कि घटनाओ और प्रतिबिम्बों मे उसकी चेतना छवि प्रभावित नही होती। यदि वह भी उनसे प्रभावित होने लग जाए तो पत्र जो साहित्य का अग है—उस में निष्पक्ष मार्ग कौन बतलायेगा। मूसलाधार वर्षा की सीलन तक जिस चेतना को न छू सके वह चेतना होती है पत्रकार की। इसीलिए उस पर पूरे देश, धर्म और समाज के हानि-लाभ, मान-अपमान, हित-अनहित के सम्बन्ध जुड़े हुए है।

□ ⌞

महापुरुष : व्यक्तित्व और सन्देश

○ ○

जैन संस्कृति के हार्द पर्युषण पर्व के अवसर पर परम्परात: अन्तकृद्दशांग सूत्र एवं कल्पसूत्र का वचन किया जाता है। इन दोनों शास्त्रों में महापुरुषों के चरित्र वर्णित है।

सामान्यतया शास्त्र को निगूढ़, अगम्य कह कर वाचक व श्रोता आगे बढ़ जाता है। प्रस्तुत लेख में विद्वान् मुनि श्री ने महापुरुष का व्यक्तित्व और उसका संदेश कितना सहज, सरल और सर्वभोग्य होता है, इसका सुन्दर दिग्दर्शन करवाया है, इस आलेख में!

— सं०

○ ○

किसी महापुरुष को समझने के लिये, हम अपने ज्ञान को बहुत छोटा बना लेते हैं। उसकी परिधि बहुत सीमित कर लेते हैं। इसी अज्ञानता के आधीन होकर हम महापुरुष को ऐसे विशाल विशेषण अर्पित कर देते हैं, जिससे उसका व्यक्तित्व हमारी आकलन-शक्ति से बाहर हो जाता है। फिर उसे अनिर्वचनीय कह कर हम अपनी ज्ञान-शक्ति को निरर्थक बना लेते हैं। हम समुद्र जैसे विशेषणों से महापुरुष के व्यक्तित्व को दिव्य न बना कर, उसे ढांप देते हैं।

पूर्वाचार्यों, दार्शनिकों, कवियों ने अकल्पित विशेषणों से महापुरुष के व्यक्तित्व को अत्यन्त दुरुह बना दिया ऐसा करके जीवन की एक महान् आदर्श निधि से श्रद्धालु वर्ग को वंचित कर दिया। साधारण व्यक्तित्व किसी की समझ में न आये ऐसा तो संभव है, क्योंकि वह

छल-कपट से ढका हुआ है। उसके मन में कुछ और होता है, आंखों में कुछ और, किन्तु महापुरुष के विषय में दुर्बोधता की कोई कल्पना नहीं की जा सकती। उसका व्यक्तित्व भी दुर्वोधता के अन्धकार में छिप सकता है। ऐसा मानना असत्य और असैद्धान्तिक है। जब दीपक जलता है, तो क्या उसका प्रकाश नहीं दिखाई देता ? जब बीज भमिसात् हो जाता है, तो क्या वृक्ष बन कर हमारी आँखो के सामने नहीं आता ? क्या दीपक का प्रकाश हमारी प्रतीति से दूर रह सकता है ? क्या वृक्ष हमारे अनुभव में प्रतिबिम्बित नही होता ? मनुष्य मेधावी है। उसकी मनीषा- चिन्तन-शक्ति अन्धकार को चीर देने वाले प्रकाश की तरह इतनी तीक्ष्ण है, ब्रह्माण्ड का कोई भी तत्व उसके सामने अज्ञात रहस्य बन कर नहीं रह सकता। कवि इस भूतार्थ का प्रमाण है वह अवकाश में भी खिले हुए कमल देख लेता है। कवि परिभू है। उसकी मनीषा का प्रकाश वहाँ तक भी पहुंच जाता है—

To see a world in a grain of sand.
And a heaven in a wild flower.

—William Blake

एक सिकता-कण में हम सारे ससार को देख सकते हैं, वन्य पुष्प मे हम स्वर्ग को देख सकते है।

महान् व्यक्तित्व किसी अन्धकार से आवृत नही होता, उसके गम्भीर रहस्यो तक पहुंचने के लिये कोई विशिष्ट श्रम अपेक्षित नही होता। वह सुबोध होता है। उसके व्यक्तित्व के आकलन में मनुष्य के सामने दुर्बोधता की कभी कोई समस्या नही रही, जब भी मैने किसी महापुरुष के जीवन-दर्शन का प्रयत्न किया, मेरे ज्ञान-दर्पण मे वह अखण्ड रूप से सुव्यक्त हो गया। महापुरुष उस व्यक्ति की सज्ञा है, जिसकी मानवता पूर्णतया विकसित हो गई है। वह अपना बोध कराने के लिये ही तो अपना विकास करता है। मनुष्य ही नही, पशु-पक्षी भी उसकी पहचान कर लेते हैं।

भगवान् महावीर विश्व के महापुरुष के रूप मे जाने जाते हैं। जब वे अपनी मानवता का विकास कर रहे थे, तब उन्हें साधना के मार्ग पर से गुजरना पड़ रहा था। उनका लक्ष्य महान् था। इसलिये

वे विश्व-मानव का स्थान ग्रहण कर सकें। महावीर को अन्याय और हिंसा का युग मिला था। विश्व-मानव की बन्धुता को यह सह्य नहीं हुआ। उनका अपना स्वार्थ कुछ नहीं रहा। केवल परमार्थ उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। महावीर चिन्तन में चले गये। राज्य सत्ता से अन्याय नहीं मिटाया जा सकता, हिंसा का उच्छेद नहीं हो सकता। परमार्थ के यात्री राज कुमार ने मुकुट उतार कर रख दिया और उच्च साधना के कठोर-पथ पर यात्रा प्रारम्भ कर दी। सत्ता के परित्याग से महावीर ने राजनीतिक का एक आदर्श दिया। युग की बुराइयों को किसी सत्ता से रोका नहीं जा सकता। राज्य का विधान अपराधी को दण्डित कर सकता है, लेकिन वह उसे नैतिक बनाने की क्षमतायें नहीं दे सकता। चोर को कारावास या प्राण-दण्ड दिया जा सकता है। पड़ौसी के दुःख मिटाने की नीति नहीं समझा सकता। राजनीति विदों को भी इन्हीं त्रुटियों के कारण राजनीति के विषय में स्वस्थ धारणा नहीं बन पाई—

State is a necessary evil.

— राज्य एक आवश्यक बुराई है।

महावीर बुराई से बुराई को मिटाने की अज्ञानता नहीं करना चाहते थे। भारत का भिक्षुक जिसके लिये साधना-पथ पर चलता है, महावीर भी यात्रा करते हुये उस 'स्व' तक जा पहुंचा, जो पुष्कर की तरह निष्काम था। वहां न सत्ता का लोभ था, न सम्पदा की तृष्णा, न स्वर्गों की कामना।

महावीर के 'स्व' की अभिव्यक्ति, उनके जीवन की स्पष्ट अभिव्यक्ति थी। अब उस अभिव्यक्ति पर कोई आवरण नहीं था। वह अहिंसा की अभिव्यक्ति थी। उन्हें सब कोई पढ़ सकता था महावीर सबके लिये स्पष्ट थे। उन्हें पढ़ने के लिए सबसे पहले उनके पास मृग,-व्याघ्र आये। वे महावीर और उनकी अहिंसा को पढ़ कर चले गये। महावीर की अहिंसा का प्रयोग सबसे पहले यहीं सिद्ध हुआ। पश्चात् उनकी अहिंसा का प्रभाव तत्कालीन समाज में आया। समाज के धर्मानुष्ठानों,— क्रिया-कलापों में जो हिंसा थी, उससे लोगों के हृदय पीड़ा से आंदोलित होने लगे। हिंसात्मक प्रयत्नों के प्रति समाज

में विद्रोह खड़ा हो गया। जनता ने स्पष्ट कहना पड़ा—जिस वेद में हिंसा है, वह हमें मान्य नही, जो देव हिंसा से प्रसन्न हों, वे हमें नहीं चाहिएं। हिंसा-समर्थक आगम का हम बहिष्का ̕ करते हैं। हिंसा प̕कब्राह्मण-धर्म को महावीर की अहिंसा ने अहिंसा-परक बनाया। राजा ̕न्तीदेव के समय चर्मवती नदी का इतिहास, ब्राह्मण-धर्म की घोर अहिंसा का इतिहास है। गौतम आदि ब्राह्मणों ने महावीर की सर्वज्ञता, उनके अहिसा धर्म को पढ़ा, वे प्रभावित हुये। उन्होंने ब्राह्मण-धर्म हिंसा को अवैध घोषित कर दिया। 'अहिंसा परमोधर्मः' सबको स्वीकृत हुआ। जैन धर्म और ब्राह्मण-धर्म में कलह का का ̇ण हिंसा थी। गौतम आदि ब्राह्मण वर्ग ने स्वयं भगवान् महावीर की अहिंसा का नेतृत्व अपने हाथ में लिया।

भगवान् महावीर और उनकी अहिंसा को जानने के प्रयत्न सारे भारत में प्रारम्भ हो गये। आज भी उन पर राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय विद्वानों के द्वारा शोध ओर विश्लेषण हो रहे हैं। महर्षियों द्वारा उपदिष्ट अहिंसा के साथ महावीर और उनकी अहिंसा का तुलनात्मक अध्ययन भी संसा ̕ के विद्वानों द्वारा हो रहा है। बाइबिल में (Do not kill) किसी का खून मत करो; यहीं तक अहिंसा सीमित है। इसी तरह संसार के सभी धर्मों मे हिंसा का निषेध है। बौद्धों में भी हिसा का निषेध हुआ, परन्तु उनके यहां हिसा की कोई स्पष्ट व्याख्या नही, इसी कारण भारत से बौद्धों का पलायन हुआ। जैन धर्म में अहिंसा प्रारम्भ से ही है। इस तत्त्व को समझने की त्रुटि से बौद्ध-धर्म अपने अनुयायी चीनियों के रूप में सर्व-भक्षी हो गया। ब्राह्मण आदि जातियों के कुत्सित खान-पान पर भी जैन धर्मानुयायियों का प्रभाव पड़ा। उन जातियों को मदिरा-निषेध को अपना आचार-नियम बनाना पड़ा। भारत का महान् राजनीतिक चाणक्य भी जैन धर्म के आचार से प्रभावित हुआ। उसने भी दयाहीन धर्म को अमान्य कर दिया—त्यजेद्धर्मं दया-हीनम्। महावीर और उनकी अहिंसा के प्रति से समादृत उद्‌गार, लोकमान्य तिलक के हैं, जिसने महावीर और उनकी अहिसा को समझने का प्रयत्न किया।

दूसरे विद्वानों का अभिमत है, कि दया और अहिंसा की सत्य प्रीति ने जैन धर्म को उन्नत किया। उसे चिर-स्थायी बनाया। जैन

धर्म से प्रभावित ब्राह्मण धर्म को अहिंसा-पालन की आवश्यकता पड़ी, तो यज्ञों में पीठी से बने पशु की आहुति दी जाने लगी। महावीर का अहिंसा सिद्धान्त सर्वमान्य हो गया ब्राह्मणों को भी मान्य हो गया। ब्राह्मण-धर्म में एक त्रुटि और थी। चारों वर्गों को धर्म के समान अधिकार न थे। यज्ञाधिकार केवल ब्राह्मणों को था, शूद्रों की दुरवस्था थी। मुक्ति-मार्ग सर्व-जन के लिये न था। महावीर भगवान् ने इस त्रुटि को दूर किया। वेदान्त के अधिपति शंकराचार्य ने भी अहिंसा को धर्म का स्वरूप माना।

भारत के दार्शनिक कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने जैन धर्म को एक वास्तविक सत्य मानते हुए कहा है—भगवान् महावीर ने डिन्डिम नाद से भारत में ऐसा सन्देश फैलाया कि धर्म एकमात्र रूढ़ि नहीं है, परन्तु वास्तविक सत्य है। मोक्ष बाह्य क्रिया-काण्ड से नहीं मिलता है, सत्यस्वरूप धर्म-पालन से मिलता है। धर्म और मनुष्य में कोई स्थायी भेद नहीं रह सकता। इस शिक्षा ने समाज में घर करके बैठी हुई भावनारूपी विघ्नों को त्वरा से भेद दिया और देश को वशीभूत कर लिया---प्रभाव-बल से ब्राह्मणों की सत्ता समाज से लुप्त हो गई थी।

स्वामी विरुपाक्ष वाडियार धर्मभूषण ने 'अर्हत्' देवता के लिए जो श्रद्धाञ्जलि अर्पित की, वह बड़ी श्रद्धा से परिपूर्ण है—

ईर्ष्या-द्वेष के कारण धर्म-प्रचार को रोकने वाली विपत्ति के रहते हुये भी जैन शासन कभी पराजित न होकर सर्वत्र जय-श्री प्राप्त करता रहा, इस प्रकार जिनका वर्णन है, वह 'अर्हद' देव साक्षात् परमेश्वर (विष्णु) है। इसके प्रमाण भी आर्य ग्रन्थों में पाये जाते हैं।

'पाश्चात्य संसार भी जैन-धर्म की अहिंसा-संस्कृति को अपने देशों मे ले जाने के इच्छुक बने। डा० जौली, संस्कृत प्रोफैसर बर्नबर्ग, जर्मन यूनिवर्सिटी, कहते हैं'--

"जैन धर्म की उपयोगिता को सर्वांगीणतया पाश्चात्य विद्वानों को स्वीकार कर लेना चाहिए।"

भारतवर्ष का अधःपतन जैन धर्म की अहिंसा से नहीं हुआ। उसका जो कारण रहा, उसे पाश्चात्य विद्वान् (Reverend J. Stevenson) अपने शब्दों में प्रकट करता है –

भारत का पतन अहिंसा-सिद्धान्त से नहीं, बल्कि जब तक भारत में जैन धर्म की प्रधानता रही, तब तक उसका इतिहास स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने योग्य है। भारत के ह्रास का प्रमुख कारण परस्पर की प्रतिस्पर्धा और अनैक्य है।

एक ने नहीं, अनेकों ने महापुरुष (महावीर) व उसके सन्देश को समझा। पूर्व ने जाना पश्चिम ने पढ़ा, आसमान ने देखा, पृथ्वी ने पहचाना, इसलिये हम भूल न करें, यह कहने की—वह गम्भीर है, अगम्य है, अनिर्वचनीय है, क्योंकि वह बिलकुल सुस्पष्ट है, सुव्यक्त है।

□□

तप-त्याग का सन्देश वाहक :
पर्वराज पर्युषण

○ ○

पर्युषण पर्व, पर्वाधिराज है। यह भारत की अखण्ड आध्यात्मिक चेतना का आदि स्रोत है। सम्प्रदाय, जाति, भाषा, व्यक्ति इसमे कही बाधक नही बनते ! वर्षा-ऋतु प्रकृति की सर्वाधिक सुखद ऋतु है। किस प्रकार लोक-विश्वासों के आधार पर यह जन-जन मे श्रद्धा का आधार बनी। श्रमण-परम्परा अन्तर की यात्रा करती है। यह आस्था वर्तमान में पर्युषण पर्वाधिराज पर केन्द्रित है। इसी सत्य की उपलब्धि है इस विचार निबंधन मे।

—सं०

○ ○

पर्युषण पर्व साधारण भौतिक उत्सव नही है। यह एक आध्यात्मिक पर्व है, जिसका सम्बन्ध किसी विशेष सम्प्रदाय से नहीं है। यह समस्त भारत का सांस्कृतिक पर्व है; क्योंकि यह श्रमणों का पर्व है। भारतीय संस्कृति मूलतः श्रमणों की संस्कृति है। भारत में आगन्तुक आर्यों की भोग-प्रधान एवं यज्ञ-प्रधान संस्कृति से भी श्रमण-संस्कृति भारतीयों की प्राचीनतम संस्कृति है। सिन्धुघाटी से उद्धृत ध्वंसावशेषों एवं खण्डहरों से यह सत्य सिद्ध एवं प्रमाणित हो चुका है। जिन वर्षा के दिनों में पर्युषण पर्व मनाया जाता है, उन्हीं दिनों में सउण (श्रमणों) की पूजा-उपासना करने की प्रथा भारत में प्रचलित थी। इस अवसर पर श्रमण-वर्ग प्रजा को तप-संयम का उपदेश देते थे। आज भी इन दिनों श्रमणों का संयम-परायण जीवन जनता के सामने

रखा जाता है। साधु-साध्वियां जहां भी वर्षावास कर रहे होते हैं, वहां अन्तकृत् सूत्र के द्वारा श्रमण एवं श्रमणियों के जीवन का पाठ पढ़कर जनता को सुनाते हैं। श्रमण स्वयं तप-त्याग का प्रतीक है। भारत की संस्कृति तप-त्याग है। अतः श्रमण भारत के सांस्कृतिक नेता हैं। पर्युषण पर्व को समाज की सीमित परिधि से निकाल कर उसे राष्ट्रीयता का व्यापक रूप देना अपेक्षित है। इससे देश की जनता में तप-त्याग की भावना तैयार होगी। देश को पतन की ओर जाने से रोकने के लिए उसकी जनता में तप-त्याग एवं संयम के प्रकर्ष के प्रति श्रद्धा उत्पन्न करना जरूरी है।

किसी देश के पतन का इतिहास जब देखते हैं, तो यही मालूम होता है, कि वहां की जनता तप-त्याग को जीवन से अलग कर देती है, तो उस राष्ट्र का पतन हो जाता है। रोम कभी सभ्यता की ऊंचाई माप चुका था, उसका पतन इसीलिए हुआ था, कि वहां के लोग फैशन में पड़ गए थे। वे यह भूल गए थे कि जीवन का वास्तविक सौन्दर्य तो चरित्र है। उनका वेषभूषा के प्रति इतना कदाग्रह हो गया था कि वे फैशन में उन्मत्त हो कर कहने लगे थे—

In my own country my name and in a strange country my clothes procure my respect.

मेरे अपने देश में मेरा नाम और दूसरे देशों में मेरी वेष-भूषा मेरी प्रतिष्ठा बढ़ाते है।

पर्युषण पर्व को राष्ट्रीय रूप देने की इसलिए आवश्यकता है कि यह राष्ट्र की उन्नति के उद्देश्य की पूर्ति करता है। यह महापर्व तप-त्याग का सन्देश लेकर आता है। तप-त्याग राष्ट्र की उन्नति और व्यवस्था के आवश्यक सिद्धान्त हैं। जिन सम्राटों द्वारा भारत की जनता शासित हुई हैं, उन्हें भी राज्य की सुव्यवस्था के लिए तप से जीवन को तपाना पड़ता था। जितने भी तीर्थंकर हुए हैं, वे सब सम्राट् थे। उन्होंने सम्राट् से अपने जीवन को तीर्थंकर के रूप में बदला। इस महान् परिवर्तन से उन्होंने बतलाया, कि प्रजा के हित

[illegible] के लिए सम्राट् [illegible] धारण करना ही पर्याप्त नहीं है, उसके लिए उसे तपस्यायें भी करनी पड़ती हैं। सारे जीवन को साम्राज्य में व्यतीत कर देने को वे नरक का जीवन मानते थे। अर्थात् जो सम्राट् अपनी प्रजा के लिए तपोमय जीवन नहीं अपना सका, उसे नरक का अभिशाप मिला।

भारत के सम्राट् इससे बचने के लिए राज्य से अनासक्त होकर किस तरह वनों में जाकर तपस्वी जीवन व्यतीत करते थे, भारत का कवि सम्राट् कालिदास अपने रघुवंश महाकाव्य में रघुकुल के राजाओं की कठोर चर्या की साक्षी देते हुए कहता है—

तमातपक्लान्तमनातपत्र-
माचारपूतं पवनः सिषेवे।

उपर्युक्त काव्य-शब्दों में राजा के जीवन में होने वाली स्वतन्त्रता की सुखद अनुभूति का निर्देश किया गया है, कि राजा के सर पर कोई छत्र नहीं है, धूप में क्लान्त है, लेकिन आचार से जीवन पूत है, सुखद वायु उसका ताप दूर कर रहा है।

राजा राज्य में रहता हुआ राज्य का भोग करता है, लेकिन मुनि राज्य के भोगों का त्याग करता है। भारत के सिंहासन पर वही बैठ सकता है, जो भोग का त्याग कर सके। जब देश में अव्यवस्था आने लगती है, तो शासकों को कितना बड़ा त्याग करना पड़ता है। इसके लिए रामायण का इतिहास हमारे सामने है। राम और भरत ने कितना बड़ा त्याग किया है। जब राम के सर पर मुकुट रखा जाने लगा, तो एक विरोध खड़ा हो गया। उस समय राम ने सर पर मुकुट रखने से इन्कार कर दिया और विरोध के शान्त होने तक राम ने बनवासी जीवन व्यतीत करने की प्रजा में घोषणा कर दी। ऐसी परिस्थिति में राजा के बिना राज्य में अराजकता की सम्भावना खड़ी हो गई। तब भरत के सर पर मुकुट रखने का एकमत होकर निर्णय कर लिया गया। भरत के लिए राज्याभिषेक की घोषणा प्रजा से कर दी गई। भरत के सामने भी एक समस्या खड़ी हो गई। जिस राज्य का त्याग बड़े भाई ने किया है,

उसका उपभोग मैं कैसे कर सकता हूं ? भरत ने कहा—राम के होते हुए मेरा सिंहासन पर बैठना न्याय नहीं है । इस पर प्रजा के अनुरोध से भरत ने सन्यासी बनकर बिना राज्याभिषेक के राज्य सिंहासन पर बैठना स्वीकृत कर लिया और राम के वन से वापिस लौटने तक सन्यासी के रूप में हो राज्य का संचालन करते रहे ।

महावीर ने गृह त्याग करके प्रवज्या ग्रहण की, तब से महावीर वनों, खण्डहरों, गिरिगुहाओं मे निवास करने लगे । लोग उनके रूप सौन्दर्य से मुग्ध होकर पूछा करते—आखिर तुम हो कौन ? इतने सुन्दर होते हुए निर्जन वनों मे वृक्ष-लताओं के नीचे, तुम क्यों निवास करते हो ? क्या तुम्हारा अपना कोई घर नहीं है । इन सभी प्रश्नों के लिए महावीर का एक ही उत्तर था—मैं भिक्षुक हूं । यह उनकी तपःपूत साधना से निकला हुआ उत्तर था । मैं यह उत्तर उनके अन्तस्तल की पूर्ण अनासक्ति को भीतर से बाहर उंडेल रहा था । ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो उन्हें अपने साधना-काल मे अपने परित्यक्त सम्पन्न समृद्ध वैभव की कभी याद भी नही आई होगी ? राजकुमार महावीर ने अपने अनासक्त जीवन से देश की तत्कालीन जनता मे एक महान् क्रान्ति ला दी थी, कि राजपुत्रों का प्रजा पर शासन के लिये सर पर मुकुट धारण करना कोई ज़रूरी नही है । प्रजा का शासन विना मुकुट के भी हो सकता है । अतः पृथ्वी पर जन्म लेने वाले मुकुट-मण्डित सम्राट् तो हमारी आंखों से अदृश्य हो गये, लेकिन महावीर, बुद्ध अभी भी हमारे श्रद्धापूर्ण नेत्रों के सामने हैं ।

देश की संस्कृति एव धर्म के लिये महावीर ने जिनका आह्वान किया वे श्रमण कहलाये । महावीर के इस महान् प्रयत्न में स्त्रियो ने भी सहयोग दिया । वे श्रमणियां कहलाई । इस पवित्र सहयोग मे प्रासादो से लेकर तृणकुटीर में रहने वाली सभी तरह की जनता थी । धन्य और शालिभद्र जैसे इभ्य विशाल वैभवपति कुबेरकल्प और चन्दनबाला-जैसी असूर्य-पश्यायें महावीर के महान् प्रयत्न को सफल बनाने के लिये संयम के कठोर पथ पर जीवन यात्रा करती हुई श्रम करने लगी । इसलिये भारत की जनता, इन्हें श्रमण या श्रमणी

कहने लगी। भारत की जनता इन्हें बड़ी श्रद्धा से देखने लगी। जनता ने सम्राट् की अपेक्षा इन्हीं श्रमणों को अपना नेता माना। यह पर्युषण पर्व इन्हीं श्रमणों की याद दिलाता है, जिन्होंने देश के सांस्कृतिक उत्थान में अपने-अपने तप-त्याग का पूर्ण सहयोग प्रदान किया। अतः पर्युषण पर्व श्रमण-संस्कृति का महान् पर्व है। यह नैतिक परम्पराओं और बलिदानों का पर्व है। हमारे आगम इनके बलिदानों की साक्षी दे रहे हैं। धन्य और शालिभद्र का तप, मनुष्य के मन में श्रद्धा की आर्द्रता पैदा कर देता है। वे तब तक तप करते रहे, जब तक उनके जीवन का प्रकाश बाहर प्रस्फुरित नहीं हुआ। अततःइनकी आत्मा का तेज उभरकर ऐसे बाहर आया, जैसे काष्ठ-खण्ड में छुपी हुई अग्नि बाहर आ जाती है। जनता उनके दर्शन से आत्मा और शरीर के भेद-विज्ञान को समझ रही थी। यज्ञयाग और देवी-देवों की कल्पना में उलझे हुए जन-मानस ने इनके दर्शन से ज्ञान, चिन्तन-मनन के क्षेत्र में एक बड़ी क्रान्ति की। इन आत्म-मार्ग के पथिकों को ही अपना देव मान लिया और यज्ञ के देवो को मानने से इन्कार कर दिया, फिर यज्ञ-याग और देवों की परिभाषा ही बदल दी गई और प्रत्येक उत्सव, महोत्सवों मे होने वाले हिंसक अत्याचार अवैध, अनैतिक, पापमय घोषित कर दिये गये। इस तरह भारत की विचार-धारा दो भागों में बंट गई। एक ब्राह्मण-संस्कृति, दूसरी श्रमण-संस्कृति। पहली यज्ञ-याग की संस्कृति थी, दूसरी तप-त्याग की संस्कृति थी। तप-त्याग के सामने यज्ञ-याग टिक नही सके। परिणाम यह हुआ कि श्रमण-संस्कृति के सामने ब्राह्मण-संस्कृति को अपना सर झुकाना पड़ा। वैदिक परम्परा को मानने वाले इन्द्रभूति गौतम आदि बड़े-बड़े विद्वान् जीवन की नई दिशा प्राप्त करने के लिये महावीर की शरण में आये। वेदों के युग में मानवीय ज्ञान की एक और भी उत्क्रान्ति आई थी जिन्हें हम उपनिषद् कहते हैं। उस समय जो वेद ज्ञान छन्द के रूप में ढका हुआ था, उसे जनता के सामने लाने का यह एक प्रयत्न था। वे उपनिषद् एक ऊंचे चिन्तन थे। वैदिक अन्धविश्वास की परम्पराओं का, यज्ञादि कुप्रथाओं का कैसे अन्त हो, यह सोचा गया? अतः जिन श्रमणों को

हमने देवता की महत्वपूर्ण दृष्टि से देखा है, जिन्होंने हमें नया चिन्तन दिया, उन्होंने भारतीय जनता में और अपने जीवन में क्या और कैसे क्रान्तियां कीं, यह सब सोचने समझने के लिए ही पर्युषण महापर्व का निष्कर्ष है ? जिन महापुरुषों की पुण्य-स्मृतियां, मनाते हैं, उसका अर्थ यही है, कि देश अथवा समाज के लिए उन्होंने जो तप-त्यागमय सत्प्रयत्न किये, उन्हें अपने आचरण में लाते हुए, सतत जीवित रखना ।

पर्युषण का वास्तविक रूप 'पर्युष्ण' है । यह इसका संस्कृत रूप है । प्राकृतशैली से पर्युषण का 'पज्जुसण' रूप है । जैसे अत्युष्णम्, का अच्चूसण । प्राकृतशैली में संयुक्त 'ष्' और 'ण' अलग-अलग बोले जाते हैं । अर्थात् हलन्त के रूप में नहीं बोले जाते । आज कल पर्युषण के अर्थ हैं—ऊष्मागम, ऊष्णोपगम, ऊष्ण, ग्रीष्म, उष्मक, तप और निदाघ । ये ग्रीष्म ऋतु के नाम हैं । ग्रीष्म ऋतु ज्येष्ठ और आषाढ़ मास में आता है । आषाढ़ में सूर्य का सन्ताप प्रचण्ड हो जाता है । सूर्य आकाश से अग्नि-वर्षा करने लगता है । आकाश और पृथ्वी का सारा अन्तराल अग्निसात् हो जाता है । पर्युषण का अर्थ भौतिक सन्ताप तक ही सीमित नहीं है । इसका लक्ष्य उस ताप से है, जिसमे आत्मा को भव परिभ्रमण करना पड़ता है वह ताप है । व्यक्ति के अन्तस्तल में रही हुई आकांक्षायें कभी तृप्त नहीं हो सकती । आकाँक्षायें अतृप्ति का जीवन है । महावीर ने यही कहा था, कि आकांक्षाओं में अतृप्ति का दोष रहा हुआ है । अतृप्ति से मनुष्य आकुल, दुःखी और सन्तप्त हो जाता है । भारत की जनता ने महावीर की वाणी सुनकर तृष्णा के मार्ग को त्याग दिया । उसने तृष्णा-जन्य सन्ताप का अनुभव कर लिया था । इसीलिये शान्ति के मार्ग पर अवतीर्ण होने के लिये उसे स्वर्ग-सदृश वैभव से सदा के लिये मुंह मोड़ते हुए जरा भी संकोच नहीं हुआ और शान्ति की उपासना के लिये महावीर के समक्ष आ कर लोग कहने लगे—

आलित्ते णं भंते लोए,
पलित्ते णं भंते लोए ।

"भंते ! यह संसार आदीप्त है, प्रदीप्त है । चारों तरफ़ अग्नि" ज्वाला में जल रही है ।

लोग यह कहकर शान्ति की उपासना के लिये महावीर के अन्तेवासी बन जाते हैं और अपने परित्यक्त कुटुम्ब-परिवार और वैभव को कभी याद भी नहीं करते । यह पर्व तृष्णा के मार्ग को छोड़ देने का अपूर्व क्षण है । तृष्णा जीवन की अंतर्ज्वाला है । उसे बुझाये बिना मनुष्य का जीवन कैसे शान्त हो सकता है ? हाथ पर अग्नि रखने से कभी सुखद अनुभूति नहीं हो सकती, प्रतिकूल अनुभूति से मुक्ति के लिए हाथ से अग्नि का संपर्क दूर कर देना होगा । इसी तरह मानव-हृदय में जब तक तृष्णा की आग जलती रहेगी, तो शान्ति कैसे मिल सकती है ? शान्ति के लिए तृष्णा की अग्नि से सम्पर्क हटा देना ही पड़ेगा । पर्युषण शब्द के साथ जो 'पर्व' शब्द जोड़ा गया है, उसका यही अर्थ है, कि जिससे जीवन दग्ध हो रहा है, उस तृष्णा की अग्नि को पहचाने, उसके परिणाम का विवेक, ज्ञान प्राप्त कर उसे छोड़ने का प्रयत्न करें और जीवन में रहे असीम आनन्द की अनुभूति करें । अर्थात् पर्युषण से यह समझें कि दुःख क्या है और उनके क्या कारण हैं ? पर्व, जिसका अर्थ आनन्द है, उससे आत्मा की असीम शान्ति का मार्ग तलाश कर दुःख और उसके कारणों का उच्छेद कर डाले । शान्ति, आनन्द आत्मा की अनुभूति है । इसे पाकर मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है । पर्युषण पर्व आत्मानुभूति का विराट् पर्व है, कोई साधारण उत्सव नहीं है । साधारण उत्सव भोग-विलास के उत्सव होते हैं । उसमें शरीर सजाये जाते हैं, इन्द्रियों को उन्मुक्त कर दिया जाता है, मन के बन्धन ढीले कर दिये जाते हैं । परिणामतः इन्द्रियां क्षीण हो जाती हैं, मन दुर्बल हो जाता, शरीर रुग्ण हो जाता है । अन्तिम क्षणों में जीवन का सारा उपकरण अस्त-व्यस्त हो जाता है । लेकिन आत्मा तो ध्रुव है । पर्युषण पर्व के दिनों में ध्रुव जीवन के लिए आत्मा की उपासना की जाती है ।

पर्युषण पर्व आत्म-दर्शन का प्रतीक है । यह पर्व आत्म-निरीक्षण के महान् कर्तव्य को मनुष्य के सामने प्रस्तुत करता है । पर्व का

अर्थ गांठ भी होता है। गांठ एक जोड़ होती है, जो किसी वस्तु के दो भागों के बीच में होती है। यह दोनों भागों का सन्धान करता है। इस दृष्टि से यह पर्व पूर्व और पश्चात् के जीवन का संगम है। यहां आकर यात्री को जीवन के दोनों भागों पर दृष्टि डालनी है। पूर्व के जीवन को देखना है, कि वह कैसा रहा हुआ है। यदि जीवन का अतीत सुन्दर है, तो आगे का जीवन भी सुन्दर बन सकता है। अतः जीवन के अन्तिम क्षण पर ही सारे जीवन की सफलता रही है। उसी से सारे जीवन का अनुमान लगाया जाता है, कि सारा जीवन कैसा रहा? अतः पर्युषण पर्व से आत्म-निरीक्षण को स्थान देना है। आत्म-दर्शन की प्रक्रिया को प्रतिदिन भोजन की तरह आवश्यक समझना है। जैसे हमारे जीवन में भोजन का स्थान है उससे भी अधिक आत्म-निरीक्षण को स्थान देना है। आत्म-निरीक्षण मानव जीवन की प्रक्रिया है। भोजन पशु जीवन की प्रक्रिया है। अतः मनुष्य में मनुष्यत्व और पशुत्व दोनों रहे हुए हैं। ऋषि-मुनि निर्देश करते आये हैं, कि मनुष्य को हर रोज अपने आचरण की परीक्षा करते हुए निरीक्षण करते रहना चाहिए, कि उसमें कितना पशुत्व है, कितना मनुष्यत्व है। वैसे मनुष्य और पशु का भेद नहीं किया जा सकता, परन्तु आत्म-निरीक्षण से मनुष्य अपने पशुत्व को मनुष्यत्व में बदल सकता है और फिर और भी ऊंचे उठ सकता है। जिसे हम देव कहते हैं। देव मानव-जीवन की पराकाष्ठा है। ये देव आत्म-द्रष्टा होते हैं; जिसका संसार को देखने का दृष्टिकोण इतना ऊंचा उठ जाता है कि वे शत्रु-मित्रआदि सभीद्वन्द्वों से मुक्त हो जाते हैं। इन द्वन्द्वों से मुक्त हो जाना ही मनुष्य की मुक्ति है। जिन महान् पुरुषों की जीवन-गाथायें हम पर्व के दिनों में सुनते हैं, उनका संसार के प्रति यही दृष्टिकोण रहा था। इसी से उन्होंने संसार के द्वन्द्वों से मुक्ति प्राप्त की। अतः यह पर्व आत्म-निरीक्षण के द्वारा व्यक्ति को मुक्ति प्राप्त करने का सन्देश देता है।

□□

ये तृणकुटीर !
जहां भारत ने दीपमालायें जलाईं

○ ○

तृणकुटीर और प्रासादों का अन्तर, कहने व सोचने के लिए सामान्य बात लगती है। गुरुदेव इस तृण-कुटीर-निर्माण को क्या समझते है ? हमारी और उनकी चिन्तन-प्रक्रिया में अन्तर को आप पढ़ कर ही तो जानेंगे ?

—सं०

○ ○

तृणकुटीर भारत की सभ्यता और संस्कृति के प्रतीक मा जाते हैं। इन तृण-कुटीरों को हमने जिस श्रद्धा से देखा है, धवल प्रासादों को उतनी ही अश्रद्धा से देखा है। तृण-कुटीरों से भारत क जो उपलब्धियाँ मिलीं, वे विलासी प्रसादों से नहीं मिलीं। तृण कुटीरों की शान्त-प्रशान्त छाया में मानव-जीवन उन्नत हुआ, अनेक दर्शन उत्पन्न हुए, धर्म का सर्जन हुआ, मानव-जीवन आलोकित हुआ सारी दुनिया को उन्हीं से प्रकाश मिला। जिन्होंने इन कुटीरों मे अपना आलोक देखा, वे उनके उज्ज्वल नक्षत्र थे, जो सारी दुनिया को आलोक प्रदान करते रहे।

भगवान् महावीर भी इन्हीं कुटीरों के एक उज्ज्वल नक्षत्र थे। उन्हें धवल प्रासादों के लिये अश्रद्धा हुई। वे प्रव्रजित होने के लिये

ज्ञातृखण्ड वन में आ गये। महावीर के चारों तरफ परिजन खड़ा था। वे परिजन के सामने मुकुट उतार कर फेंक रहे थे, रत्नावलियों के स्वर्णिम सूत्र तोड़ रहे थे, कर्ण-कुण्डलों को कानों से अलग कर रहे थे, हाथ के कंकणों के बन्धन शिथिल कर रहे थे। महावीर वहाँ से चलने को तैयार हुए। नन्दीवर्धन रो पड़े, यशोदा रो पड़ी, ज्ञातृ-वंशीय रो पड़े। नन्दीवर्धन कह रहे थे—वर्धमान, मैं अबन्धु होकर घर कैसे लौटूं? यशोदा कहने लगी—मैं सनाथ होते हुए अनाथ होकर कैसे घर लौटूं? ज्ञातृपरिजन कहने लगा—हम कुलदीपक के बिना शून्य गृहों की ओर कैसे लौटें? पर महावीर ने इन सब मृदुल स्नेह के बन्धनों को तोड़ दिया। पीछे मुड़कर नहीं देखा। क्या हो रहा है? कठोर बन्धनों को तोड़ना सरल है, पर मानव के लिये मृदुल-तरल बन्धनों को तोड़ना कठिन है। मृदुल बन्धनों में कितनी शक्ति रही हुई है, रवीन्द्रनाथ टैगोर कहते हैं—"स्त्री! तूने अपने आंसुओं से सारे संसार को इस तरह घेर रखा है, जैसे सारी पृथ्वी को समुद्र घेरे हुए है।"

यशोदा के उन तरल अश्रु-बिन्दुओं में कितनी शक्ति थी? उससे भी अधिक शक्ति महावीर में थी, जो उस बन्धन को तोड़ चले, जिसका निर्माण नारी की मृदुल-अश्रुधारा से हुआ था। ज्ञातृवन से चलकर महावीर प्रथम वर्षावास (चातुर्मास) के लिये मोराक सन्निवेश के दुईज्जन्त आश्रम में आये। आश्रम के कुलपति से आज्ञा लेकर एक पर्ण-कुटी में महावीर ठहर गये। महावीर आत्मा के आलोक-दर्शन के लिये समाधिरत हो गये। भूख से पीड़ित पशु वहां आते। वे झोंपड़ी का घास खाने लगे, जिसमें महावीर वर्षावास बिता रहे थे। आश्रम के अन्य तापसों ने कुलपति से शिकायत की। कुलपति ने महावीर से कहा—"कुमार! जिस झोंपड़ी में तुम रह रहे हो, उसकी रक्षा का भार तुम पर है।" महावीर समझ गये। सोचा—मैं अनगार हूं, मैंने गृह-निवास का त्याग किया है, सब भार और जिम्मेदारियों की चिन्ता से मुक्त होने के लिये। यदि ऐसी जिम्मेदारियों का भार मुझे सहना होता, तो धवल गृहों को छोड़, इन पर्ण कुटीरों को अपना निवास-स्थान क्यों बनाता? तब से महावीर ने सोचा—ऐसी जगह रहना चाहिये, जो सभी दायित्वों एवं चिन्ताओं से मुक्त हो।

सुसाणे सुन्नगारे वा,
रुक्खमूले व एगओ ।

- श्मशान, शून्य गृह (खण्डहर), वृक्ष का मूल, और वहां भी केवल अकेला ।

महवीर ने आत्म-साधना के लिये इन तीन स्थलों को चुना । इन्हीं में साधना के अन्त तक, कैवल्य का आलोक जब तक प्राप्त नहीं हुआ, निवास करते रहे ।

साधु-समाज को महावीर की इस प्रथम घटना से शिक्षा लेनी चाहिये । यदि वे आज अनगार है—तो आज के कोलाहलपूर्ण स्थानो का निवास त्याग कर, एकान्त-शान्त स्थलो में रहने का स्वभाव तैयार करें और जीवन को आलोकित करने के उद्देश्य से इन्हीं को अपनी साधना का स्थल बनाये ।

श्मशान आदि स्थलों में रहने पर भगवान् महावीर को कितने उपसर्ग आये ? उन्होंने उन उपसर्गों को कैसे सहा ? महावीर की यह कठोर चर्या सबके सामने है । इन्हीं उपसर्गो की तितिक्षा-शक्ति से महावीर में अभयत्व की साधना हुई, इससे उनमें पूर्ण अहिंसा का, सत्य का विकास हुआ । अत: उपसर्ग या आतंक जीवन के अभिशाप नहीं हैं, ये जीवन के वरदान होते है, उन्ही से जीवन मूल्यवान् बनता है । आज का साधक धर्म स्थानों में निवास करता है । ये धर्म स्थान राज-प्रासादों से किसी भी तरह कम नही होते । अत: देखा जाता है, इन में साधु का जीवन अशान्त एवं चिन्ताकुल रहता है । न यहां अहिंसा की साधना है, न सत्य की, न और किसी जीवन-सिद्धान्त की । ऐसे सुरक्षित स्थानों में न कोई व्याघ्र-व्याल का उपसर्ग है, न कोई और साधु-जीवन की तितिक्षा को कसने-परखने वाला आतंक । अत: वही साधु अनगार है, जो इन दीवारों के भी बन्धनों को तोड़ कर पक्षी की भाँति उन्मुक्त विहार करते है ।

अपने अनगार धर्म को सुरक्षित रखने के लिये और उसे उन्नत बनाने के लिये जागरुक होना चाहिये । महावीर के इस प्रवचन को भी समझने के लिये अपनी बुद्धि के द्वार खोल देने चाहियें —

सकवाडं पंडुरुल्लोयं,
मणसा वि न पत्थए।

किवाड वाले, सुन्दर वितान वाले आदि स्थान की भिक्षुक अनगार मन में भी आकांक्षा न करे।

महावीर के इस ऊँचे अनुभव की साधु यह कहकर उपेक्षा न करे, कि यह तो जिनकल्प की मर्यादा है। नहो, यह प्रत्येक साधु-जीवन की मर्यादा है। प्रकाश की प्रत्येक को जरूरत है। साधु को जीवन का दीप जलाना है। दीप-शिखा को धूमिल न होने देना, उसका परम दायित्व है। उसके लिये उसे चिन्तन-शील बनना है। ममता के बन्धन तोड़े बिना चिन्तन के क्षणों का मिलना दुर्लभ है। चिन्तन के लिये चाहिये—एकान्त-शान्त वातावरण। इसीलिए 'तृण-कुटीर' शब्द का प्रयोग किया गया है। भारत के ऋषि-मुनियों ने ऐसे ही एकान्त-शान्त वातावरण में अपने जीवन के दीप जलाये और भारत को प्रकाश की अमूल्य निधि प्रदान की। यह दीपावली उसी अमूल्य प्रकाश का प्रतीक है। यह दीपमालिका का उत्सव भारत में ही मनाया जाता है। उन ऋषि-मुनियों की याद दिलाता है, जिन्होंने अपनी आत्मा के दीप को जगमगाया था। इसीलिये इस देश को भारत के नाम से पुकारा जाता है।

भा ज्ञानं तस्मिन् रता यत्रेति भारतम्।

– जहां जनता ज्ञान के आलोक में रमण करती हो, उसे भारत कहते हैं।

प्रथम तीर्थंकर: भगवान् ऋषभदेव

○ ○

भगवान् ऋषभदेव वह महाज्योति है—जिससे आज मानव-समाज ज्योतित ही नहीं है जीवित भी है। मानव और मानवता दोनों नष्ट हो जाती यदि भ० ऋषभदेव ने कर्म पुरुषार्थ की बीज दीक्षा न दी होती मानव को। उसी कर्म की मशाल का प्रमाण है—मानव-समाज के हम साक्षी लोग। पढ़ देखिये ! ऋषभदेव क्यो हम,'आप सबके आराध्य है ?

—सं

○ ○

भगवान् ऋषभ देव मानव-संस्कृति के आदि ऋषि थे। वे नष्ट होती प्राकृतिक कल्पवृक्षों पर आधारित जीवन-परंपरा के क्षितिज के आदि सूर्य थे। उन्होंने अपने दिव्य चिंतन द्वारा मानव-समाज को कर्म की ऊर्जा प्रदान की, जिसके माध्यम से आज तक और आने वाले अनन्त काल तक भगवान् ऋषभदेव को ससार आदि-देव के रूप में परम आराध्य मानता आ रहा है। उसी परम शिव-रूप भगवान् ऋषभ देव का स्वरूप हम प्रतिपादित करना चाहते हैं।

जन्म तथा नामकरण : कुलकर परंपरा के अन्तिम कुलकर नाभिराज की भार्या 'मरुदेवी' की कुक्षि में भगवान् ऋषभ देव का आषाढ़-कृष्णा चतुर्थी के शुभ दिन छब्बीसवें देवलोक सर्वार्थसिद्ध से आ कर अवतरण हुआ। रानी 'मरुदेवी' ने चौदह दिव्य स्वप्न देखे,

जिनमें वृषभ, हाथी, सिंह, लक्ष्मी, पुष्पमाला, चन्द्रमण्डल, सूर्यमण्डल, महाध्वज, कलश, पद्मसरोवर, क्षीरसमुद्र, देवविमान, रत्नराशि, और निर्धूम अग्नि थे। स्वप्न देखकर रानी की निद्रा खुली और उसने पूरा वृत्तान्त राजा नाभिराज को सुनाया। राजा प्रसन्न होकर बोले—तुम महान् पुत्र की माता बनोगी। 'मरुदेवी' यह सुनकर मुदित हुई। नौ मास साढ़े सात रात्रि पूर्ण होने पर चैत्र-कृष्णा अष्टमी को अर्द्धरात्रि व्यतीत होने पर, उत्तराषाढ़ा नक्षत्र का चन्द्रमा से योग आने पर ब्रह्म महायोग में एक तेजस्वी पुत्र को रानी मरुदेवी ने जन्म दिया। पुत्र के जन्म से सभी दिशाएं आलोकित हो उठीं। समस्त वातावरण अति मुग्धकारी हो गया। चर-अचर सभी सृष्टि ने जैसे सुख की सांस ली हो। देवी-देवताओं, इन्द्रों ने जन्मोत्सव मनाया। राजा-रानी और समस्त प्रजा के द्वारा इस अद्भुत, द्युतिमान्, सर्वगुण सम्पन्न बालक का जन्मोत्सव हर्षोल्लास के साथ मनाया गया।

नामकरण-संस्कार के समय रानी 'मरुदेवी' के स्वप्नों के अनुरूप प्रथम स्थान पर प्रतिष्ठित "वृषभ" के अनुसार उनका नाम रखा गया। बालक की जङ्घा पर वृषभ का चिह्न भी था, अतः बालक का 'ऋषभ' नाम ही उपयुक्त प्रतीत हुआ। 'ऋषभदेव' नाम की महत्ता से मण्डित राज्योचित लालन-पालन में द्वितीया के चन्द्रमा के समान बढ़ने लगे। अपनी बालसुलभ चंचलता, प्रखर प्रतिभा, तथा अद्भुत लावण्य से वे सबका मन मुग्ध कर रहे थे। देवगण भी उनके दर्शन को लालायित रहते थे।

वंश-गोत्र एवं विवाह :— ऋषभदेव अपने पिता की गोद में बैठे वात्सल्य-सुख से आह्लादित थे। तभी सौधर्मेन्द्र वहाँ आये। खाली हाथ आना उचित न समझ कर वे एक इक्षुदण्ड हाथ में लेकर आये। ऋषभदेव जब लगभग एक वर्ष की उम्र के थे, सौधर्मेन्द्र की भावनाओं को परख कर, उन्होंने स्नेह के साथ इक्षु-दण्ड ग्रहण कर लिया। तब उनके वंश का नाम 'इक्ष्वाकुवंश' सौधर्मेन्द्र के द्वारा स्थापित हुआ, तथा गोत्र का नाम 'काश्यप'। भगवान् की जन्मभूमि 'इक्खाग भूमि' कहलाई।

बाल्यावस्था को पार कर ऋषभदेव किशोरावस्था में आये। तदनुरूप जन-मन को मुग्ध करते रहे। अपनी अप्रतिम प्रतिभा तथा

विशिष्ट-गुण-गरिमा के कारण वे प्रत्येक वय में गुरुतर होते चले गए। यौवनावस्था को प्राप्त होने पर समस्त कलाएं उनमें स्वतः उभरने लगी। बड़े-बड़े राजा तथा महाराजा उनके विवाह के लिए आकर्षित हुए। अन्ततः राजा नाभिराज ने सुमंगला और सुनन्दा नाम की कन्याओं से ऋषभदेव का विवाह किया। इससे पूर्व तत्कालीन समाज मे वैवाहिक प्रथा प्रचलित नही थी, वरन मनुष्य केवल नर-नारी युगल-रूप मे जन्म लेते और युवावस्था मे पति-पत्नि के रूप में सम्बन्ध स्थापित कर लेते। भगवान् ऋषभदेव द्वारा, वैवाहिक सम्बन्ध की शुरुआत करके, मानव समाज के हितार्थ वैवाहिक परंपरा को प्रचलित किया गया, जो समाज के सुधार मे वरदान सिद्ध हुई। विधिवत् विवाह-प्रथा के जनक भी ऋषभदेव ही है।

सामाजिक विकास की दृष्टि से ऋषभदेव ने सुमङ्गला और सुनन्दा के साथ वेवाहित जीवन बिताया। रानी सुमङ्गला से भरत पुत्र और ब्राह्मी कन्या पैदा हुए, तथा सुनन्दा से बाहुबली पुत्र और सुन्दरी नामक कन्या पैदा हुए। कालान्तर में सुमङ्गला ने 98 पुत्रों को जन्म दिया।

राज्याभिषेक और सामाजिक व्यवस्था :—तत्कालीन समाज बड़ी विषम परिस्थिति से गुजर रहा था। सामाजिक व्यवस्था ठीक न होने से सर्वत्र अराजकता का वातावरण बना हुआ था। जन-जीवन अस्त-व्यस्त था। किसी अवलम्बन की आशा में जनता भटक रही थी। तभी उसका ध्यान ऋषभदेव की ओर गया। अतः लोग ऋषभदेव से आग्रह करने लगे, कि वे जनकल्याण का दायित्व संभाल कर जनता को संकट से उबारें। अन्ततः ऋषभदेव ने जनता के आग्रह को स्वीकार कर राज्य सत्ता को सभाल लिया और नयी सामाजिक व्यवस्था का सूत्रपात किया। यह सब कार्य नाभिराज की आज्ञा (निर्देशन) मे हुआ। देवेन्द्र ने स्वयं इस राज्याभिषेक में सम्मिलित होकर विनीत भाव से ऋषभदेव को सम्मानित किया तथा इसी परिप्रेक्ष्य में राजधानी का नाम विनीता नगरी रखा गया, जो बाद में साकेत और अयोध्या के नाम से प्रख्यात हुई।

जन-जीवन को सुखमय बनाने के संकल्प के साथ ऋषभदेव ने सर्वप्रथम आचार-संहिता के साथ सामाजिक व्यवस्था को विधिवत् रूप प्रदान किया, जिसमें सभी अपने-2 कर्तव्यों व अधिकारों के प्रति सजग-सचेष्ट व समर्पित-भावना से संलग्न रहकर कार्य करें। ऋषभदेव ने असि, मसि, कृषि, विद्या, वाणिज्य, और शिल्प—इन षट्कर्मों से कर्मभूमि की स्थापना की। इससे सामाजिक जीवन को एक सुदृढ़ आधार मिला। लोगों की जिज्ञासा की परख कर, ऋषभदेव ने अन्य कलाओं से भी जनता को अवगत कराया। इस प्रकार सामाजिक व्यवस्था के आद्य व्यवस्थापक के रूप में वे प्रख्यात हुए।

शैक्षणिक विकास की दृष्टि से ऋषभदेव ने अपने ज्येष्ठ पुत्र भरत को पुरुष की बहत्तर कलाओं की शिक्षा दी। भरत ने अपने अन्य भ्राताओं तथा प्रजाजनों को बहत्तर कलायें सिखायीं। ये कलायें भारत की भव्यतम संस्कृति की आधार-स्तम्भ बनीं।

नारी शिक्षा की दृष्टि से ऋषभदेव ने अपनी पुत्री ब्राह्मी को लिपि तथा अपनी दूसरी पुत्री सुन्दरी को गणित-विद्या सिखाई। इन्हें चौंसठ कलाओं का बोध दिया।

प्रजापति पद पर प्रतिष्ठित ऋषभदेव ने जनता की खाद्य-समस्या का समाधान बड़ी बारीकी व सूझ-बूझ के साथ किया। अन्नोत्पादन-कला में पारंगत करने के पश्चात् ऋषभदेव ने धान्य को अग्नि से पका कर खाने व स्वस्थ रहने की शिक्षा भी दी। तत्कालीन परिस्थिति के अनुसार मानवता के सर्वांगीण विकास का सूत्रपात भगवान् ऋषभदेव द्वारा ही किया गया। मनुष्य की सबसे बड़ी आवश्यकता खाद्य समस्या के समाधान के कारण ऋषभदेव को प्रजापति कहा गया है।

सामाजिक संरचना को सुन्दर स्वरूप देने के दृष्टि से भगवान् ऋषभदेव ने चार वर्गों की स्थापना की उग्र, भोग, राजन्य और क्षत्रिय तथा राज्य संरक्षण के लिए चार प्रकार की सेना की व्यवस्था की। इसी प्रकार लोकमंगल की दृष्टि से भगवान् ऋषभदेव-द्वारा अनेक महत्वपूर्ण कार्य किए गए, जिससे जनजीवन पर उनका गहरा प्रभाव पड़ा। समष्टि रूप में उन्हें जनता का जीवन रक्षक कहा जाए

तो कोई अत्युक्ति नहीं है। इस प्रकार जन-कल्याण-हेतु वे दीर्घ काल तक राज्य संचालन करते रहे।

वैराग्य और दीक्षा—राज्य-सत्ता का वैभव-पूर्ण जीवन तो ऋषभदेव केवल जनोत्थान के दृष्टिकोण से ही व्यतीत कर रहे थे। उनका अन्तर् तो वैराग्यमय था।

प्रज्ञा-पुरुषोत्तम मुनि रामकृष्ण

भगवान् ऋषभदेव की मनःस्थिति के अनुरूप सारस्वत आदि नौ लोकान्तिक देव उनके सम्मुख उपस्थित होकर निवेदन करने लगे—महाराज! अब समय आ गया है—आपने जिस प्रकार लोक-व्यवस्था का प्रवर्तक किया है, उसी प्रकार अब धर्म-चक्र का प्रवर्तन कर धर्म तीर्थ की स्थापना करें।

ऋषभदेव का यह निश्चय तो लोकान्तिक देवों की प्रार्थना से पूर्व ही था अतः उन्होंने विशाल राज्य-सत्ता का भार अपने ज्येष्ठ पुत्र भरत को सौंपकर तथा अन्य पुत्रों को तदनुसार अन्य पृथक्-पृथक् राज्य देकर, ऋषभदेव सर्व-परिग्रह से मुक्त हो गए। दीक्षा से पूर्व वार्षिक दान उन्होंने दिया। तदनन्तर दीक्षा कल्याणक का भव्यतम आयोजन देवों सहित समस्त इन्द्रों एवं राजा भरत द्वारा किया गया। सिद्धार्थ उद्यान में पहुंचकर अशोक वृक्ष के नीचे शिलापट्ट पर पूर्वाभिमुख होकर, समस्त वस्त्राभूषण उतारकर ऋषभदेव केशलुञ्चन करने लगे। इसी समय शक्रेन्द्र का ध्यान उनके गौरवर्ण शरीर, मस्तक, केश, आदि पर गया। जब सिर के मध्य थोड़ी-सी केश-राशि शेष बची थी, तब इन्द्र ने इसे यथावत् रखने की प्रार्थना की। भगवान् ऋषभदेव ने इन्द्र की प्रार्थना स्वीकार कर अवशेष केश रहने दिए। तभी से शिखा रखने की प्रथा प्रचलित हुई। इसी परिप्रेक्ष्य में भगवान ऋषभदेव का नाम "केशी" भी प्रसिद्ध हुआ। तत्पचात् भगवान् ऋषभदेव ने इन्द्र-प्रदत्त एक देवदूष्य ग्रहण करके, छट्ट-भक्त तप से युक्त, उत्तराषाढ़ा नक्षत्र में सिद्ध भगवान् की साक्षी से समस्त अकरणीय सावद्य योगों का परित्याग करते हुए आर्हती दीक्षा ग्रहण की।

तपश्चर्या—संयम की उत्कृष्ट साधना में संलग्न ऋषभदेव, अखण्ड मौनव्रत धारण कर, एकान्त में ध्यानस्थ रहने लगे। छद्मस्थ-काल

में घोर परिषहों को सहते हुए विचरण करते—तथा अनेक कष्टों को सहन करते। कठिन अभिग्रहों को धारण करके, अनासक्त भाव से ग्रामानुग्राम विहार करते। निर्जल और निराहार तप करते हुए भी बहुत समय व्यतीत हो गया। इसी क्रम में विचरण करते हुए ऋषभदेव हस्तिनापुर पधारे, जहां श्रेयांसकुमार ने इक्षुरस से भगवान् के वार्षिक तप का पारणा कराया तथा प्रथम-भिक्षा-दाता बन, जनता को भिक्षा-दान की विधि बताई। जिस दिन भगवान् के वार्षिक तप का पारना हुआ, वह दिन वैशाख-शुक्ला-तृतीया का दिन था। यह तिथि ऋषभदेव के इक्षुरस से पारणे के कारण 'इक्षुतृतीया' अथवा भगवान की अक्षय साधना के कारण 'अक्षय तृतीया' कहलाई।

अन्ततः एक हजार वर्ष का छद्मस्थ-काल पूर्ण होने पर, विनीता नगरी के समीप, पुरिमताल नगर के बाहर, शकटमुख उद्यान में वटवृक्ष के नीचे ध्यानस्थ, फाल्गुन-कृष्ण-एकादशी के दिन प्रातःकाल के समय उत्तराषाढा नक्षत्र में चारों ही घनघाती कर्मों का क्षय करके उन्हें केवल ज्ञान और केवल दर्शन प्राप्त हुआ। तदुपरान्त देवों ने समवसरण की रचना की, जिसमें भगवान् ऋषभदेव ने धर्मदेशना दीन् व धर्मचक्र का प्रवर्तन किया। अनेक लोगों ने भगवान् के चरणों में आर्हती प्रवज्या ग्रहण की। फाल्गुन-कृष्ण एकादशी के दिन भगवान् ने साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका, चतुर्विध सङ्घ-रूप धर्मतीर्थ की स्थापना की। ऋषभदेव इस वर्तमान अवसर्पिणी काल के प्रथम तीर्थंकर कहलाए। भगवान् ऋषभदेव के सङ्घ में गणधर केवल-ज्ञानी-अवधिज्ञानी, वैक्रियलब्धिधारी, चतुर्दश-पूर्वधारी, वादी, अनुत्तर, साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका आदि बहुत अधिक संख्या में थे।

भारतभूमि में भ्रमण कर भगवान् ऋषभदेव ने धर्म की जो ज्योति जलाई, जिसका आलोक आज भी समाज को दिशाबोध दे रहा है।

इतिहास की सूर्य-किरणों में : ऋषभदेव

ऋषभदेव विश्व इतिहास में किस तरह जीवित हैं? देखें—

सिन्धु-घाटी की प्रायः छः हजार वर्ष प्राचीन सभ्यता के अवशेषों के उत्खनन से प्राप्त ध्यानस्थ योगियों की मृण्मुद्राओं से पता चलता है, कि उस काल में ऋषभदेव की साधना का प्रचलन रहा होगा?

यह साधना-उपासना यूनान, मिस्र, अरब आदि एशिया के दशों में भी प्रचलित थी।

प्रथम जिनेन्द्र, ऋषभदेव कोई मिथ्या कल्पित व्यक्ति नहीं है; प्रत्युत यौगलिक युग के मानव-समाज के आदिम सांस्कृतिक नेता हैं। इनसे पहले विश्व में मानव-समाज का कोई भी ऐसा राजनैतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक नेता नहीं हुआ। यह एक सत्य है, कि वेद, पुराण आदि भारतीय संस्कृति की प्राचीनतम निधि माने गए हैं। ऋषभदेव को ही ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि के विविध रूपों में उपवर्णित किया गया है। मार्कण्डेय पुराण में प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव की वंश-परम्परा का उल्लेख करते हुए इनके प्रपिता--पिता के पिता का भी उल्लेख मिलता है। वे प्रपिता थे अग्नीध्र। जैन वांङ्मय में ऋषभदेव के पिता नाभि कुलकर का तो उल्लेख मिलता है, परन्तु प्रपिता अग्नीध्र का कोई उल्लेख नहीं है।

कुरान में भी ऋषभदेव को आदि धार्मिक पूज्य पुरुष स्वीकृत किया गया है। वहां ऐसे पूज्य पुरुष को 'नबी' कह कर पुकारा गया है। कुरान में नबी वह है, जिसे आयत-रूप में अल्लाह का सन्देश मिलता है। वह नबी उस सन्देश को विश्व को समस्त मानव-जातियों तक पहुंचाता है। यह 'नबी' शब्द 'नाभि' का ही विकृत रूप है। इसे भाषा-वैज्ञानिक phonological variation उच्चारणात्मक परिवर्तन मानते हैं। अतः भगवान् ऋषभदेव का साँस्कृतिक, धार्मिक सन्देश किसी भी माध्यम से कुरान मानने वाले अरबों तक भी पहुंचा होगा। अरबों की भाषा अरबी है, जो संस्कृत, प्राकृत के बहुत सन्निकट है, केवल उच्चारण का अन्तर दूरी की वजह से पड़ा हुआ है। प्रत्येक दस मील के अन्तर पर शब्दों का उच्चारण बदला हुआ मिलता है। अरबों का 'अल्लाह' 'अर्हन्' से ही बना है। इसी तरह 'अक्कबर' अर्कवर से बिल्कुल मिलता है। अक्कबर का अर्थ है—सूर्य से भी अधिक प्रकाशमान।

विश्व की मूल धर्म-पुस्तकों में प्रलय जल-प्लाव का भी उल्लेख मिलता है, जिसमें इस पृथ्वी को डूबते हुए दिखाया गया है। इस

डूबती धरा को बचाने वाले एक मनु या नूह का उल्लेख किया गया है। ये मनु और नूह ऋषभदेव के अतिरिक्त और कोई नहीं हो सकते। इस जल-प्लाव के रूपक का वर्णन मानतुङ्ग आचार्य ने भी भक्तामर स्तोत्र के प्रथम काव्य में स्पष्ट कर दिया है। जल-प्लाव विशिष्ट घटना से मानतुङ्ग आचार्य ने भगवान् ऋषभदेव की स्तुति के रूप में भक्तामर स्तोत्र की रचना प्रारम्भ की है।

ईसाइयों की धर्म-पुस्तक इञ्जील है। उसमें सृष्टि की संरचना से पहले केवल एक शब्द को स्वीकृत किया गया है। वहाँ निर्देश किया गया है, कि सृष्टि से पहले केवल शब्द था। इस सृष्टि में और कुछ नहीं था। और उस शब्द के विषय में फिर कहा गया, वह मनुष्यों की ज्योति था। इञ्जील के इस उल्लेख से किसी विशिष्ट मनुष्य की अनुमिति होती है। मनुष्य के बिना व्यक्त शब्द की उत्पत्ति असम्भव है। जिस मनुष्य के शब्द से विश्व को प्रकाश मिला, वह कोई महापुरुष ही होगा, जो विश्व को अन्धकार से निकल जाने के लिए प्रकाश प्रसारित करता है। यहां भी ऋषभदेव से अतिरिक्त दुनिया को प्रकाश देने वाला अन्य कोई सर्व-प्रथम मानव नहीं हो सकता।

निर्वाण—अन्ततः कैलाश पर्वत पर माघ-कृष्ण-त्रयोदशी को, अभिजित् नक्षत्र में भगवान् ऋषभदेव ने समस्त कर्मों का क्षय करके, परिनिर्वाणपद मोक्ष को प्राप्त किया।

□□

तीर्थंकर शान्तिनाथ

○ ○

तीर्थंकर शांतिनाथ ! उनकी तो बात ही क्या है ? यह नाम संसार की वह शक्ति है जो भक्त की हृदय वसुधा पर सुख और शान्ति की, मुक्त-भाव से बखेर करती है। शान्त, शीतल व विमल भाव से शांतिनाथ की स्तुति कर देखिए, आपका मन स्वतः शील व शीतलता का आगार बन जाएगा।

—सं०

○ ○

जैन धर्म के सांस्कृतिक इतिहास में भगवान् शांतिनाथ का उल्लेख गौरव पूर्वक किया गया है। चौवीस तीर्थंकरो की निर्मल परम्परा में ये सोलहवें तीर्थंकर है।

इनके जन्म और जन्म से पूर्व का जीवन-प्रसंग जब सामने आता है तो जन-जीवन में श्रद्धा व समर्पण के भाव जाग उठते हैं। तीर्थंकर शांतिनाथ का जीवन त्याग, और निर्ममत्व भाव व नैसर्गिक वैराग्य की विमल यशोगाथा है। इसे ज्ञात कर सहज श्रद्धा जागृत हो जाती है।

जैन-जगत् का इतिहास कहता है—"तीर्थंकर शांतिनाथ एक पूर्व जन्म में मेघरथ राजा के रूप में थे। ये उस युग के महान् न्यायप्रिय व करुणाशील शासक थे। इनकी करुणा ने इन्हें उस समय भी जन-सामान्य की श्रद्धा का केन्द्र बनाया था। इसके मूल में एक जीवन्त करुणा का प्रसंग बड़ा ही हृदय स्पंदनकारी है।

एक बार ये न्यायकक्ष में चिंतन निरत थे। तभी एक आहत कबूतर उनकी अंक में आकर गिरा। कबूतर का आना था कि साथ ही साथ कपोत का शिकारी भी भागता हुआ आया। उसने राजा से कहा—राजन् ! मेरा शिकार तुम्हारे महल में आ गया है। वह मेरा भोज्य है। उसे लौटा दें।

राजा करुणा और न्याय के जीवित उपमेय थे। उन्होंने शिकारी (बहेलिये) से कहा—"जो मेरी शरण में आ गया वह मेरा हो गया। जिसने अपने आप को समर्पित कर दिया उसकी रक्षा करना मेरा धर्म है। तुम मुझसे अन्य भोज्य की अपेक्षा कर सकते हो।"

शिकारी ने कहा—"मैं मांस खाता हूं। मुझे मांस ही चाहिए।"

राजा मेघरथ ने तुला मंगवाई! एक तरफ आहत कबूतर को रख दिया। दूसरे पलडे मे अपने शरीर के अंग-प्रत्यंग काट-काट कर रखने लगा। तथापि कबूतर के बराबर राजा मांस काटकर तुला को बराबर न कर पाया। होता कैसे ? यह सब दैवी चमत्कार था। कबूतर भी देव-कृत था और शिकारी स्वय देव था।

राजा ने जब हाथ, पैर, पीठ और पेट के हिस्से काट-काट कर तराज़ू के पलडों मे रखे, तब भी कबूतर के बराबर मांस तौल पाने मे असमर्थ रहा। तब राजा ने सभासदों से कहा—शासनतंत्र और करुणा दोनों क्षेत्रों में मेरी न्याय नीति समान रूप से आज तक चलती रही है। युद्ध के प्रसंग में जो शरणागत हो जाता है वह मेरा अपना हो जाता है। उसकी सुरक्षा भी मैं उसी भाव से करता हूं। स्वतः जो शरणागत हो गया मुझसे अपने प्राणों की याचना करता है वह भी उसी कोटि में आता है। अब राज्य को तुम देखना, मै स्वयं तुला में बैठ रहा हूं। इसमें बैठने का अर्थ है—मैं शिकारी की भोज्य सामग्री बन जाऊंगा।"

यह कह कर राजा मेघरथ तुला में बैठ गए। सब कुछ दैवी चमत्कार था। दैव अपने असली स्वरूप में प्रकट हुआ। राजा से क्षमा-याचना की। कबूतर अब कबूतर न था। शिकारी भी अब

शिकारी न था। सारी अपेक्षाएं और तराजू पलड़ व राजा के कटे अंग पुनः पूर्ववत् हो गए।

मेघरथ के भव का घटनाक्रम समाप्त हो गया। इतिहास कहता है--यही मेघरथ राजा आगामी जन्म में तीर्थंकर शांतिनाथ बने।

भगवान् शांतिनाथ के जन्म एवं उनके नाम के साथ भी एक जुड़ा है। वह इतिहास आज भी जन-जन की आस्था का इतिहास केन्द्र है।

भारत के कुरु जनपद की राजधानी हस्तिनापुर में महाराजा विश्वसेन राज्य कर रहे थे। उनकी महारानी अचिरा देवी थी। एक बार महारानी ने चौदह दिव्य स्वप्न देखे। तदनन्तर राजा मेघरथ का जीव जो स्वर्ग में उत्पन्न हुआ था, देवायु पूर्ण कर महारानी अचिरा के गर्भ में आया।

कुरु जनपद में तब मृगी (अपस्मार) नामक महारोग फैला हुआ था। दिन-रात लोग मर रहे थे। प्रजा आर्तनाद कर उठी। रोग शमन का कोई भी उपाय सफल न हुआ। एक दिन जनता की पीड़ा से करुणार्द्र होकर महारानी अचिरा ने अपने गर्भस्थ शिशु का ध्यान किया और प्रार्थना की—"वत्स ! तेरे पुण्य-प्रताप से प्रजा का कष्ट दूर हो जाए। तेरा आगमन इस धरा के लिए सुख-शांतिकर हो।" तभी अद्भुत चमत्कार हुआ। जैसे आंधी, घनघोर श्यामल पर्जन्य को उड़ा ले जाती है ऐसी ही महामारी नष्ट हो गयी। जनता निरोग हो गयी। सर्वत्र मंगल व्याप्त हो गया।

ज्येष्ठ कृष्णा 13 को तीर्थंकर शांतिनाथ का जन्म हुआ। उपर्युक्त घटना के कारण इनका नाम शांतिनाथ रखा गया। युवा होने पर शांतिनाथ का अनेक कन्याओं से विवाह सम्पन्न हुआ। अन्ततः महाराजा विश्वसेन ने इन्हें कुरु जनपद का राजा घोषित किया।

एक दिन इनकी आयुध शाला में चक्र रत्न अवतरित हुआ। तदनंतर शांतिनाथ ने दिग्विजय की और छः खण्ड के अधिपति (चक्रवर्ती) बने।

अनेक वर्षों तक इन्होंने राज्य का संचालन किया। राज्य करते हुए शांतिनाथ उसमें संलिप्त न हुए ! दर्पण की भांति वे रहते थे। दर्पण में सुन्दर-असुन्दर, गीला-सूखा, अग्नि-पानी आदि सभी कुछ प्रतिबिम्बित होते हैं परन्तु वह इन सबमें असंलिप्त रहता है। प्रजा अभ्युदय एवं मंगल के लिए इनका शासन था किसी अहं या सुखभोग के लिए नहीं। इनमें आत्म-जागरण सदैव बना रहता था।

शांतिनाथ को आत्म-साक्षात करना था। अतः वे राज भवनों में कैसे रहते ? वनों में जाकर तप करना उन्हें इष्ट था। ऐसा करने से पूर्व उन्होंने जन कल्याण के लिए एक वर्ष तक निरन्तर दान दिया। तदनन्तर अपने पुत्र चक्रायुध को राज्याधीश बना कर महाभिनिष्क्रमण किया। एक हजार मित्र राजाओं ने भी शांतिनाथ का अनुगमन किया। सहस्राम्रवन में ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्दशी को इन्होंने जिन-दीक्षा स्वीकार की।

एक वर्ष तक इन्होंने कठोर तप साधना की। आत्मभाव में विचरण करते हुए ये हस्तिनापुर पधारे। यहां षष्ठ भक्त उपवास से ध्यान मुद्रा में स्थिति, पौष शुक्ल नवमी को आत्मा का अनन्त प्रकाश (कैवल्य पद) प्राप्त किया।

इन्द्रों, सम्राटों एवं प्रजाजनों ने कैवल्य महोत्सव मनाया। समवसरण की रचना की। शांतिनाथ ने उपस्थित जन समूह को धर्मोपदेश देकर धर्म-तीर्थ की स्थापना की। धर्म-तीर्थ की स्थापना से ये सोलहवें तीर्थङ्कर बने।

भगवान् शांतिनाथ के धर्म-शासन में नब्बे गणधर थे, बासठ हज़ार मुनि तथा नवासी हजार साध्वियां थी। दो लाख नब्बे हजार हजार श्रावक और तीन लाख तिरानवें हज़ार श्राविकायें थी।

भारत भू पर लम्बे समय तक तीर्थङ्कर शांतिनाथ ने विचरण कर धर्म-प्रचार किया। जन-जन को अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य अपरिग्रह की मन्त्र दीक्षा दी। अन्ततः सम्मेदशिखर पर एक मास का संथारा कर, ज्येष्ठ कृष्णा त्रयोदशी को परिनिर्वाण प्राप्त किया।

भगवान् शांतिनाथ के जन्म से पूर्व का इतिहास और जन्म के बाद का वृतान्त अलौकिक घटना का जीवंत उदाहरण है। यह क्रम परोपकार, करुणा और अनन्त स्नेह-सौहार्द का अटूट तार तम्य है। भक्त जब अपने अंतर में इन भावों का आरोपण करता है तब वह भी तीर्थङ्करत्व के महापद को प्राप्त कर लेता है।

□ □

तीर्थंकर पार्श्वनाथ

○ ○

भगवान् पार्श्वनाथ अज्ञान-अन्धकार मे क्रान्ति का बीज बनकर पृथ्वी से उगे। तब तापस परम्परा मे वे क्रान्ति-ज्वाला की तरह ऐसे प्रकट हुए जैसे वर्षों तप-रत रहने के बाद सहसा ज्ञान का तीसरा नेत्र खुल जाता है। भगवान् पार्श्वनाथ का जीवन एक तापस युग का अन्त था तो दूसरे बौद्धिक साधक जीवन का प्रारम्भ था। तापस परम्परा के उस सधिकाल मे पार्श्व प्रवर्तमान थे···जिसे हम युगसधि का सूर्य कह सकते है।

—सं०

○ ○

तीर्थंकर-परम्परा में यह सत्य ऊषा-कालीन प्रकाशमान ज्योति की तरह सुस्पष्ट है, कि उसने उस पुरुष को अपना आराध्य माना, जिसने दिव्य साधना से अपनी अनन्त ज्योति को अनावृत कर सर्वज्ञ-सर्वदर्शन की उपलब्धि प्राप्त कर ली। इस परम्परा ने किसी कल्पित शक्ति अथवा व्यक्तित्व को आराध्य मानकर तर्कहीनता से उसके सामने नत-मस्तक होने का संसार को कभी संदेश नहीं दिया। इसने अपनी श्रद्धा उस अनन्त ज्योति को अर्पित की, जहाँ उसे अपने सघन अन्धकार को दूर करने के लिये प्रकाश मिल सकता था। उसका विश्वास यही रहा, कि जलते हुए दीपक से सम्पर्क स्थापित हो जाने पर बुझा हुआ दीपक अवश्य जलते हुए दीपक तरह प्रज्वलित हो जायेगा।

तीर्थंकर पार्श्वनाथ के कल्पित होने का निराकरण करने और उन्हें आराध्य मानने के लिये ऐतिहासिक आधार प्रस्तुत करना आवश्यक हो जाता है । अतीत में क्या घटित हुआ, इतिहास उसके सत्य के विषय में अपनी साक्षी प्रस्तुत करता है ।

जन्म :

पार्श्वनाथ तेइसवें जैन तीर्थंकर थे । इनका जन्म पौष कृष्ण 10 को, तीर्थंकर महावीर से 250 वर्ष पहले, ईसा-पूर्व नवमी शताब्दी में हुआ था । पार्श्वनाथ का चिन्ह सर्प अथवा नाग का था । व्रात्य क्षत्रियों की नाग-जाति की ही शाखा उरग-वंश में उनका जन्म हुआ था । ये भी काश्यप-गोत्र के क्षत्रिय थे । काशी देश की नगरी वाराणसी के नरेश अश्वसेन इनके पिता थे । इनकी माता का नाम वामादेवी था । बाल्यावस्था से ही पार्श्व चिन्तनशील और दयालु थे ।

शौर्य :

पार्श्व युवा हुए । इनका क्षत्रियत्व शौर्यशाली था । सर्व विद्याओं में ये प्रवीण थे । एक बार इनके मामा कुशस्थलपुर (कान्यकुब्ज) के नरेश प्रसेनजित पर कालयवन नामक राजा ने आक्रमण कर दिया तब पार्श्व मामा की सहायता के लिये सेना लेकर वहां पहुंचे । युद्ध हुआ । आक्रामक को इन्होंने परास्त कर, उसे बन्दी बना, अपने शौर्य का परिचय दिया ।

वैराग्य :

तीर्थंकर पार्श्व के युग में भी अहिंसा का चित्र यज्ञों, विविध क्रिया-कलापों से विकृत हो चुका था । साधु-वर्ग भी अहिंसा के विवेक-पथ से भटक कर यज्ञों, पंचाग्नि-ताप आदि निर्विवेक हिंसक क्रिया-कलापों में संलिप्त हो रहा था । तीर्थंकर पार्श्वनाथ की नगरी वाराणसी के बाहर वन और उपवनों में तापस-साधुओं के बड़े-बड़े आश्रम स्थापित हो गये थे । वहां तापस-साधु अपने चारों तरफ़ अग्नि जलाकर अपने आत्म-विरुद्ध तपोऽनुष्ठान करते थे । उसमें जीव-जन्तुओं की अहिंसा को उपेक्षित किया जा रहा था । राजकुमार

पार्श्व के माता-पिता और वाराणसी की जनता भी प्रभावित होकर उन तापसों के अनुयायी बनने लगे। हिंसा-अधर्म का प्रचार देखकर राजकुमार को असह्य हो गया। कुमार का हृदय करुणा से आर्द्र हो गया।

एक बार की बात ! राजकुमार पार्श्व ने महल के गवाक्ष से देखा—अनेक नागरिक हाथों में विविध पूजन सामग्रियां लिये राजपथ से जा रहे थे। उन्होंने पूछा तुम कहां जा रहे हो ? जन-समूह बोला—राजधानी के बाहर एक तपस्वी आया है। वह बहुत कठोर तप:साधन करता है। हम सब लोग उसके दर्शन करने के लिए जा रहे हैं। आप भी चाहो तो चल सकते हो।

कुमार उनके साथ चल दिये। गन्तव्य पर पहुंच कर पार्श्व ने देखा—साधु ने अपने चारों ओर धूनि जला रखी है। मध्य में वह बैठा है। जन-समुदाय उसका यशोगान कर रहा था। उसे सुन, साधु अहंकार की उर्मियो में खोया है। राजकुमार ने अपनी दिव्य-दृष्टि से देखा—धूने की लकड़ियों में एक नाग-युगल जल रहा है। करुणा विगलित हो, कुमार ने उस कमठ नामक साधु को कहा—अरे तपस्वी! तुम तप तो कर रहे हो किन्तु तुम्हारा तप मात्र अज्ञान तप है। ज्ञानाभाव में तप सार्थक नहीं होता। यह सुन, अहं से उद्दीप्त तापस क्रोधित हो बोला—क्या कहते हो ? तुम्हें मेरा तप अज्ञान दिखाई पड़ता है। तुम क्या बहुत बड़े ज्ञानी हो ? क्या कमी है मेरे तप में ? पार्श्व ने बताया—तापस ! अग्नि जलाना हिंसा है। इससे अनेक सूक्ष्म एवं स्थूल जीवों की हिंसा होती है। साधु तो जीव-मात्र का मित्र होता है। छोटे-बड़े प्रत्येक प्राणी के प्राणों की रक्षा करना एवं उसका हित-साधन करना, साधु का धर्म है। अत: अग्नि-कर्म से साधु को दूर रहना चाहिए। और तुम पूछते हो क्या कमी है मेरे तप में ? सुनो तुम धूने में यह जो लक्कड़ जला रहे हो, इसके भीतर एक नाग-युगल स्थित है। लक्कड़ के साथ-साथ वह भी जल रहा है।

तापस उबल पड़ा। बोला - कहाँ है यहां नाग-युगल। तब राजकुमार पार्श्व ने उपस्थित जन-समूह के सम्मुख कुल्हाड़ा लेकर जलते

लक्कड़ को फाड़ कर, अग्नि-दाह से तड़पते हुए नाग-युगल को अपने हाथों से निकाल लिया। पार्श्व ने फिर अपनी दया के स्रोत से नाग-युगल को सान्त्वना दी और मृत्यु के अन्तिम क्षणों में उसे मन्त्रराज नमोक्कार मन्त्र का संक्षिप्त रूप 'अ-सि-आ-उ-सा' प्रदान किया। इसे नाग-युगल उच्चरित कर सकता था। इस महामन्त्र पर निष्ठा करने से नाग मर कर धरणेन्द्र बने और नागिन देवी पद्मावती बनी। इस घटना से पार्श्व के परिजन और समस्त जनता को बड़ा आश्चर्य हुआ और उनकी दयालुता से सबको अहिंसा के दर्शन मिले। यज्ञ, हिंसक विधि-विधानों से जनता में श्रद्धा का लोप हुआ। राजकुमार पार्श्व की अहिंसा पर सबकी श्रद्धा आरोपित हो गई। इस घटना से कमठ तिरस्कृत हो जल उठा। उसने प्रतिज्ञा की—मै अगले जन्म में पार्श्व से इसका प्रतिशोध अवश्य लूंगा।

जिन-दीक्षा :

इस जन-सम्मान के साथ-साथ पार्श्व के अन्तर मे एक नया अंकुर फूटा। उन्होंने सोचा—इस तापस की भाँति और भी तो अनेकों व्यक्ति होंगे, जो धर्म के नाम पर अधर्म का प्रचार कर रहे हैं। धर्म तत्व से अनभिज्ञ यह जनता उनका अनुसरण कर रही है। केवल वाराणसी के जन-वर्ग को ही नही, अपितु पूरे विश्व की जनता को सत्य का सन्देश देना चाहिए। इस हेतु पहले मैं पूर्ण प्रकाश प्राप्त करूं। तब जनता को सत्य से परिचित कराऊं। अन्य तीर्थंकरों की तरह पार्श्वनाथ का जीवन भी स्वच्छ अन्तर्दृष्टि से आलोकित था। वैराग्य-प्रपन्न पार्श्व ने एक दिन राज्य-सम्पदा का तृणवत् परित्याग कर पौष कृष्णा 11 को मुनि-दीक्षा ले ली और आत्मोपलब्धि-हेतु साधना करने के लिए एकान्त विजन वन में चले गये।

उपसर्ग :

निर्ग्रन्थ पार्श्व आत्म-साधना में निरत थे। खड़े हुए वे परम योग की साधना कर रहे थे। तभी मेघमाली देव वहां आया। यह वही तापस (कमठ) की आत्मा थी, जिसके पाखण्ड को पार्श्व ने जनता के

सम्मुख निरावण किया था। बाल-तप के कारण मर कर वह देव बना। देव ने सोचा—यह सुअवसर है। मुझे अब अपने अपमान का बदला लेना चाहिए। तब मैं असमर्थ था, किन्तु अब मैं पूर्ण समर्थ हूं। ऐसे अभिमानपूर्ण विचारों से उसने ध्यानस्थ पार्श्व का ध्यान भंग करना चाहा। इस हेतु वह सर्प, बिच्छु, सिंह, हाथी, रीछ आदि के नाना रूप धारण कर उन्हें काटने, नोचने और रोंदने लगा। निर्ग्रन्थ पार्श्व का ध्यान भंग न हुआ। इस असफलता से द्विगुणित क्रोधित होकर उसने महामेघ की सृष्टि की। आकाश श्यामल घटाओं से भर गया। घोर गर्जना होने लगी। रोमांचकारी विद्युत् चमकने लगी। तीव्र वृष्टि प्रारम्भ हो गई।

वन-प्रान्तस्थ सभी जीव, जन्तु तथा मनुष्य उद्विग्न हो गये। सबको साक्षात् मृत्यु नजर आने लगी। भय के उन क्षणों में भी पार्श्व का अन्तर निर्द्वन्द्व, निर्विकल्प था। वर्षा से पूरा वन जलमय हो गया। पानी तब भी बरस रहा था। आखिर पानी ऊपर को चढ़ने लगा। पहले घुटनो तक, फिर नाभि तक और अन्त में पार्श्व के नासाग्र तक वह पहुच गया। तब भी उनका ध्यान भग न हुआ। तभी धरणेन्द्र और पद्मावती का सिंहासन प्रकम्पित हुआ। उन्होने देखा - तीर्थंकर पर उपसर्ग है। वे तत्क्षण वहां उपस्थित हुए। धरणेन्द्र ने सप्तफण नाग का रूप धारण कर पार्श्व पर अपने फण का छत्र बनाया। शेष शरीर से उनके पांव के नीचे कुण्डली लगाकर कमलासन बनाया। पानी जितना ऊपर चढ़ा, धरणेन्द्र उतना और ऊपर उठ जाये। पानी पार्श्व को छू भी नही पा रहा था।

योगी की योग-साधना को यहां देखना है। एक ओर तो उन्हें कष्ट देने वाला 'कमठ' था तो दूसरी ओर उनकी सुरक्षा करने वाला 'धरणेन्द्र'। पार्श्व के अन्तर में उन दोनों के लिए समत्व था। न राग था और न द्वेष।

अन्ततः 'कमठ' थक गया। वह जाने लगा तो धरणेन्द्र ने उसे रोका। भगवान् का परिचय देते हुए उसे, उसकी भूल का बोध कराया। लज्जित हुआ कमठ क्षमा मांग कर चला गया।

इस तरह कठोर परीक्षा में निर्ग्रन्थ पार्श्व अडोल और अकम्प रहे। तेरासी (83) दिन तक साधना करते रहने के अनन्तर, चैत्र कृष्णा चतुर्थी को पार्श्वनाथ ने कैवल्य ज्ञान प्राप्त किया। वे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, वीतराग, भगवान् तीर्थंकर बन गए।

धर्मोपदेश :

तीर्थंकर पार्श्वनाथ ने अन्य तीर्थंकरों की तरह विशुद्ध धर्म का उपदेश दिया। वह न ब्राह्मण-धर्म था, न क्षत्रिय-धर्म और न वह वैश्य और शूद्र। किसी कुल, जाति या वर्ण की परिधि से आवेष्टित धर्म विश्व-हितंकर नहीं हो सकता। धर्म वह है, जिसमें सर्वोदय निहित हो। धर्म मनुष्य-वर्ग अथवा समाज का विभाजन नहीं करता। बिखरे हुए मनुष्य-वर्ग को एकत्रित करता है। धर्म-परायणता में शत्रु-मित्र, अपराधि-निरपराधी आदि प्रत्येक भेद-रेखा अमान्य होती है। अहिंसा-धर्म में ये सब दोष नहीं होते। अहिंसा सबके जीने का अधिकार है। तीर्थंकरों ने अपने दिव्य ज्ञान-चक्षु से अहिंसा को सकल ब्रह्माण्ड में व्याप्त देखा। तीर्थंकर पार्श्वनाथ ने भी इसे स्वीकृत किया। यही प्राचीन उद्घोष पुनरुच्चारित करते हुए पार्श्व जनता को सन्देश लग पड़े, सब जीव जीना चाहते हैं। सब पीड़ा से बचना चाहते हैं—

सव्वे पाणा पियाउया, सव्वे दुक्ख पडिकूला।

—सबको जीवन प्रिय है, दुःख को कोई नहीं चाहता।

निर्वाण :

अन्धकार के पश्चात् निश्चित ही प्राची से प्रकाश का उदय होता है। यह अन्धकार पर प्रकाश की ही विजय नहीं है, अपितु प्रकृति असुरों पर देवों की विजय का संकेत करती है। विश्व और समाज में जब अधर्म, अनैतिकता, पाप आदि असुरों का विस्तार होता जाता है, तब धर्म, नैतिकता, सुकृत की दिव्य ज्योति लेकर कोई-न-कोई अलौकिक दिव्य व्यक्तित्व किसी असाधारण जननी से जन्म लेकर इस धरा पर अवतरित होता है। कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अपनी व्यंजना

को भाषा में प्रभात का वर्णन करते हुए इसी अर्थ का संकेत किया है—

'There comes the morning with the golden basket in her right hand bearing the wreath of beauty Silently to crown the earth'. - Gitanjali

—प्रभात अपने दाहिने हाथ मे प्रकाश का करण्डक लेकर आता है और इस धरा को मौन के साथ सौन्दर्य-माल्य से परिमण्डित कर देता है।

तीर्थंकर पार्श्व भी उन धर्म-नायकों में से ऐसे प्रभात थे, जो धर्म-नीतियों का प्रकाश संसार में लेकर आये। लगभग 70 वर्ष तक इन्होंने जनता को धर्म का प्रकाश दिया। 100 वर्ष की आयु में एक मास का अनशन करते हुए सम्मेद शिखर पर समस्त कर्मो का नाश कर, श्रावण शुक्ल अष्टमी को भगवान् पार्श्व- ने निर्वाण प्राप्त किया।

लोक-प्रियता :

तीर्थंकर पार्श्व की ऐतिहासिकता आधुनिक विद्वानों से भी सम्मत है। उनकी दृष्टि में पार्श्वनाथ सबसे अधिक लोकप्रिय रहे है। भारत वर्ष में सबसे अधिक मन्दिर, मूर्तियां, तीर्थ-स्थान तथा स्तोत्र भगवान् पार्श्वनाथ के पाए जाते है। भारत के कितने ही नरेश इनके श्रद्धालु अनुयायी थे। नाग, यक्ष, असुर आदि अनार्य व्रात्य क्षत्रिय जातियों में पार्श्वनाथ का विशेष प्रभाव था। उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल के अतिरिक्त उड़ीसा, आन्ध्र-प्रदेश भी इनसे प्रभावित थे। भारत की पश्चिमोत्तर सीमाओं का अतिक्रमण कर एशिया, यूनान, आदि भी इनके विचारों की परिधि में आ चुके थे। पार्श्व के निर्वाण के पश्चात् भी महावीर तक इस श्रमण-परम्परा के विचार अविच्छिन्न रहे। इसका प्रमाण यह है, कि तीर्थंकर महावीर का पितृ-वंश और मातृ-कुल पार्श्व के अनुयायी थे। महावीर के प्रवज्या ग्रहण करने और उन्हें कैवल्य-ज्योति प्रकट होने के पश्चात् जब उन्होने धर्म-देशना प्रारम्भ की, तब पार्श्व-परम्परा के केशी आदि चिन्तनशील प्रभुता, सम्पन्न श्रमण विद्यमान थे। महावीर के शिष्य इन्द्रभूति गौतम और पार्श्व के

केशी आदि श्रमणों का चारित्र चातुर्यामिक था—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह। ब्रह्मचर्य का पृथक् विधान नहीं था। महावीर ने अपने श्रमणों के लिए चारित्र-धर्म में ब्रह्मचर्य का पृथक निदेश करके उसे पंचयामिक बनाया—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह।

तीर्थंकर पार्श्व तत्कालीन विश्व में पुरिसादानी . पुरुष-श्रेष्ठ के नाम से प्रख्यात हुए। वे उत्तर वैदिक काल, जो उपनिषद्-युग था, के उस श्रमण-धर्म के पुनरुत्थान के सफल नेता थे, जिसका प्रारम्भ अरिष्टनेमी ने किया था। उन्हीं के तात्विक विचारों से प्रभावित होकर, वैदिक परम्परा का प्रभावशाली दल यज्ञीय हिंसा का विद्रोह करने लग गया और उपनिषद् में वर्णित आत्मविद्या के प्रचार में तत्पर हो गया। वह हिंसक यज्ञों को छोड़कर संसार-समुद्र, से पार होने के लिए, आत्म-विद्या की नौका में बैठ गया। वैदिक समाज ने यज्ञों और उनके विधि-विधानों को संसार-सागर में डुबाने वाली अदृढ़नौका घोषित कर दिया। चिन्तन और चारित्र के क्षेत्र में यह बहुत बड़ी उत्क्रान्ति हुई। पार्श्व के द्वारा हुई इस उत्क्रान्ति में विदेह के जनक ही उपनिषदों की विचार-धारा के अग्रगण्य नेता बने।

ऋग् आदि वेद भारतीय संस्कृति का प्राचीन संकलन है—इसमें सन्देह नहीं। पुराण, स्मृति आदि सभी वेद, मूलक साहित्यिक निधियां स्वीकृत की गई है। ये सब भारतीय संस्कृति की ऐतिहासिक साक्षियां हैं, जो अतीत में पार्श्वनाथ आदि के धर्म-नायक तीर्थंकर होने का साक्ष्य प्रस्तुत करते है, दक्षिणापथ भारत में जिस महाकाल मूर्ति की पूजा की जाती थी, ऐतिहासिकों के अभिमत से वे ही तीर्थंकर पार्श्व-नाथ हैं, जिनका आगे चलकर नाम परिवर्तित हो गया। सर्प-सहित शिव-मूर्ति भी पार्श्व तीर्थंकर जा परिवर्तित रूप है, जो भारतीय समाज में शिव के नाम से पूज्य हो गया।

इस तरह तीर्थंकर पार्श्वनाथ सभी धर्मों, सम्प्रदायों में किसी-न-किसी भांति सम्पूज्य है। अन्त में हमें यह स्वीकार करना होगा—धर्म-जगत् में पार्श्वनाथ को अद्भुत लोकप्रियता प्राप्त हुई।

□□

विश्व-ज्योति महावीर

○ ○

महावीर के सम्बन्ध मे कुछ कहना ऐसा लगता है जैसे महाप्रकाशनद-आलोक-प्रपात के समक्ष खद्योत की यह हुंकार कि मैं भी प्रकाश से भरा हुआ हू। महावीर समय की आदि मध्य और अन्त, सब स्थितियो मे प्रकाश का वह महास्तम्भ है—जब तक विश्व चेतना की एक भी धडकन मौजूद रहेगी यह महाप्रकाश स्तम्भ अनन्त सूर्यों के प्रकाश की भांति अचल-अमर अक्षर स्थापित रहेगा।

—स०

○ ○

आत्मीय-ज्योतिषा ये न ताराद्या द्युति-शालिनः।
प्रभवन्ति निराकर्तुं प्रकृत्या प्रसृतं तमः॥
तदादाय सहस्रांशून् विसारि-तेजसो विभम्।
अवतीर्णस्तमो हन्ति सहसा हि त्विषापतिः॥
एवं स्वयंप्रकाशात्मा नृप-सिद्धार्थ-सत्सुतः।
लोकं चकार सालोकं सत्स्वपि बहुधाविषु॥

प्रकृति-द्वारा प्रसारित अन्धकार को जब प्रकाशशाली ताराचक्र अपनी प्रभा से दूर करने में असमर्थ होता है, तब विस्तृत तेजस्विता के साथ अपनी सहस्र-सहस्र, किरणों को लेकर ज्योतिष्पति सूर्य आकाश में अवतीर्ण होता है और तत्काल अन्धकार को दूर कर देता है।

इसी तरह जब अनेक धर्म-नायकों के द्वारा जनता का अन्धकार दूर नहीं हुआ, तब राजा सिद्धार्थ के सत्पुत्र महावीर ने अपने दिव्य प्रकाश से सारे संसार के अन्धकार को दूर किया।

विश्व के दिव्य-प्रकाश :

भगवान् महावीर आकाश से उतर कर आने वाले अवतार नहीं थे। वे न कोई देवता या जिब्रैल जैसे फरिश्ता थे, जो इस संसार को किसी दूसरे का सन्देश पहुंचाने आये हों। महावीर तो तीर्थंकर थे। तीर्थंकर सन्देश-वाहक नहीं होता—सन्देश-दाता होता है। ऐसा अलौकिक पुरुष अपने ही श्रम से अपने व्यक्तित्व में अन्तर्हित अदृश्य अलौकिकताओं को पुष्प में निहित सुगन्ध की भांति विकसित करता है। जनता को स्व-ज्योति से आलोकित दिव्य दृष्टिकोण बताने के लिए वह संसार के चौराहे पर आकर खड़ा हो जाता है। जिसका व्यक्तित्व स्व-श्रम साध्य होता है, वह उसकी अपेक्षा श्लाध्य और स्तुत्य होता है, जो प्रकृति द्वारा उपलब्ध विशेषताओं को लेकर इस ब्रह्माण्ड में अवतरित होता है।

जन्म :

भगवान् महावीर का जन्म बिहार प्रदेशान्तर्गत क्षत्रिय कुण्ड-ग्राम में 542 विक्रम-पूर्व में हुआ था। पिता थे—राज सिद्धार्थ। महारानी त्रिशला इनकी माता थीं। पुत्र के जन्म लेते ही सम्पूर्ण राज्य में अभिवृद्धि हुई। फलतः उनका नाम वर्द्धमान रखा गया।

वर्द्धमान के बाल्यावस्था में प्रवेश करने पर, अनेक अद्भुत वीरतापूर्ण चमत्कार जनता ने देखे। तब सभी लोग उन्हें महावीर कहने लगे।

राजकुमार से भिक्षुक :

महावीर राजकुमार थे। पिता सिद्धार्थ और जननी त्रिशला अपने हाथों से पुत्र के सिर पर राजमुकुट रखने के लिए उत्सुक बने हुए थे। लेकिन महावीर तो ज्योति-पुत्र थे। उन्हें मुकुट और सिंहासन से परे का अनिर्वचनीय जीवन दीख रहा था। वे उसके लिए तत्पर बने हुए थे। संसार में वही एक उनकी उपलब्धि थी। इसीलिए उन्होंने विशाल

सम्पदा पर से अपना स्वत्व हटाना प्रारम्भ कर दिया। प्रभात-बेला में सायंकाल तक प्रतिदिन राज्यकोष से वे स्वर्ण मुद्रायें जनता में वितरित करने लगे। वितरण का यह क्रम वर्षपर्यन्त चलता रहा। महावीर स्वर्णमेघ बनकर इस वसुधा पर बरस पड़े। समस्त स्वर्णकोष वितरित कर दिया गया। दीन कुटीरों में दीपक जल उठे!

तत्पश्चात् राजकुमार महावीर ने राज्याभिषेक का परित्याग कर भिक्षुक-प्रव्रज्या के लिए अभिनिष्क्रमण की जनता में घोषणा कर दी। प्रासादों में कोलाहल मच गया। जनता के आग्रह की उपेक्षा कर वे ज्ञातृ-वन खण्ड में उस छद्म-रहित बालक की तरह आकर खड़े हो गए, जो मां की सुन्दर वेष-भूषा से ग्लान होकर स्वतन्त्र क्रीडा के लिए उससे आग्रह करता है—

'Mother it is no gain bondage of finery ! If it keep one from the healthful dust of the earth, if it shut from the common human fair.

—रवीन्द्र नाथ टैगोर

—माँ! तुम्हारी प्रदत्त यह सुन्दर वेष-भूषा, परिधान के बन्धन मेरे लिए व्यर्थ हैं, क्योंकि ये जन-साधारण के उत्सव में सम्मिलित होने में मेरे लिए बाधा उपस्थित करते हैं, ये मुझे पृथ्वी की स्वस्थ धूलि के स्पर्श से भी वंचित रखते हैं।

ज्ञातृ-वन खण्ड में उपस्थित बन्धु-जन तथा जनता के सामने महावीर ने निर्व्याज बालक की तरह अपने सिर से मुकुट उतार कर एक शिला के ऊपर हमेशा के लिए रख दिया। सब वस्त्राभूषण उतार कर वसुधा को अर्पित कर दिए और भिक्षुक-प्रव्रज्या स्वीकृत कर उन्होंने अभिनिष्क्रमण कर दिया।

दीपक जलाने का प्रयत्न :

दीन-कुटीरों में दीपक जला कर महावीर अपना दीपक जलाने के लिए—राज-प्रासादों से मुँह मोड़ कर वन, उपवन की ओर चल दिए। अभिनिष्क्रमण के समय उनके पास किसी कमण्डल या पात्र आदि का भी कोई परिग्रह नहीं था। केवल एक बहुमूल्य वस्त्र साथ में था।

राजकुमार से बना यह युवा भिक्षुक जब कुण्डग्राम क गलो, बाजारों में से होकर जा रहा था, जनता सतृष्ण नेत्रों से इस परिवर्तन का आकलन करने का प्रयत्न कर रही थी कुण्डग्राम का युवा योगी कितना निष्परिग्रही, कमलवत् निर्लिप्त निष्काम।

कर-तल-भिक्षा, तरुतल-वासः ।

—हाथ में भिक्षा और वृक्षों के नोचे निवास।

भारत का युवा योगी संसार के कीचड़ में कमल बन गया। ग्राम-नगरों का निवास भी उसके लिए परिग्रह बन गया। उनका भी परित्याग कर, वह निर्जन बन, लतामंडप, पर्वत-कन्दरा जैसे विजन स्थान में साधना के लिए बिहार करने लगा। यहाँ एक आगन्तुक ब्राह्मण को अपना बहुमूल्य वस्त्र देकर अकिंचन बन गया। अकिंचनता की उदात्त साधना से प्रभावित होकर संसार उसे महानिर्ग्रन्थ कहने लगा। विजन बनों में आत्म-समाधि में संलीन रहते हुए निष्काम तप-साधना से आत्म-ज्योति का आवरण दूर करके कैवल्य-ज्योति की महान् उपलब्धि प्राप्त कर ली। जीवन का दीप हमेशा के लिए जल उठा।

विश्व-मानव :

कैवल्य-ज्योति के प्रज्वलित होने के पश्चात् भगवान् महावीर को अपने अखण्ड 'स्व' की अनुभूति हुई। स्वानुभूति व्यक्तित्व की स्पष्ट अभिव्यक्ति थी। जीवन का कमलवत् विकार-रहित स्वाभाविक दर्शन था। यही महावीर का सत्य था। इसमें से पुष्पगत सुगन्ध की तरह उनके शिवत्व और सौन्दर्य प्रस्फुटित होते गए। सत्य, शिव और सौन्दर्य के संगम पर आकर स्थित होने वाला महावीर साम्प्रदायिक आदि सीमित जीवन-रेखाओं में कभी आबद्ध नहीं हुआ। उसने इन परिधियों को तोड़ा और अपने स्व को विश्व में व्याप्त कर विश्व-मानव का स्थान प्राप्त कर लिया। ऐसे विश्व-मानव का लक्ष्य महान् होता है, प्रयत्न महान् होता है, संकल्प महान् होता है। वह स्वार्थ-मार्ग का परित्याग कर, पर-हितार्थ संघर्ष करता है। महावीर

के लक्ष्य, प्रयत्न, संकल्प आकाश के विस्तार को छू रहे थे। वे जीवन पर्यन्त पर-हितार्थ संघर्ष-रत हो गए।

राज्य-नीति में क्रान्ति :

महावीर राजकुमार थे। यह ऐतिहासिक सत्य है। वे भिक्षुक बने। यह भी ऐतिहासिक घटना है। एक राजकुमार का भिक्षुक बन जाना, एक विराट राजनीतिक क्रान्ति का संकेत था। जनता के शोषण पर देश में राज-परिवार विलासी प्रासाद खड़े कर रहे थे। राज-परिवारों में चरित्र के स्थान पर अशालीनता आ रही थी। महावीर ने भिक्षुक बन कर, इन परिवारों के लिए एक आदर्श उपस्थित किया। राजा शोषण और भोग-विलास के लिए नहीं, तप के लिए है। उन्हें जो राजनीतिक युग मिला, उसमें संशोधन करने के लिए उन्हें राज-मुकुट उतार कर भिक्षुक बनना पड़ा। उनका परिश्रम राष्ट्र को धन-समृद्ध बनाने के लिए नहीं था, उसकी चेतना को महान् बनाने का प्रयत्न था।

You will do the greatest service to the state. if you shall raise, not the roof of the houses, but the souls of the houses.

—तुम देश की महान् सेवा तभी कर पाओगे, जब उसके विशाल भवनों की उपेक्षा उसकी आत्मा को ऊँचा उठा पाओगे।

महावीर ने देश की आत्मा को ऊँचा उठाने के प्रयत्न में अपने सिर से मुकुट उतारा। और यह सोचा--"राज्य-सत्ता से राजनीतिक बुराइयों को रोका नहीं जा सकता। राज्य-नीति के पुराने मूल्यों को बदला नहीं जा सकता। राज्य-नीति में अपराधियों को कारावास, मृत्यु-दंड आदि दिए जा सकते हैं, लेकिन इसमें कोई ऐसा विधान नहीं जो पड़ोसी के दुःख मिटाने की नैतिकता का मार्ग बता सके। धन सत्ता, शस्त्र-सत्ता से समाज में मानवीय मूल्यों के स्थान पर चोरी, घृणा, भूख प्रतिस्पर्धा के अनेक दुर्व्यसन को महत्व मिलने लगता है, और मनुष्य के साथ होने वाले व्यवहारों में सामाजिक सम्बन्ध टूट जाते हैं। समाज के महान् उद्देश्य मनुष्य के अभ्युदय की

सम्भावनायें भी क्षीण होने लगती है।" महावीर हजारों वर्ष पहले ही राजनीतिक दोषों को विश्व के सामने कह गए, जिनकी फ्रांस जैसे देश के रूसो जैसे दार्शनिक पुनरावृत्ति करते हुए देखे जाते हैं—

"Where weath accumulates, men decay."

—Rousseau

– धन-सत्ता वाला समाज, मनुष्य की हिंसा के पाप से बच नहीं सकता।

धर्म के अभिनव मूल्य :

धन-सत्ता की छाया में होने वाले शोषण, उत्पीड़न, हिंसा और अन्याय से मनुष्य के रक्षा-हेतु महावीर ने समाज को अपरिग्रह का सिद्धान्त दिया, जिसका समाज के आढ्य वर्ग ने स्वागत करते हुये अपनी सम्पत्ति, अपने विशाल वैभव को समाज को सम्पत्ति घोषित कर दिया। इससे दीन-हीन वर्ग का शोषण, हिंसा, अन्याय का समाज में निषेध हुआ। पारस्परिक बन्धुता के आदान-प्रदान से सभी वर्ग-भेदों का अन्त कर दिया गया। उपेक्षित मानव को समाज से बन्धुता का सौहार्द मिला।

धर्म नेताओं का युग :

नदी का प्रवाह प्रतिक्षण बदलता है। समाज में भी चिन्तन एक नहीं रहता, वह भी बदलता है। भारत में चिन्तन बदलता गया। अतः अनेक धर्मनेता भारत में हो गये। महावीर के युग में बुद्ध, प्रकुध कात्यायन, संजय बेलट्ठी, मस्करी गोशालक आदि कितने ही समाज को अपनी-अपनी धर्म-दृष्टि दे रहे थे। इन्हीं नक्षत्रों के बीच भारत के अन्तरिक्ष में समाज के लिये नूतन ज्योति ले कर एक सूर्य उदित हुआ, जो महावीर के नाम से पुकारा जाने लगा।

महावीर ने ब्रह्माण्ड के स्वरूप का आधार दो ही तत्व माने—जड और चेतन। अन्य किसी तीसरी सत्ता का सर्वथा निषेध किया। अन्य सब ब्रह्माण्ड इन्हीं का विस्तार है। सुख-दुःख आदि के लिए आत्मा और कर्म-सिद्धान्त की सर्वमान्य प्रतिष्ठा की और वह सिद्धान्त वादियों का लोक-गुरू बन गया।

जेण विणा लोगस्स वि ववहारो सव्वहा न निव्वडइ।
तस्स भुवणेक्कगुरुणो णमो अणेगंतवायस्स ॥

--जिसके बिना लोक-व्यवहार भी निष्पन्न नहीं होता, संसार के एक मात्र गुरु अनेकान्तवाद को हम स्वीकृत करते हैं ।

वर्तमान श्रमण-शासन :

वर्तमान श्रमण-शासन भगवान् महावीर की आत्म-साधना से अभिव्यक्त धर्म-तरु का अमृत-फल है। श्रमण, श्रमणी, श्रमणोपासक और श्रमणोपासिकाओं का धार्मिक समवाय है। महावीर के इस शासन में इन्द्रभूति गौतम आदि 14000 श्रमण-साधु, चन्दनबाला आदि 36000 श्रमणियां थी। आनन्द आदि 1,56,000 श्रमणोपासक और जयन्ती आदि 328000 श्रमणोपासिकाये थीं। श्रेणिक, कौणिक, वैशाली का गण-तन्त्र आदि राजवंश भी भगवान् महावीर का चरणोपासक बना हुआ था।

शासन-व्यवस्था :

शासन शब्द स्वयं एक ही संघ-व्यवस्था का पर्यायबोधक है। व्यवस्था न हो, तो उसकी समवेत अवस्था टूट जाती है। भगवान् महावीर का संघ धार्मिक समवाय था। जसे सम्राट् राज्य-व्यवस्था-हेतु, आमात्य आदि पदों की नियुक्ति करता है, उसी तरह धर्म-सम्राट् महावीर के संघ की व्यवस्था थी। उनके संघ में ग्यारह गणधर, नौ गण, सात पद सम्मानित थे। संघ, ज्ञान और सयमाचार के लिए था, मन्त्र-तन्त्र आदि के लिए नहीं। अतः ज्ञान और संयम की शिक्षा के लिए जो उक्त पदों पर आसीन हुए, वे देव और सम्राटों के भी श्रद्धास्पद बने। गण-संचालन आचार्य किया करता। स्व-पर-दर्शन के प्रशिक्षण की व्यवस्था उपाध्याय करता। स्थविर श्रमण की संयम-दृष्टि को स्वच्छ रखते। प्रवर्तक आचार्य द्वारा आदेशित धर्म-प्रवृत्तियां का संघ में प्रवर्तन कराते। संघ के अल्प-संख्यक समूहों का नेता गणी होता। प्रतिदिन की आचार-चर्या पर गणधर दृष्टिपात करते। संघ की अन्तरग व्यवस्था का भार गणावच्छेदक पर हुआ करता।

भगवान् महावीर परम कारुणिक, दयावतार थे। जो मानवता धर्म से बहिष्कृत थी, उसके लिए भी उस दया अवतार ने धर्म-पथ का निर्माण किया। उनके श्रमण-संघ में हरिकेश जैसे वर्णेतर जन को भी मुनि होने का अधिकार दिया गया। ब्राह्मण आदि वर्णों और अनादृत माता नारी को उस वीतराग-दृष्टि से अहिंसा, सत्य आदि पंचमहाचार का शिक्षण मिला।

संयम और ज्ञान का जलता हुआ चतुर्विध संघ दीपक भारत को धर्म-परायण जनता को देकर, भगवान् महावीर ने बिहार की अपापा नगरी में कार्तिक कृष्ण 30 की अर्धरात्र वेला में विक्रम पूर्व 470 में निर्वाण प्राप्त किया।

तब से भारत की जनता, उस विश्व-ज्योति महावीर की उपासना में श्रद्धा के दीप जलाकर, प्रतिवर्ष दीपावली का समायोजन करती है।

□

भगवान् महावीर के प्रथम उत्तराधिकारी : गणधर सुधर्मा

O O

भगवान् महावीर और अनुशास्ता गौतम सम्पूर्ण उपलब्ध जैन वाङ्मय मे ऐसे घुले हुए है जैसे मिश्री मे माधुर्य । अत हम जैन वाङ्मय में से न महावीर को अलग करके देख सकते है न गौतम को। महावीर और गौतम आराध्य और आराधक का ऐसा भाव है, जो सदेह रहते तो दुग्ध-शर्करा की तरह रहे ही, परन्तु, उनका सामिप्य किस प्रकार जुटा इसी प्रश्न की परिक्रमा है— "भास्वर नक्षत्र गणधर सुधर्मा" !

—सं०

O O

श्रमण-परम्परा में सर्वोच्च स्थान तीर्थंकर का होता है। तीर्थंकर चतुर्विध संघ के निर्माता होते है। साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका ये सभी साधक तीर्थंकर के निदेश में अपनी जीवन-यात्रा करते है। पौराणिक मान्यतानुसार जैसे समस्त ग्रह-नक्षत्र पर्वतराज सुमेरु की परिक्रमा में रत रहते हैं वैसे ही चतुर्विध संघ के समस्त साधक तीर्थंकर को केन्द्र मान कर आत्मोपासना में निरत रहते हैं।

तीर्थंकर जब निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं तब संघस्थ जनों के सम्मुख एक चिन्तनीय प्रश्न उभरता है—"अब संघ-संचालन कौन करेगा ? कौन हमें मार्ग दिखलाएगा ? अपने प्रश्नों के समाधान हम किससे करेंगे ?"

प्रस्तुत सन्दर्भ में एक विचारक ने बड़ा सुन्दर कहा—"सूर्य जब अस्ताचल की ओर जाने लगा तो जनता ने भयातुर मन से कहा

"अब हमें प्रकाश कौन प्रदान करेगा ? राह कौन दिखलाएगा ? तब नन्हें दीप की याद आई और प्रजाजनों ने उसको श्रद्धाभाव से अपने घरों में प्रतिष्ठित कर लिया।"

दीप कितना छोटा होता है और अन्धकार [कितना विराट् है। फिर भी वह अन्धकार से लड़ता है। उसे दूर भगा देता है।

भगवान् महावीर का जब निर्वाण हुआ था तब चतुर्विध संघ के सामने उपरोक्त प्रश्न समुपस्थित हुआ। चारों ओर दृष्टि डाल कर देखा गया—कौन ऐसा दिव्य पुरुष है, जो संघ का शास्ता और महावीर का उत्तराधिकारी बन सके। हमारी समस्याओं का समाधान और संघ-नेतृत्व कर सके।

जैन इतिहास का यह अतीव रोमांचकारी प्रसग है कि तीर्थंकर महावीर का उत्तराधिकार किसे मिला ? महावीर क निर्वाणान्तर उनके शिष्य 5वें गणधर 'सुधर्मा' को संघ-शास्ता बनाया गया। जैनों की एक परम्परा इन्द्रभूति गौतम को महावीर के शासन का अनुशास्ता स्वीकृत करती है, किन्तु शेष जैन परम्पराएं सुधर्मा को शासन की धुरा-धारण करने का श्रेय अर्पित करती है। विश्व-ज्योति महावीर की आलोक-शिखा से गणधर सुधर्मा ने दिव्यलोक प्राप्त किया था। तो महावीर के उन प्रथम उत्तराधिकारी सुधर्मा के साधना-पथ पर अवतीर्ण होने की घटना का ऐतिहासिक आकलन यहां किया जा रहा है।

कोल्लाग सन्निवेश वारतव्य ब्राह्मण परिवार में गणधर सुधर्मा का जन्म हुआ। तब वीर निर्वाण पूर्व 80, वि० पू० 550 था। इनकी माता का नाम भद्दिला था। पिता का नाम अग्निवैश्यायन गोत्रीय धम्मिल था। वेदान्त-दर्शन निष्णात इस ब्राह्मण-पुत्र के वैदुष्य से समस्त ब्राह्मणवर्ग प्रभावित था। ये वैदिक दर्शन का अध्ययन करने वाले पाँच सौ छात्रों क कुलपति थे।

आत्म-दर्शन की निरावरणोपलब्धि के पश्चात् जंभिय ग्राम से विहार कर भगवान् महावीर मध्यम पावापुरी में पहुंचे। उसी नगर में सोमिल्ल ब्राह्मण ने विराट् यज्ञ का आयोजन किया हुआ था।

इसका सफलता हेतु भारत के ख्याति प्राप्त वेद-विद् विद्वान् भी आमंत्रित किए गए। प्रांशुकुल-वंशोत्पन्न ग्यारह गणधर, गोब्बर ग्रामवासी गौतम गोत्रीय इन्द्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति कोल्लाग-सन्निवेश वास्तव्य वशिष्ठ-गोत्रीय मण्डित, अग्निवैश्यायन गोत्रीय सुधर्मा, मोरिय-सन्निवेश-वासी वशिष्ठ गोत्रीय मण्डित, काश्यप गोत्रीय मौर्यपुत्र, मिथिला-निवासी गौतम गोत्रीय अकम्पित, कोशल-निवासी हारित गोत्रीय अचलभ्राता, तुगिका-सन्निवेश वासी कौण्डिन्य गोत्रीय मैतार्य, राजगृह के कौण्डिन्य गोत्रीय प्रभास आदि अपने चवालीस सौ शिष्य सार्थ के साथ सोमिल्ल द्वारा रचित विशाल यज्ञ को सफल बनाने के लिए चल पड़े। इन वैदिक विद्वानों की अहंमन्यता दिक्चक्र का अतिक्रमण कर रही थी, जिसकी अपराभवता का उद्घोष ब्रह्माण्ड को छू रहा था।

पारदृश्वा महावीर की ओर जनौघ के अपरस्पर सार्थ समूह यज्ञ परिधि को छोड कर जाते दिखाई दिए, तो उनका मदाभिभूत अभिमान सागर परिक्षुब्ध होकर चीत्कार कर उठा ···"कौन एन्द्रजालिक है, जो मांत्रिक-तांत्रिक वल-विद्या से जनसार्थ को अपनी ओर आकृष्ट कर रहा है। इसकी इन्द्रजाल विद्या हमारे तर्क के तीक्ष्ण प्रहारो के सामने ऐसे खंडित हो जाएगी, जैसे क्षिप्र झञ्झा के सामने इन्द्रधनुष खण्ड-विखण्ड होकर अदृश्य हो जाता है।" गणधरों का आश्चर्य विस्मयता की सीमा का अतिक्रमण क्षण-प्रतिक्षण करता जा रहा था। विस्मयान्वित शिष्य परिवार-सहित गणधर-कुल पराजित करने के लिये क्रमशः भगवान् महावीर के समवसरण मे पहुचा।

अनात्मिक ज्ञान कितना ही अगाध हो, उसमें संशय, विपर्यय की तरंग-भंग उठा ही करती हैं। ग्यारह ही गणधरों के ज्ञान की यही स्थिति थी। आत्मा, कर्म, शरीर चेतना के भेदाभेदा, लोक-परलोक, स्वर्ग-नरक, बंधमुक्ति आदि की परिशंकाओं से इनका ज्ञान-समुद्र उद्वेलित रहा करता। विशाल धर्म परिषद् में भगवान् महावीर बैठे धर्म-देशना कर रहे थे। गणधर अपने तीक्ष्ण तर्कों से उस पारदृश्वा को हताश कर देना चाहते थे। लेकिन उन सबका अभिमान सर्वज्ञ ज्योति के सामने उदित सूर्यालोक से तमिस्रा की तरह पलायन

कर गया। प्रथम सम्पर्क में ही सर्वज्ञ-ज्योति से सम्बोधित इन्द्रभूति की श्रुति से प्रथम गणधर को चकित कर दिया। उत्तरवर्ती क्षण में ही अहंकार बोल उठा, "विश्व-विश्रुत को कौन नहीं जानता?" तदनन्तर भगवान् महावीर ने इन्द्रभूति के संशय उद्घाटित करने प्रारम्भ किए।

महावीर की ज्ञान-मन्दाकिनी में गौतम गोत्रीय ब्राह्मण का मानस प्रक्षालित होकर निर्मल हो गया। इस कृतज्ञता के भार से ब्राह्मण पुत्र का सर विनीत होकर सर्वज्ञज्योति की अर्चना में झुक गया। जगद्गुरु में गुरुत्व का गर्व विलीन हो गया। सभी गणधरों ने अभिनव-चक्षु से आत्म-विद्या सीखने के लिए भगवान् महावीर के प्रदर्शित पथ पर चलना स्वीकृत किया। "नमोत्थु णं अरिहंताणं" कहते हुए उन सबने श्रमण-दीक्षा अंगीकृत कर ली। भगवान् महावीर द्वारा किया यह दीक्षा-संस्कार सर्वप्रथम था, जो विक्रम पूर्व 500 और वीर निर्वाण 30 वर्ष पूर्व हुआ। इसी ऐतिहासिक घटना के साथ चतुर्विध संघ की स्थापना का शुभारम्भ हुआ। दीप से दीप जल उठे।

श्रमणत्व-पर्याय स्वीकृत करने के पश्चात् इन्द्रभूति आदि को श्रमण-संघ में गणधर कहा जाने लगा। भगवान् महावीर द्वारा प्रतिपादित उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य दार्शनिक त्रिपदी के आधार पर इन गणधरों ने संसार-जलधि में नौका तुल्य द्वादशांगी की रचना की। दो-दो गणधरों की युग्म वाचना होने के कारण ग्यारह गणधरों के नौ गण बने। गणधरों में सुधर्मा का स्थान पांचवां था। भगवान् महावीर की उपस्थिति में नौ गणधर सर्वज्ञ बन कर राजगृह की ऐतिहासिक पवित्र भूमि पर निर्वाण को प्राप्त हुए।

कैवल्य-ज्योति के अभाव में इन्द्रभूति खिन्न रहा करते। कारण, था, महावीर के प्रति होने वाले इन्द्रभूति का मनोराग। इन्द्रभूति परम गुरु महावीर के आदेश से समीपस्थ गाँव में बोध देने चले गए। पश्चात् भगवान् महावीर का अपापा नगरी में निर्वाण हो गया। निर्वाण की सूचना पाते ही छद्मस्थ इन्द्रभूति शोकाकुल हो गये। कुछ क्षण में ज्ञान-ज्योति की रश्मि उदित हुई, पर वैराग्य की ओर

चेतना उन्मुख हुई। वीतरगता की चेतना स्पष्ट हो गई। मोहावरण क्षीण हो गया। अखण्ड आत्म-ज्योति के आलोक मे समस्त ब्रह्माण्ड दृश्यमान हो गया। ज्येष्ठ गणधर इन्द्रभूति सर्वज्ञ बन गये। सर्वज्ञ संघ-शास्ता नही होता। विक्रम पूर्व 470 मे वीर निर्वाण के पश्चात् गणधर सुधर्मा संघ से धुरा-धर बने। अस्सी वर्ष की अवस्था में संघ-शास्ता होने का सम्मान सुधर्मा को अर्पित किया गया। भगवान् महावीर के कमल-पत्रवत् निर्लेप चरणाम्बुज की तीस वर्ष की परि-चर्या की अवधि में संचित विशद अनुभूतियो का पाथेय सयम-यात्रा के लिए सुधर्मा के पास था। सघ-निर्माता महावीर के चले जाने से सघ-पोत में हलचल हो जाना जरूरी था, लेकिन सुधर्मा जैसे कृती धर्मधुरीण आचार्य ने सघपोत का स चालन करने मे कुशल सायात्रिक मेधा का प्रयोग किया।

उस युग मे अन्य धर्म नायक गोशालक आदि अपने धर्म-सघो को प्रभुता का विस्तार कर रहे थे। वे अपनी कठिन आचार-मर्यादा से जनता को अपनी ओर अभिमुख कर रहे थ। इस प्रतिस्पर्धा के युग में सत्य-सशोधित अनेकान्त दर्शन-दृष्टि से भारत की जनता को सत्य-द्रष्टा होने का प्रचार करते हुए, सुधर्मा ने श्रमण-सघ-नेतृत्व को श्लाघ्य बना लिया। श्रमणसघ की ज्ञान पिपासा को प्रशान्त करने के लिए, सुधर्मा शीतल ज्ञान-निर्झर बन कर बहते रहे।

तीर्थकरो का शासन आज सुधर्मा का महान् कृतज्ञ है। ज्ञान की आकाश-गगा जो वीतराग महावीर के वक्त्राम्बुज से निसृत हुई, उस विशाल श्रुति को दीर्घकाल तक अपने मनीषा-पात्र मे योग्य उत्तरा-धिकारी की भाति यथावत् ही नही रखा, प्रत्युत उसका संवर्धन कर उसे और विशाल बनाया। उस महापुरुष की वर्गीकरण रूप मे जो एकादशांगी आगम सम्पदा है, यह आचार्य सुधर्मा की अर्चित मनीषा का परोपकार है।

आचार्य सुधर्मा भगवान् महावीर से आयु मे आठ वर्ष पूर्व जन्मे थे। संघ का सुष्ठु संचालन करते हुए बानवे वर्ष की वृद्धावस्था में उन्हें साधना की अन्तिम उपलब्धि सर्वज्ञ-ज्योति प्राप्त हुई। वह

महा-श्रमण सर्वज्ञ ज्योति से सूर्यवत् भास्वर होकर देव वसुन्धरा भारत पर चमका। उसके सम्पर्क से असंख्य मलिन-मानसों को प्रकाश मिला।

आचार्य सुधर्मा के पचास वर्ष गृहस्थावास में व्यतीत हुए। तीस वर्ष तक चरम तीर्थंकर के श्री चरणों की पर्युपासना में रहे। चरम-तीर्थंकर के निर्वाण-पश्चात् बारह वर्ष छद्मावस्था में रहे। आठ वर्ष तक केवली अवस्था में रहे। संघशास्ता आचार्यों की श्रेणी में आचार्य सुधर्मा संख्या के मुख्य अंक 'एक' के अभ्यर्हित स्थान पर खड़े अपनी ज्ञान-रश्मियों से लोक का अहंकार मिटाते हुए दिखाई दे रहे हैं।

वैभारगिरि-शृंखलाओं की विजनता में एकान्त, शांत शिला पर मासिक-अनशन के साथ योगिराज सुधर्मा ने योग-समाधि में अवस्थित होकर, देह के आवरण को दूर कर स्वराज्य सिद्ध-गति को प्राप्त किया।

वीर-निर्वाण के 20 वर्ष पश्चात् उनका निर्वाण हुआ। यह समय वि. पू. 450 का था।

महावीर की परम्परा का इतिहास अतीव गौरवमय है। गणधर सुधर्मा इस इतिहास के प्रथम देदिप्यमान रत्न थे। संघ-शास्ताओं की यह परम्परा अविच्छिन्न रूप से सरित-प्रवाह की भांति चलती चली आ रही है।

□ □

पुष्प-सम्वाद

ऐ पुष्प ! कांटों के आवरण में से निकलता हुआ तुम्हारा हास दुःखी जगत् को अपने पास बुलाकर उसे सान्त्वना देने का प्रयत्न कर रहा है।

जब मैं परिव्याप्त कोलाहल से आकुल हो जाता हूं, मुझे कांटों के बीच तुम्हारी हंसती हुई प्रतिमा की स्मृति हो आती है। तब मैं तुम्हारे पास अपनी वेदना को लेकर चला आता हूं और तुम्हारे पवित्र सम्पर्क से जीवन के शोकाकुल क्षणों को व्यतीत करने को अपने भाग्य की स्वर्णिम रेखा की कल्पना का साकार होना समझता हूं। जिसने मेरी विश्व-बन्धुता को आवृत किया हुआ था, मेरी आत्मा पर से उस कठोरता के आवरण को तुम्हारी आत्मा की कोमल तरंगों ने आकर उतार फेंक दिया है।

ऐ छोटे से पुष्प ! जब मैं तुमसे वार्तालाप करने लगता हूं, तब तुम जीवन के रहस्य पर रहस्य खोलते हुए चले जाते हो। तुम्हारी कविता की भाषा में कोई ऐसा कठोर शब्द नहीं होता, जो किसी हृदय पर आघात पहुंचाता हो। कोई मनुष्य ऐसा नहीं बोल सकता, जैसे बोलने की कला-विधि तुम्हारे पास है। तुम एक अलौकिक वेदान्त हो, जिसे पक्षीगण भी पढ़ सकते है।

मनुष्य के शब्द कलह और विवाद साथ लेकर आते हैं। उन पर संसार सन्देह कर सकता है। लेकिन तुम्हारा कोई शब्द व्यर्थ नहीं जाता। सब दोषों की परिधि से उन्मुक्त होकर तुम्हारी आकाश-वाणी का दिव्य-घोष सारे ब्रह्माण्ड में मुखरित हो रहा है। तुम्हारी वाणी के गीत विश्व के सारे कवि सुनने में संलग्न हैं। उनके हृदय तुम्हारे वियोग की भावना से प्रकम्पित हो रहे है।

चेतना-हीन श्रद्धालुजन अपनी पूजा की सामग्री में तुम्हारा होना अनिवार्य मान कर तुम्हें तोड़ लेते हैं और तुम्हें उस मनुष्य के चरणों में डाल देते हैं, जिसने तुम्हारे सरल स्मित के प्रकाश की छाया में अपने जीवन की आलोक-शिखा को प्रज्जवलित किया है।

परिवर्तन

जब तुम गृह-द्वार से बाहर आकर खड़े हुए, तुमने अपने हाथ में भिक्षा-पात्र उठा लिया, तुम द्वार-द्वार भिक्षा मांगने निकल पड़े, तुम्हारे पांव धूलि से संलिप्त हो गये, चीवर तुम्हारे अति मलिन हो गए, तुम्हारी सुन्दर केशावलि अस्त-व्यस्त हो गई !

तुम्हारा यह परिवर्तन सारे संसार के लिए विस्मय बन गया है। कोई प्रेरणा अवश्य थी, जिससे तुम्हारे जीवन में ऐसी घटना घटित हुई। संसार तुम्हें जान-पाने के लिए तुम पर अपनी गम्भीर दृष्टि का प्रयोग कर रहा है।

वह जानना चाहता है--तुम ठहरे हुए हो, अथवा चलते रहने वाले यात्री हो ? तुम लक्ष्य के सन्निकट हो या उससे अभी दूर हो ?

तुम्हारी वेष-भूषा क्या इस रहस्य का प्रतीक नहीं है—ब्रह्माण्ड में सर्वत्र तुम्हारी रस-प्रतीति का अन्त हो गया है ? फिर भी तुम उस रसमय लोक तक पहुंच गए होगे, जिसकी रसानुभूति वातातीत है ?

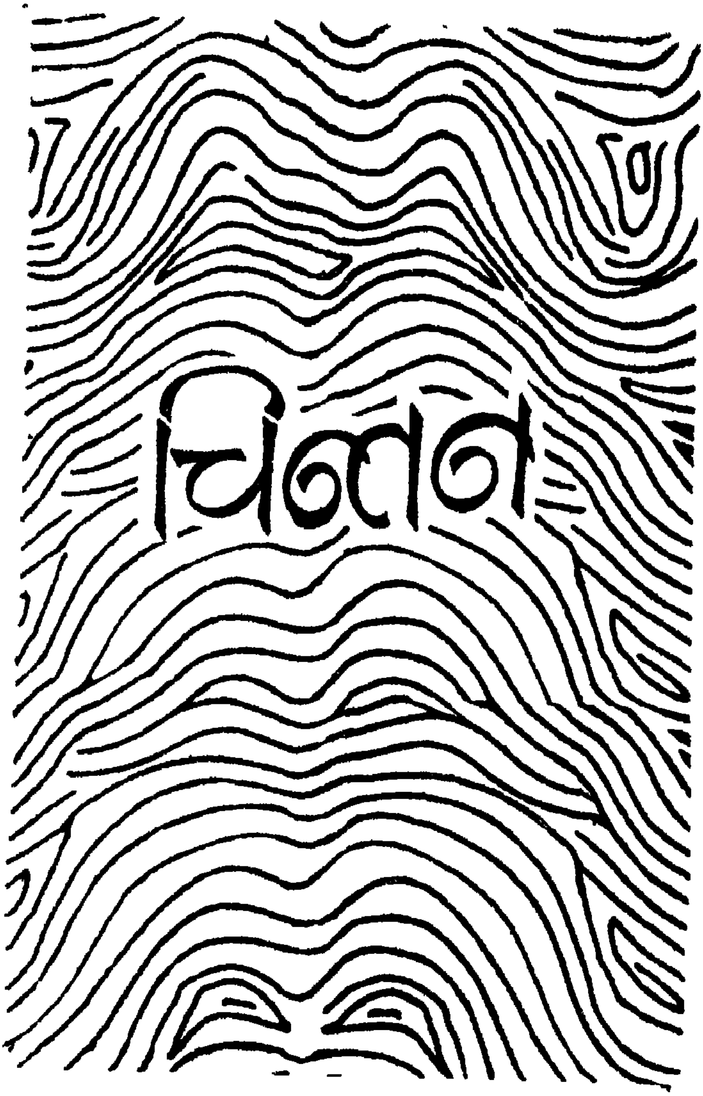
तुम्हारी यह अवस्था सूचित कर रही है, कि तुम पार्थिव लोक से ऊपर उठकर ऊर्ध्व-गामी हो गए हो, जहां अनन्त प्रकाश प्रस्फुटित होकर अपना आलोक निरन्तर सर्वत्र प्रसारित कर रहा है।

तुम्हारी यात्रा का प्रारम्भ जिसके लिए हुआ, तुम उस अमृत तक पहुंच भी गए हो या नही ?

क्या तुम्हारी वही स्थिति हो गई है, जब सरोवर का कमल कीचड़ से ऊपर उठ कर निष्काम होने का प्रयत्न कर देता है ?

तुम्हारे जीवन की परिभाषा उस बन्धनोच्छेद का संकेत कर रही है, जब अनन्त विस्तृत आकाश को देखकर बन्धन-मुक्त पक्षी की आंखों में मुक्त विहार के लिए तीव्र स्पृहा प्रकट हो जाती है ?

तुम्हारा यह परिवर्तन जब इस सत्य की साक्षी देगा, अंजलि-जल पुष्पों की एक-एक पत्ती हजार-हजार स्तुतियों के साथ तुम्हारी चरण-धूलि की अर्चना में अर्पित कर दूंगा।


चिन्तन

समय सरक कर निरन्तर अतीत हो रहा है। महामहीम विद्वद्वरेषु गुरुदेव मुनि श्री रामकृष्ण जी म० ने अतीत में सरकते समय के प्रवाह पर अक्षत/अक्षर चिन्तन अंकित किए हैं। चिन्तन के ये मौक्तिक कितने भव्य और कमनीय हैं—यह सब आप पाएंगे चिंतन-खंड पढ़कर।

विषयों की दृष्टि से हम उनका विभाजन करने में असमर्थ हैं, क्योंकि धर्म, दर्शन, साहित्य प्रकृति और प्रकृति-रहस्य, मानवता, अध्यात्म आदि विविधानेक विषयों का अंकन किया है, इसमें।

हिंदी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में प्रस्तुत चिंतनों का प्रस्तुतिकरण इसलिए आवश्यक समझा है कि इन मूल्यवान् चिंतनकणों का अधिकाधिक प्रसार और प्रकटीकरण हो। जन-मानस अधिकाधिक लाभान्वित होकर अपने चिंतन का इन्हें आधार बनाए।

संसार प्रवंचनाओं से दूर ऋषि-मुनियों के चिंतन ने सदैव ही जगत्-मंगल किया है। —सं०

प्रज्ञा-पुरुषोत्तम मुनि रामकृष्ण

The Shining Stars in my Sphere of Meditation

In my clean mirror of my life, I stare the smile of flowers, the twittering of birds and the sweet sounds of flowing streamlets. When I am amidst these wonderous joys, I have no desire for heavenly bliss.

O O

There is a straw hut in a beautiful solitary forest. From time infinite there is a lamp in it which is unlighted. It looks at you with the hope of light.

O O

Ye! Why do you knock at the doors of temple ? For whom do you wait here ? Your God is waiting for you in your own home. Are not your home, your society real temples ? There resides your God—your own religious gods.

O O

Every one is endowed with an inner vision to find out one's own path of life. One who walks on the path treaded by others goes astray.

O O

There may be thousands of lamps extinguished—people are not obliged, and do not thank them. But they do thank one lighted lamp on their path.



GREAT SCHOLAR

MUNI SHRI RAM KRISHNA JI MAHARAJ

चिन्तन के अन्तरिक्ष में चमकते नक्षत्र

मेरे जीवन के स्वच्छ दर्पण में पुष्पों का स्मित, पक्षियों का कलरव बहते हुये निर्झरों का मधुर कलकल सदा प्रतिबिम्बित होते रहते हैं। इन उत्सवों से मेरी दीर्घकालीन स्वर्गों की तृषा का अन्त हो गया है।

ο ο

सुन्दर विजन वन में एक तृणमय कुटीर है। उसमें अनन्तकाल से रखा दीपक नहीं जला है। वह प्रकाश की आशा से तुम्हारी तरफ़ देख रहा है।

ο ο

अरे ! ये मन्दिर के द्वार किस लिए खट-खटा रहा है ? किसकी प्रतीक्षा में यहां द्वार पर खड़ा है ? तेरा देवता तेरे घर में तेरी प्रतीक्षा कर रहा है। क्या तेरा घर, तेरा समाज, मन्दिर नहीं हैं ? जहां तेरे धर्म के देवता निवास कर रहे है।

ο ο

अपना मार्ग देखने के लिए प्रत्येक मनुष्य को अपनी आंखें मिली हैं। अपने नेत्रों से दूसरे के पद-चिह्नों को देखने वाला यात्री भटक जाता है।

ο ο

हजारों बुझे हुए दीपकों की पंक्ति के प्रति संसार कृतज्ञता प्रकट नही करता; किन्तु मार्ग पर प्रज्वलित दीपक को वह धन्यवाद दिये बिना नही रहता !

The great do not accepts to take birth in heaven, becauos he has nothing to do there.

O O

The great always warns the following masses—you vagrant followers! light up your own lamps for the path of the journey of your life.

O O

To look at the activities of others is that darkness in which the man loses himself.

O O

Penance always avoid worldly pleasures and comforts. The efforts to do away with sufferings is no penance. Penance becomes fruitless when it shuns the sufferings that come in its way.

O O

Great man is found on the Cross, not on flowers.

The Sermons are preached on the Cross and not on flowers.

In the phenomena of nature there is no discrimination of great and small. Like roses every one is born with thorns.

Like roses, the great man flowers on thorns and the mean feels severe pain and agony.

O O

I have always kicked the dust in my way. For this sin I have never apologised. I started repenting on it. It took me to a pond where a heap of dust was amassed. I apologised. The dust did not remember any of my sins. But In return, it presented me a fragrant and blossomed lotus.

O O

To give more importance to happiness than to misery is ignorance. There can be no difference between happiness and misery in the sphere of spiritualism.

महापुरुष स्वर्ग में इसीलिये उत्पन्न नहीं होता, क्योंकि उसके लिये वहां कोई काम नहीं है।

O O

उसके पीछे अनुसरण करने वाले जन-समूह से महापुरुष ने कहा—अपनी यात्रा के लिये अपने दीपक को साथ रखो।

O O

दूसरों के कर्तव्यों का परिज्ञान ऐसा अन्धकार है, जिसमें व्यक्ति स्वयं को खो बैठता है।

O O

साधना वह है, जो सुख का निषेध करती हो। मार्ग में से दुःख को दूर करने का प्रयत्न साधना की असफलता है।

O O

—महापुरुष फूलों पर नहीं सूली पर मिलता है।

—धर्म का सन्देश सूली पर दिया जाता है, फूलों पर नहीं।

—प्रकृति के घटना-चक्र में क्षुद्र और महान् का कोई विकल्प नही है। सभी गुलाब की तरह जीवन के साथ कांटे लेकर आते हैं।

—महान् गुलाब की तरह कांटों पर खिलता है; क्षुद्र पीड़ा का अनुभव करता है।

O O

मै अपने मार्ग की धूल को बार-बार ठुकराता रहा। इस अपराध के लिये मैने उससे कभी भी क्षमा-याचना नहीं की। मुझे इस अपराध के लिये पश्चात्ताप हुआ। वह मुझे सरोवर के पास ले गया, जहाँ धूल एकत्रित थी। मैंने उससे क्षमा-याचना की। धूल को मेरे सब अपराध विस्मृत थे। बदले में उसने मुझे सुरभि कमलों का उपहार दे डाला।

O O

सुख को दुःख से अधिक महत्व देना अज्ञान है। सुख और दुःख में विकल्प की कोई सम्भावना नही हो सकती।

I always committed a blunder in my forms of worship that I did not shrine man as my God therein.

O O

The flowers which have blossomed on the dust of the earth do not blossom on any other planet of the universe. But we do not give any importance to this great gift of the Nature.

O O

To understand the mystery of whatever the great man has said, go to a little flower. It will expose you all those meanings of the life which the great man had said for you.

O O

Before the birth of the rose, the Nature has already made a bed of thorns for it. Its whole life is full of thorns from the beginning to the end. It lives on thorns, dies on thorns, not on fineries.

O O

The child is greater than any man. To tell him small is against truth.

O O

Do resort thorns among flowers or flowers do resort among thorns ?

O O

The highest Soaring Stars in the sky are incapable to enlighten the path of the travellers in the gloom of night; but a tiny earthen lamp lighted on the earth is showing the path to those travellers.

O O

A small fire turns a huge mass of grass into ashes. So a little truth vanquishes away by its valour the biggest untruth.

मैंने अपनी उपासना की विधियों में बार-बार यही भूल की, कि उन पूजा-विधियों में मनुष्य को अपना देवता नहीं बनाया।

○ ○

जो फूल इस धरती की धूल में खिले है, वे ब्रह्माण्ड के किसी अन्य नक्षत्र से उत्पन्न नही होते। लेकिन हम प्रकृति के इस महान् वरदान को कुछ भी महत्त्व नही देते।

○ ○

महापुरुष ने जो कुछ कहा, उस रहस्य तक पहुंचने के लिये, किसी छोटे से फूल के पास चले जाओ। वह तुम्हें जीवन के सारे अर्थ बता देगा, जो तुम्हारे लिये महापुरुष ने कहा था।

○ ○

गुलाब के जन्म से पहले कांटो की शय्या का निर्माण हो गया है। प्रारम्भ से लेकर अन्त तक इसका जीवन काटों से घिरा है। गुलाब कांटों पर ही जीता है, कांटो पर ही मरता है, मृदुल शय्या पर नहीं।

○ ○

वालक किसी भी मनुष्य से छोटा नही होता, अपितु बड़ा होता है। हम उसे छोटा कह कर सत्य की अवहेलना करते है।

○ ○

क्या जहां फूल होते है, वहां कांटे होते है, अथवा जहां कांटे होते है, वहां फूल होते है?

○ ○

अन्तरिक्ष में ऊंचे उठे हुए विराट् नक्षत्र रात्रि के अन्धकार में चलने वाले यात्रियो के मार्ग को अपने प्रकाश से आलोकित नहीं कर सकते, किन्तु पृथ्वी पर जलने वाला छोटा-सा दीपक उन यात्रियों की बाधा दूर कर रहा है!

○ ○

एक छोटी-सी आग की चिंगारी विशाल तृण-राशि को अपनी तेजस्विता से भस्मसात् कर देती है।

असत्य चाहे कितना विशाल हो, लेकिन छोटे-से सत्य की ऊर्जा के सामने उसे पराजित होना पड़ता है।

The obliged branches of the tree full of flowers and fruits are bent towards the earth and thereby want to be exempted from the debt.

O O

Adventure and contentment are those lines of fortune that can never be obliterated by anyone.

O O

Is there any mirror where there is right portrait of man? To know man by his figure is a grave mistake.

O O

brutality of animal is not so horrible than that of living within a human being.

O O

The first poet of the universe was flower. It was genious, all prevading and original. Only this original poet, first of all gave the utterances of the language the form of poetry. Its melodies tinged with smile and fragrance were echoing in the whole of the universe. All the words of its language were devoid of ostentation and were esternally virtual.

O O

The dawn has come to predict—that a Divine Light is coming from the east to vanish away the far spreading cover of darkness of the night.

O O

The drowsy eyes of the flowers are open up and have filled themselves with pollen and honey and are waiting with smile to bestow to that Divine light every thing.

O O

Man has not yet open his eyes. He has no smile, no fragrance and honey to give in oblation to that Divine Light.

फल और पुष्पों से समृद्ध वृक्ष की शाखायें पृथ्वी की ओर झुकी हुई हैं। वे अपने ऋण से मुक्त होने का प्रयत्न कर रही हैं।

○ ○

साहस और सन्तोष मनुष्य के सौभाग्य की वे रेखायें हैं, जिन्हें कोई मिटा नहीं सकता।

○ ○

मनुष्य को देखने का दर्पण क्या है ? मनुष्य की आकृति से उसका परिचय कर हम एक बड़ी भूल कर बैठते हैं।

○ ○

पशु का पशुत्व इतना भयंकर नहीं होता, जितना मनुष्य के आवरण में पशुत्व भयंकर होता है।

○ ○

पुष्प विश्व का सबसे पहला कवि था। वह मनीषी था, परिभू और स्वयम्भू था। इस आदि कवि ने सबसे पहले भाषा के स्वरों को काव्य का रूप दिया। इसके स्वर स्मित और सुरभि से अतिरंजित होकर सारे विश्व में स्वनित हो गए। इसकी भाषा के शब्द छद्म से शून्य और यथार्थवादी थे !

○ ○

ऊषा संसार को सूचना देने आ गई है—रात्रि के विस्तृत तिमिरावरण को दूर करने के लिए प्राची से विराट् ज्योति आ रही है।

○ ○

पुष्पों ने अपने निद्रित नेत्र खोल लिए हैं और अपने पात्रों में पराग और मधु भर लिया है और उस विशाल ज्योति की अर्चना में उन्हें अर्पित करने स्मित के साथ प्रतीक्षा कर रहे हैं।

○ ○

मनुष्य ने अभी तक अपनी आंखें नहीं खोली हैं। उस दिव्य-ज्योति की अर्चना में अर्पित करने के लिए उसके पास न स्मित है, न पराग और मधु है।

I am not desirous of making truth as my sword for defeating anyone.

I worship truth so that there may be an incessant flow of its invincible power into me to anable me to do great deeds for the world which a Man of the Age of the past could not fulfil.

O O

The light of the sun comes out to wipe out the darkness. Truth emerges to wipe out injustice. The truth confronts injustice until the latter is defeated. The invincible power of truth never wears out against injustice.

O O

We have nothing of our own in this world. The water in the palm flows down by drops. The hands become empty.

We come with empty hands and go back with empty hands. What a great astonishment it is! We remain too busy in filling our small hands with the whole world. but we get relief from here till our hands become empty. The wealth of this world is falling down from our hands little by little.

The death has emptied my hands. It has made my journey easy like a traveller who has placed down his burden.

O O

My mighty spiritual vision is woke up. It has made my fate-lines golden. Now with the touch of these golden lines of my fate, the pieces of stones are turned into precious gems. I offer my respects not to the golden lines of my fate but to my own spiritual vision.

O O

The mirror that you hold up in your hand is not for looking the world into it. It is to see your own ugly spots through it, which are marring your beauty.

किसी को पराजित करने के लिए मैं सत्य को अपनी तलवार बनाने का इच्छुक नहीं हूं।

सत्य की उपासना मैं इसलिए करता हूं, कि उसकी अपराजेय शक्ति का मुझ में निरन्तर अवतरण होता रहे, जिसको अतीत का युग-पुरुष संसार के लिए जो कार्य नहीं कर पाया, उस महान् कार्य को मैं कर पाऊं।

○ ○

सूर्य का प्रकाश अन्धकार को मिटाने के लिए आता है। सत्य का उद्भव अन्याय को मिटाने के लिए होता है। अन्याय का अन्त होने तक सत्य उसका विरोध करता है। सत्य की अपराजित शक्ति अन्याय के सामने कभी श्रान्त नहीं होती।

○ ○

इस संसार में हमारा अपना कुछ भी नहीं है। अंजलि-गत जल बिन्दु-धारा बन कर निकल जाता है। हाथ खाली हो जाते हैं।

हम खाली हाथ आते हैं और खाली ही हाथ लौट जाते हैं। यह कितना बड़ा आश्चर्य है। इन छोटे-छोटे हाथों में हम सारे संसार को भरने में सलग्न रहते हैं; लेकिन हमें यहां से अवकाश तब मिलता है, जब हमारे हाथ खाली हो जाते हैं। संसार की एक-एक सम्पदा हमारे हाथों से नीचे गिरती जा रही है।

मृत्यु ने हमारे हाथ खाली कर दिए हैं। उसने भार-मुक्त यात्री की तरह मेरी यात्रा को सुगम बना दिया है।

○ ○

मेरा पुरुषार्थ जागृत हो गया है। उसने मेरे भाग्य की रेखाओं को स्वर्णिम बना दिया है। अब वे मेरे भाग्य की स्वर्णिम रेखायें अपने स्पर्श से पत्थर के टुकड़ों को चिन्तामणि बना देती हैं।

मैं अपनी श्रद्धा अपने भाग्य की स्वर्णिम रेखाओं को नहीं, अपने पुरुषार्थ को अर्पित करता हूं।

○ ○

जो दर्पण तू ने अपने हाथ में पकड़ा हुआ है, वह संसार को देखने के लिए नहीं है। उससे तू अपने कलंक का निरीक्षण कर, जो तेरे सौन्दर्य को कलंकित कर रहा है।

Artificiality is a mistake. Even then we try in vain to rectify our mistakes by that. The golden leaf can cover the ugliness of the mud under it, but cannot wipe it out.

O O

In the stillness of the night, the waves have strewn the gems of the sea on its vast shore; people come and look at them with astonishment and in a playful mood go away after throwing them into the sea.

O O

On the one hand we dig out a well to extinguish the fire and on the other hand we have been igniting the fire.

O O

The stars have gathered in the sky to rival the sun. In this attempt to remove the cover of night, they have started twinkling.

O O

The lamp was invented to drive away the darkness from the house and not to set anybody's hut to fire. The fire was invented for the facilities of life and not for throwing it on others.

O O

The lamp of the heart lit by the flame of wisdom is for removing the darkness in life and not for igniting the flame of envy.

O O

The rays of the sun are descending from the sky in search of a blameless life in the flowers. The flowers are hospitalizing them with their fragrance honey and pollen.

O O

The animals are going under the tree for the sake of its shade. The Yogi (a meditator) is going under the tree to enlighten the Spiritual eternal divine light of his life.

कृत्रिमता एक भूल है, फिर भी हम उससे भूलें मिटाने का व्यर्थ प्रयत्न करते हैं। सोने का आवरण कीचड़ की कुरूपता को आच्छादित कर सकता है, किन्तु उसे मिटा नहीं सकता।

○ ○

रात्रि का नीरवता में तरंगें, समुद्र की मणियों को उसके विस्तीर्ण तट पर बिखेर जाती है, मनुष्य आते हैं, उन्हें विस्मित नेत्रों से देखते हैं और आमोद की क्रीड़ा में उन्हें समुद्र में फेंक कर चले जाते हैं।

○ ○

एक ओर हम आग बुझाने के लिए कूआँ खोदते हैं, दूसरी ओर हम आग लगाते जा रहे हैं।

○ ○

सूर्य की प्रतिस्पर्धा में नक्षत्र आकाश में एकत्रित हो गये हैं। रात्रि के आवरण को दूर करने के प्रयत्न में उन्होंने टिमटिमाना प्रारम्भ कर दिया है।

○ ○

दीपक का आविष्कार घर का अन्धकार दूर करने के लिए हुआ था—किसी की झोंपड़ी में आग लगाने के लिए नहीं।

जीवन की सुविधा के लिए अग्नि का आविष्कार हुआ था : दूसरों पर अंगार फैंकने के लिए नहीं।

○ ○

मन का दीपक ज्ञान की ज्योत्ति से प्रज्वलित होकर जीवन का अन्धकार दूर करने के लिए है। ईर्ष्या की अग्नि-शिखा जलाने के लिए नहीं।

○ ○

सूर्य-रश्मियां पुष्पों में निरपवाद जीवन की खोज करने के लिए आकाश से नीचे उतर रहीं हैं। पुष्प उनका सौरभ, मधु, पराग से आतिथ्य-सम्पादन कर रहें हैं।

○ ○

पशु छाया के लिए वृक्ष के नीचे जा रहे हैं।

योगी उसकी छाया में अपने जीवन की दिव्य-ज्योति जलाने के लिए वृक्ष के नीचे जा रहा है।

There may be a bitter disputing clash and obstinacy of the world about the Faith on the great man, but there can be no different opinion about the faith on any child of the world.

O O

Swearing in the name of an adorable deity god for establishing the Truth is actually disgracing the Truth; since Truth is an open faith in itself.

O O

The life of a saint is not a hidden mystery because it is unveiled by the darkness of any deceit. It being simple is true, clear and easily understandable. Not only the man, but the trees, creepers and animals and birds also can read it accurately.

O O

I cannot refuse the poison presented to me with affection while the nectar offered to me with hatred kills my soul.

O O

Why do you consider the adversities as a curse of life? Do you not see the flower blossoming on thorns is teaming with joy.

O O

.All the ornaments have become a burdon to you. You have put- off them one by one. Have you become indifferent to them or you have found the mystery of beauty ?

O O

Those who love, never die. Love changes the poison into nectar.

O O

Smiling is the fragrance of life and the laughter is the stinking state of life.

O O

Ornaments are the "beauty of the body while character is the beauty of life.

किसी महापुरुष पर विश्वास में संसार का कलह अथवा अभिनिवेश हो सकता है; किन्तु संसार के किसी बालक पर होने वाले विश्वास में उसका मतभेद नहीं हो सकता।

○ ○

सत्य के लिए किसी आराध्य देवता की शपथ देकर हम सत्य का अपमान करते हैं। सत्य स्वयं एक स्पष्ट विश्वास है।

○ ○

सन्त का जीवन अज्ञात रहस्य नहीं होता, क्योंकि वह छद्म के अन्धकार से अनावृत है। सरल होने से वह सत्य, स्पष्ट और सुबोध है। मनुष्य ही नहीं, वृक्ष, लतायें, पशु-पक्षी भी उसे अच्छी तरह पढ़ लेते हैं।

○ ○

प्रेम से दिए गए विष-पात्र का मैं तिरस्कार नहीं कर सकता। घृणा से दिया गया सुधा-पात्र मेरी आत्मा का घात करता है।

○ ○

विषाद को तू ने जीवन का अभिशाप क्यों बनाया हुआ है ? तू देखता नहीं, कांटों पर खिलने वाले फूल का जीवन-पात्र ऊपर तक आह्लाद से आप्लावित है !

○ ○

सब अलंकार तुम्हारे लिए भार बन गए थे। तुमने उन्हें एक-एक करके उतार फेंक दिया है। तुम उदासीन हो गए हो अथवा सौन्दर्य का रहस्य तुम्हे ज्ञात हो गया है ?

○ ○

प्रेम करने वालों की कभी मृत्यु नहीं होती। प्रेम, विष को अमृत बना देता है।

○ ○

स्मित जीवन की सुरभि है। हास्य उसकी दुर्गन्ध है।

○ ○

शरीर का सौन्दर्य आभूषण है। जीवन का सौन्दर्य चरित्र है।

The eyes tearful of a great man do not indicate the agony of his own. They express the pains and sufferings of others.

O O

Perseverance and austerity is a true attempt of finding out his own vices and shortcomings. That is why the yogi is sitting in the solitude keeping his eyes closed for introspection.

O O

There are two kinds of achievements in life. One is external and the other is internal. The first is an endless dearth while the second is an eternal satisfaction. One is ignorance the other is enlightenment.

O O

O Mendicant ! your begging-bowl is the symbol of your contentment. It is not meant for hordaing up with the alms to the brim.

O O

There may be an end of the water of an ocean but there is no end of the ocean of love in the heart of man.

O O

The humanity of a man is his holy book of religious canon. No other book in the world can be more holy than this one.

O O

The value of the life gets increased when it is imprinted with politeness.

O O

A man of discripline acquires the cacapity of bearing the burden more than the earth.

O O

We believe that only the super human beings living in the heaven are gods. Very few of us recognise the gods walking on the earth in the form of man.

O O

One who is standing at the bank of a pond for fear of drowning cannot cross it ; similarly one who is afraid of failure is far from the achievements of life.

महापुरुष की तरल आंखें स्वपीड़ा का नहीं, पर-पीड़ा का संकेत कर रही हैं।

O O

साधना स्व-दोष के अनुसंधान का सत्य प्रयत्न है। योगी इसी लिए अपने नेत्रों को बन्द किये एकान्त में बैठा है।

O O

एक उपलब्धि जीवन के बाहर है, दूसरी जीवन के भीतर है। एक अनन्त अभाव है, दूसरी अनन्त तृप्ति ! एक अज्ञान है, दूसरी बोध है।

O O

भिक्षुक ! तेरी भिक्षा का पात्र तेरी तृप्ति का प्रतीक है। यह भिक्षा के अन्न से ऊपर तक भरने के लिए नहीं है।

O O

समुद्र के जल का अन्त हो सकता है, लेकिन मनुष्य के हृदय में रहे प्रेम के समुद्र का अन्त नहीं हो सकता।

O O

मनुष्य का मनुष्यत्व उसकी पवित्र धर्म-पुस्तक है। इससे पवित्र दुनिया की कोई धर्म-पुस्तक नहीं हो सकती।

O O

जीवन के सिक्के पर जब नम्रता की छाप लग जाती है, तब उसका मूल्य बढ़ जाता है।

O O

अनुशासित व्यक्ति में पृथ्वी से अधिक भार उठाने की क्षमता आ जाती है।

O O

हम स्वर्ग में रहने वालों को ही देव मानते हैं। मनुष्य के रूप में विचरण करने वाले देवता को बहुत कम लोग पहचानते हैं।

O O

जो डूबने के भय से तट पर खड़ा है, वह छोटे से जलाशय को भी पार नहीं कर सकता। जो असफलता की आशंका से आकुल है, वह जीवन की उपलब्धियों से दूर है।

The great man is never punished for his own crime. He is punished by the peopl e for showing the path to them.

O O

How colourful is the outward appearance of a peacock and yet it remains animal throughout the life.

O O

The greatest evil in the eyes of man is that they use to stare at others, but they never find any opportunity to gaze himself.

O O

Reasoning sharpens the elemental thinking and then, the light of devotion being purified, vanquish away the gloom of life.

O O

Nonviolence by words is meant for others, while nonviolence by heart is meant for the self.

O O

The truth and modesty in words is for others, while the truth and modesty of mind is for the self.

O O

The restraint of words is meant for others, while meditation is for the self.

O O

The path of passions is definite for animals.

The path of necessities is definite for human beings.

The path even beyond the necessities is surely for heavenly beings.

O O

The earth on its surface has scattered heaps of trifling pebbles and stones here and there, and has hidden the treasure of precious wealth under the deep oceans and high mountains. why ?

This precious wealth is waiting for human valour and endeavour and not for man's fortunes. Endeavour is his richest writ of destiny.

महापुरुष अपराध के लिये दण्डित नहीं होता। मार्ग-प्रदर्शन के लिए संसार उसे दण्ड देता है।

○ ○

मयूर की वेष-भूषा कितनी चित्रित है, फिर भी वह जीवन-पर्यन्त पशु ही रहता है।

○ ○

मनुष्य की आंखों में यही एक बड़ा दुर्गुण है, कि वह दूसरों को देखती रहती हैं। उन्हें अपने आपको देखने का कभी भी अवसर प्राप्त नहीं होता।

○ ○

तर्क से श्रद्धा का तात्त्विक चिन्तन चमकता है, फिर श्रद्धा परिशुद्ध होकर जीवन के अन्धकार को दूर करती है।

○ ○

शब्दों की अहिंसा दूसरों के लिए है। हृदय की अहिंसा अपने लिये है।

○ ○

शब्दों का सत्य और शील दूसरों के लिये है। मन का सत्य और शील अपने लिये है।

○ ○

शब्दों का संयम दूसरों के लिये है। समाधि का संयम अपने लिये है।

○ ○

—इच्छाओं का मार्ग पशु के लिये निश्चित है।
—आवश्यकताओं का मार्ग मनुष्य के लिए है।
—आवश्यकताओं से परे का मार्ग देवों के लिये है।

○ ○

वसुधा ने साधारण कंकर-पत्थरों के ढेर अपनेऊ पर बिखेर रखे हैं और महार्घ सम्पदाओं के भण्डार समुद्रों और पर्वतों के नीचे क्यूं छुपा रखे हैं? ये महार्घ सम्पदायें मनुष्य के पौरुष की प्रतीक्षा में हैं, उसके भाग्य की नहीं। पुरुषार्थ मनुष्य के भाग्य की सबसे समृद्ध रेखा है।

प्रज्ञा-पुरुषोत्तम मुनि रामकृष्ण

It is ignorance to give more importance to pleasure than sufferings. There cannot be any discrimination between pleasure and sufferings.

O O

I repeatedly committed mistakes in performing my prayers that therein I never made man my deity.

O O

Child is not smaller than man. We negelect the fact when we think him so.

O O

Do thorns resort where flowers are or do flowers resort where thorns are ?

O O

The smallest spark of fire reduces a heap of straw to the ashes. Similarly a heap of falsehood is conquered by the valour of a little Truth.

O O

Adventure and contentment are such writ of destiny of man which cannot be obliterated by anyone.

O O

Brutality of a beast cannot be so dreadful than that of brutish nature under cover of human being

O O

Sins are possible to be committed in the places of prayers, but a man of moral shall never commit a sin in the society.

O O

To avoid the harshness of the words, the poet gives them a shape of songs because he does not want to throw stones at the people, since man is God to him. And he is eager to present him the flowers.

O O

Adversities are always waiting for you to hand over a golden crown to you.

सुख को दु:ख से अधिक महत्त्व देना अज्ञान है। सुख और दु:ख में विकल्प की कोई संभावना नहीं हो सकती।

○ ○

मैंने अपनी उपासना की विधियों में, बार-बार यही भूल की, कि उन पूजा-विधियों में मनुष्य को अपना देवता नहीं बनाया।

○ ○

बालक किसी भी मनुष्य से छोटा नहीं, बड़ा है। हम उसे छोटा कह कर सत्य की अवहेलना करते हैं।

○ ○

क्या जहां फूल होते हैं, वहाँ कांटे होते हैं, अथवा जहां कांटे होते हैं, वहां फूल होते हैं ?

○ ○

एक छोटी-सी आग की चिगारी विशाल तृण-राशि को अपनी तेजस्विता से भस्मसात् कर देती है। असत्य चाहे कितना विशाल हो, लेकिन छोटे से सत्य की ऊर्जा के सामने उसे पराजित होना पड़ता है।

○ ○

साहस और सन्तोष मनष्य के सौभाग्य की वे रेखायें हैं, जिन्हें कोई मिटा नहीं सकता।

○ ○

पशु का पशुत्व इतना भयंकर नहीं होता, जितना मनुष्य के आवरण में पशुत्व भयंकर होता है।

○ ○

धर्म-स्थान में पाप सम्भव है, किन्तु चरित्रशील से समाज में पाप असम्भव है।

○ ○

कवि अपने शब्दों की कठोरता को दूर करने लिये उन्हें गीतों का रूप देता है, क्योंकि वह लोगों पर पत्थर फैंकना नहीं चाहता।

○ ○

विपत्ति अपने हाथों में स्वर्णिम मुकुट लिए प्रतिक्षण प्रतीक्षा करती रहती है।

The weak one sheds tears at the time of adversity while the religious one welcomes it happily.

O O

The moments purifying a man by helping him in need with your compassionate heart is better than the moments wasted in prayers standing lazily in front of the reverentional (devout) person to whom you are devoted.

O O

We virtually become beggars having repeatedly begging in our prayers.

□□

दुर्बल मनुष्य आंसुओं से विपत्ति का स्वागत करता है। धर्मशील उसका स्वागत फूलों से करता है।

○ ○

आराध्य के सम्मुख प्रार्थना में निष्क्रिय खड़े रहने की अपेक्षा उतने समय के लिये किसी सापेक्ष व्यक्ति की, अपने दयालु मन से, सहायता करके उन्हें पवित्र बना लेना अच्छा है।

○ ○

प्रार्थनाओं में हम प्रायः मांगने का अभ्यास करते हुए भिखारी बन जाते हैं।

□ □

Lord Mahavira and his Message to the Nation

Lord Mahavira was a great son of the Soil of our Motherland India. He came down from the heaven with a message to the world which was a precious boon for the whole universe and the Nation consequently we Indians, being grateful to Lord Mahavira do remember and pay Him our cordial homage every year marking his Birthday.

In this contention races of men, among all mundane necessities of life, have been feeling ever since this necessity too, that a great man with spiritual values may come down to them to show the path of peace and contentment. With this dignified human view, even after having passed thousands of years, we remember Lord Mahavira, and the spiritualistic message he gave to the races of men which is inordinately necessary to a good society and a good world.

Conclusively, we ought to accept Lord Mahavira as the integral soul of the Indian Nation and the universe as well. He was a philanthropist personality. There at His soul and efforts were not restricted to any caste or creed. He came down to justify the ways of Ahinsa and Truth to all mankind indiscriminately.

Such great men do never come alone and selfish. Ignoring their own interest, they vehemently effort for the good of others, especially for those who are forlorn, depressed and despondent. Lord Mahavira was such a cloud who rose up to the sky to pour down upon the barren Soil. He stood by the lowliest and the lost. He set out a campaign in favour

of the neglected in the society of the Nation. In his age, he found the society torn into pieces—the Brahmanas, the Kshatriyas, the Vaishyas and the Sudras—the depressed class of the society. He scanned with pervasive eyes the inequity done to the fourth class by the three elites of the society. His generous heart got so much troubled that he resolved to renounce the lustrous offer of the crown made by his elder brother Nandivardhana. This adventurous step of the Lord was a revolution in the ideology of politics that a renouncer of the crown can give a better shape to the society and the nation than a throned monarch. So he discarded the offer and became a well-renowned Bhikshuka, a philanthropist human being according to the Indian religious concept. He then went to the forest, a befitting abode for a Bhikshuka, to practise penance, restraint and austerity to attain the ever-lasting enlightenment of omniscience, an ultimate and final goal and achievement of man—a state of salvation where he becomes exempted from the total miseries of the world for good.

After achieveing this highly ambitioned goal, Lord Mahavira became Tirthankara, a supreme religious Bhikshuka. He did not follow the pursuit of early saints, sages and their commandments. A total change was brought about by Him in all the religious canonic spheres. He exempted Ahimsa and Truth from any violence or injury committed however to any creature in religious, social and ritual ceremonies. This unique form of Ahinsa was hailed by each and every sect of the society and all the creatures of the universe. This impartial compassionate religious policy made man voluntarily an obligated sympathetic to realise the feelings of miseries and happiness of his other fellow beings. Thereby we can put an end to the horror of bloody revolutions that have been occurring intermittently in the various quarters of the world for equality, liberty and fraternity.

It was a religious revolution to abolish all the evils and crimes of the society, such as slavery, cruelty to animals, lust and greed for possession more than a man needs to fulfil the necessary needs of life. Mahavira chose no other path but Ahimsa and Truth to make these evils extinct that developed in the society.

According to justified view of lord Mahavira, Ahimsa makes man a sublime compassionate, cultured and wise that every individual has his own obligation to the society who never harms and betrays his fellow beings by his heinous action. It is a multi-form virtue to be applied for driving away all multi-form vices from within the society. It is a harmonious factor between the individuals and the society to make the life easy, peaceful and righteous. For this great achievement, the followers of Mahavira's Ahimsa set up religious institution (Dharam Sanghas) in villages and cities of the country to fight against the atrocities everywhere by their own refined moralities. Taking it to be a philosophy of life, the religious sector of India interested to ponder over it deeply.

One more surpassing effort Lord Mahavira did for the whole mankind was he proclaimed that all men on earth are equal. There shall be no dicsrimination of colour, birth, caste and economy. The downtrodden class, namely, the Sudras, was benefited by this proclamation. They were given all the civil and religious rights by the people of India. It was also a concept of Ahimsa that amassed the different convictions. Thus making the nation united as a whole, this concept made the country strong and solid.

Most of the generations of India have been fostering a fallacious opinion about the Ahimsa propounded by Lord Mahavira that it weakens the adventurous spirit of man and evolves in him a meek one instead. This conviction makes man so coward and timid that he loses his valorous spirit to face his aggressive enemy of the country. But it does not

command its followers to bow down in subordination before his harmful enemy. In spite of that, it produces for its followers the verdict to be so stiff, stubborn and dauntless that he may not yield to the aggressive enemy who may never again be aggressor. Hence Ahimsa should be regarded and honoured by the people of India as a force of the country.

As a deep theology, it is a vast and comprehensive study of religion that no one can be a true moralist without going through it minutely. It is a philosophic view of life and none can find the path, covered with gloom of ignorance, in the absence of its light. It is a force and energy of life and devoid of it no country or nation can be bold or dare. Taken as a whole, being a deep philoshphy of life, religious and socialistic view should be studied with veneration by every Indian as his most obligatory moral.

On this auspicious anniversary birthday celebrations of Lord Mahavira, let us shower flowersof our humble homage on the venerated feet of Him who like the glittering Sun from the horizon, appeared with the dazzling light of Ahimsa and Truth to vanquish away the gloom of violence, injustice and tyranny pervading all over the world.

साधना के चरण चिह्न

मनुष्य अपन कृति से निर्मित होता है। कृति में कर्तव्य निहित होता है। कर्तव्य एक तप है, जिसकी साधना की जाती है। परम कर्तव्य के लिए जो प्रयत्न किया जाता है, उसे साधना कहते हैं। जीवन कर्तव्य के ही लिए होता है। कर्तव्य जीवन की परिभाषा है। कर्तव्य में मानवीय उदात्त भावना होती है, जो मानव-जीवन को उदात्त बना मानव को देती है। परम कर्तव्य के लिए साधना-परायण ऐसे उदात्त भारत की संस्कृति में 'साधु' कहते हैं—

साध्नोति परं कार्यमिति साधुः।

—परम कर्तव्य की साधना करने वाला साधु होता है।

साधना एक पथ है, परम कर्तव्य लक्ष्य है। पथ वही है, जो परम लक्ष्य तक साधु को पहुंचा दे। साधु का परम लक्ष्य उसकी अपनी आत्मा की शोध है, इस शोध मे पुनीत आचरण से पूर्व उसे आत्मा की अनुभूति हो जाना जरूरी है। साधु के लिए साधना के मार्ग में आत्मा की अनुभूति अनिवार्य है। आत्मानुभूति से ही आत्म-शोध का कार्य साधु-जीवन की प्रयोग शाला में प्रारम्भ होता है। साधु इसी शोध-कार्य में अपना सारा जीवन लगा देता है। इसके अतिरिक्त अन्य किसी भी जीवन-प्रसंग के लिए कोई अवकाश हो नहीं होता। किसी से भी वार्तालाप करने का उसके पास कोई समय नहीं होता, क्योकि उसके जीवन-क्रम में आत्म-दर्शन की अभिरुचि से अन्य और बाह्य अभिरुचियां शेष नहीं रहती हैं। वह कीचड़ में खड़े होकर जीवन व्यतीत करने वाले कमल की तरह सारा जीवन निर्लिप्त, निस्पृह होकर व्यतीत करता है।



কাব্য

भाषा-भक्तामर-स्तोत्र

○ ○

भक्तामर स्तोत्र जैन-भक्ति-जगत् का प्रसिद्ध स्तोत्र है। इसमें प्रथम तीर्थंकर आदि ऋषि ऋषभदेव की स्तुति की गयी है। मूल संस्कृत-रचयिता हैं—आचार्य मानतुङ्ग! अब तक इस स्तोत्र के शताधिक भाषा-अनुवाद हो चुके हैं। गुरुदेव ने भी भक्तामर स्तोत्र का अनुवाद प्रस्तुत किया है। अनेक मुनिराजों, विद्वानों द्वारा प्रशंसित यह अनुवाद कितना ललित बना है, यह अपने मन को भक्ति की अचल-शिला पर स्थापित करके तो देखें!

—सं०

○ ○

उपासना में नत सुरेन्द्रों के मुकुट-मणिमाल्य थे,
जिन-देव के जिन चरणों से वे प्राप्त-ज्योति-भास्य थे।
युगादि में भव-जल-पतित सृष्टि के जो आधार थे,
विधिवत् उन्हें कर वन्दना जो ध्वस्त-पाप-विकार थे ॥1॥

सकल विद्या-तत्त्व के उद्‌बोध से व्युत्पन्न-मति,
जगत्-त्रय के चित्तहरण-क्षम विपुल स्तोत्रों से स्तुति।
बद्ध-पङ्क्ति करते थे, जिस की वे देवों के पति,
उस ही आदि जिनेन्द्र मुनि की मैं भी करता हूं स्तुति ॥2॥

तुच्छ-बुद्धि स्तुति करूं यदि है मेरी निर्लज्जता,
स्वर्लोक-वन्दित! यह प्रयत्न है हृदय की विवशता।
जल में अंकित कुमुद-बन्धु चन्द्र की प्रतिच्छाया को,
कौन चाहेगा पकड़ना शिशु बिना उस माया को? ॥3॥

चन्द्रवत् निर्मल तुम्हारे विभु गुणों का संकथन,
क्या गीष्पतिवत् भी मनीषी कर सका कोई सुजन ?
प्रलय-पवनोद्धत जलीय हिंस्र जन्तु से भरे,
कौन क्षम है ऐसे जलधि को भुजाओं से तरे ? ।4।।

तुम्हारी भक्ति-वश मैं फिर भी स्तुति-परायण हो गया,
अशक्त हो कर भी मुनीश्वर ! त्वत्परायण हो गया।
सन्तति-रक्षा के हेतु प्रीति-वश दुर्बल हरिण,
व्याघ्र-सम्मुख क्या नहीं जाता भयाकुल आदि-जिन! ।।5।।

परिहास-पात्र मदज्ञता है दार्शनिकों के सामने,
श्रद्धावश की है तुम्हारी भक्ति मुझ वाचाल ने।
मधु ऋतु में मधुर रुत क्यों पुंस्कोकिल कर रहा ?
आम्र-वन का रुचिर कोरक-निकर है रस भर रहा ।।6।।

जन्म-जन्मान्तर के संचित पाप होते क्षीण हैं,
तुम्हारे गुणोद्गाता जनों के क्षण में जो मति-हीन हैं,
लोक में फला हुआ सब भ्रमर-श्यामल अन्धकार,
रात्रि का है दूर करता जैसे अरुणोदय-प्रसार ।।7।।

अल्पधी होते हुए भी नाथ ! ऐसा जान कर,
सप्रयत्न हूं तेरी स्तुति में, प्रभुता तुम्हारी मान कर।
मनीषियों को प्रीतिकर होगा यथा शतपत्र पर,
मुक्तावत् रोचिष्णु होते हैं सलिल-बिन्दु-प्रकर ।।8।।

तुम्हारे अर्चित सद्गुणों की क्यों करें मीमांसा ?
नाम से ही संभवित जब दुरित-कुल की लय-दशा।
है प्रसारित कर रहा ज्योतिष्पति अपना प्रकाश,
सरोवरों में स्फुट हैं होते जा रहे उत्पल-पलाश ।।9।।

सृष्टि-मण्डन ! कारुणिक ! इस में न कोई विस्मय,
यथार्थवादी जन तुम्हारे हों यदि त्वद्रूपमय।
कैलाशराज कुबेर की अलका को जाकर अर्थि-जन,
गह्यकेश्वर की है क्या गरिमा न आये कुबेर बन ? ।।10।।

अचल-दृष्टि-दर्शनीय ! देख तुम भगवान् को
विश्व-चक्षु देखते नहीं काम रूप-निधान को।
इन्दु-कान्ति-सम धवल पी क्षीर-सागर-नीर को।
जल-पिपासु कौन जाता लवण-सागर-तीर को ॥11॥

संसार-मस्तक-तिलक-भूषण ! भव्य तुम्हारी आकृति,
निर्मित थी जिन परमाणुओं से, वह थी चारु सत्कृति।
शान्त-रस-निर्झर थे परमाणु वे उतने ही अवश्य,
आप जैसा रूप क्योंकि पृथ्वी पर देखा न अन्य ॥12॥

वदन-वृन्दारक तुम्हारा भुवनगत उपमाओं का,
है नहीं आश्रित, स्वयं शृङ्गार सब उपमाओं का।
इस कलंकित चन्द्रमा की क्या कोई है विशेषता ?
सुर नर-भुजङ्गम-लोचनों के तुम ही चन्द्र हो शास्ता ॥13॥

व्योम में है अखण्ड इन्दु का स्फुटित किरण-प्रकाश,
ब्रह्माण्ड में तद्वत् प्रसारित है तुम्हारा गुण-प्रकाश।
नाथ ! है विश्वास जिस को आप की ही शरण का,
उस के स्वैर विहार को प्रतिहत न कोई कर सका ॥14॥

यदि सिद्ध-योग आत्मेश्वर का ब्रह्म-वर्चस अचल था,
उर्वशी आदि के आगे, क्यों करें विस्मय वृथा ?
हेमाद्रि-शृङ्ग भी अन्य गिरिवत् क्या कभी होता चलित ?
जब प्रलय-वायु भयंकर चलता है बलवत् क्षुभित ॥15॥

अद्वितीय दीप हो स्नेह-धूम आदि से रहित,
जिस में निर्मल हो रही कैवल्य-ज्योति प्रज्वलित।
जिस की प्रभा में हो रहा ब्रह्माण्ड उद्भासित अखण्ड,
निर्वाण उस का कर नहीं सकता प्रलय-वायु प्रचण्ड ॥16॥

जहाँ उदय उपराग अस्त आदि विकल्प होते नहीं,
और अनन्त प्रभाव में बाधक जलद बनते नहीं।
जिस के अनन्त प्रकाश में अभिव्यक्त हैं सारे जगत्,
हे मुनीन्द्र ! इस लोक में तुम हो दिवाकर शाश्वत ॥17॥

अनन्त उदय जिसका हुआ है, मोह,-तिमिर का ध्वंस कर,
आवृत नहीं कर सकते जिस को राहु और ये वारिधर।
मुख-चन्द्र सुन्दर वह तुम्हारा विपुल कान्ति से तरल,
अपूर्व मण्डल कर रहा द्योतित जगत् उसका विमल ॥18॥

रवि-चन्द्र दोनों की अपेक्षा क्या रही दिन-रात में ?
मिट रहा है तिमिर तुम्हारे जब मुखेन्दु-प्रभात में।
वसुन्धरा पर पक्व-धान्य-वन से शोभित लोक में,
क्या अर्थ-सिद्धि है जलाविल मेघ के अभिषेक में ? ॥19॥

ज्ञान-ज्योति अनन्त भास्वर जैसी आप में देव है,
हरि-हरादि उस से वञ्चित सभी जगत् के देव हैं।
तरल-प्रभा मणि-रत्न आदि में यथा कमनीय है,
रश्मि-राजित काच-खण्डों में न वह रमणीय है ॥20॥

ब्रह्मा विष्णु आदि में देवत्व यदि माना कभी,
आप में देवत्व-दर्शन से मिली तृप्ति तभी।
तब से बिम्बित है तुम्हारा मन में देवत्व हो गया,
अन्य देवों का उसी में लुप्त व्यक्तित्व हो गया ॥21॥

असंख्य पुत्र दिये हैं इस संसार को वनिताओं ने,
आप जैसा ज्योति-पुत्र नहीं दिया माताओं ने।
असंख्य नक्षत्रों का होता है उदय आकाश में,
प्राची से ही किन्तु आता है अरुण आकाश में ॥22॥

निष्कलंक आदित्य-ज्योति तुम्हें तमःकुल से परे,
पुरुष-सत्तम मानते मुनि-लोक श्रद्धा से भरे,
मृत्यु-सागर पार करने जन तुम्हारे प्रकाश में,
भव्य मुक्ति-पथ तुम्हीं हो, व्यक्त है विश्वास में ॥23॥

मुनि-वृन्द का यह प्रवाद है, तुम पूर्ण-ज्ञान-विस्तार हो,
इसी लिए कूटस्थ व्यापक अचिन्त्य प्रथम अवतार हो,
विश्व-शास्ता और स्वयम्भू अनन्त जिन मारजित् भी हो,
योगिराज विविक्त-दृष्टि स्वस्थ पर-राजित भी हो ॥24॥

संबोधि के उद्‌बोध से हो वस्तुतः तुम बुद्ध हो,
तीनों जगत् के सुखीकर्ता तुम ही शंकर शुद्ध हो।
निर्वाण-पथ के विधि-विधाता तुम ही ब्रह्मा प्रजापति,
है सुनिश्चित तुम ही हो जलशायी विष्णु श्रीपति ॥25॥

तुम चराचर-लोक-त्राता करुणा के अवतार को,
तुम धरा के किरीट-मण्डन अनिन्द्य शोभागार को।
तुम अखिल ब्रह्माण्ड के देवाधिदेव अपार को,
अर्पित अर्चा और नमस्या है भवाब्धि-पार को ॥26॥

इस में क्या वैचित्र्य है जितनी हैं देवी सम्पदा,
तुम्हारा शालीनत्व प्रकट करतीं अधीन हो ये सदा ?
तुम से तिरस्कृत दोष अपमानित हो गर्वित हो गये,
अन्य देवों के हो आश्रित सब तिरोहित हो गये ॥27॥

उन्नत अशोक वृक्ष के नीचे तुम्हारा विमल रूप,
उद्‌गत आभा किरणों से है कर रहा चित्रित स्वरूप।
वह मनोहर लग रहा है जैसे जलधर के निकट,
तिमिर-ध्वंसी किरण-भास्वर बाल रवि-मण्डल प्रकट ॥28॥

उदय-नगाधिराज के उत्तुङ्ग रम्य शृङ्ग पर,
उद्दीप्त-किरण-वितान से रवि-बिम्ब लगता सुषमाकर,
मणि-किरणों से रञ्जित सिंहासन पर तुम्हारा प्रभो ! शरीर,
गौर-स्वर्णिम-वर्ण लगता वैसे ही रविवत् रुचिर ॥29॥

इन्द्रों से चालित धवल चामर जो कुन्द-समान हैं,
उन से तुम्हारा रूप स्वर्णिम ऐसे कान्तिमान है।
जैसे चन्द्रोपम धवल निर्झर-समूह से स्वर्णमय,
तट सुरालय का है होता दर्शनीय अतिशय ॥30॥

चन्द्रवत् उज्ज्वल जो तीनों छत्र हैं आकाश में,
करते हैं रक्षा प्रभु को सूर्य-तापोच्छ्‌वास में।
मोतियों के विविध भूषण जिनकी शोभा कान्ति है,
तुम ही परमेश्वर हो तीनों लोक के यह ख्याति है ॥31॥

गम्भीर ऊंचे स्वन से जिसके प्रतिध्वनित हैं दिशा सभी,
दे रही ससार को शुभ-संगति-सन्देश भी।
सद्धर्मराज की जय-विजय का घोष जिस से आ रहा,
उस दुन्दुभि के घोष से नभ आप का यश गा रहा ।।32।।

स्वर्ग से दिव्य द्रुमों की पुष्प-धारा पड़ रही,
सुरभि जल के बिन्दुओं से स्निग्ध वायु चल रही।
शब्द वचनों के तुम्हारे ही कुसुम बन आ रहे,
खिन्न सृष्टि के लिए मानो सुमन जन आ रहे ।।33।।

तुम्हारे आभा-वृत्त की जो शुभ्र विस्तृत है प्रभा,
उस के सम्मुख तुच्छ लगती विश्व-ज्योति की विभा।
द्युति-वृत्त असंख्य दिवाकरों के तेज का है अधिपति,
राका से भी है अधिक लगता वह सौम्य त्विषांपति ।।34।।

स्वर्ग-मुक्ति-पथ के निर्देशन में जो मन्मित्र है,
सद्धर्म के सिद्धान्त की व्याख्या मे दक्ष विचित्र है।
दिव्य ध्वनि यह आप की विशद अर्थ मे है, आकलित
संसार भाषाओं का जिससे रूप होता है स्फुटित ।।35।।

उद्बुद्ध स्वर्णिम-नवकमल-वन से भी जो कमनीय है,
द्योतित नखो की किरण-ज्वाला से अतिरमणीय है।
तुम्हारे उन चरणो की प्रतिमा अङ्कित होती है जहा,
आकाश के है देव करते कमलो की रचना वहा ।।36।।

मुनीन्द्र ! धर्मोपदेश में निरुपम तुम्हारी विभूति थी,
अशोक आदि की अन्य देवों के न शोभा होती थी।
दिनकर की आभा में ही प्रभुता है तिमिर के नाश की,
है कहा क्षमता वहा नक्षत्र-चक्र-प्रकाश की ।।37।।

मद-वारि-निर्झर बह रहा जिस के कपोलो से सतत,
कोप जिसका बढ़ा रहे अलि-वृन्द उन्मत्त अविरत।
ऐरावतवत् यदि उद्दण्ड बन गजराज सम्मुख हो कही,
तुम्हारा शरणाश्रित कभी उस से अधीर होता नही ।।38।।

कुञ्जरों के जिस ने मस्तक फाड़ रक्त बहा दिया,
उन के मुक्ताफल से भूतल को सुशोभित है किया।
आक्रान्ता मृगपति-पाद के नीचे है जो जन आ गया,
पादपंकज लीन हो जाने से मुक्ति पा गया ।।39।।

उड़ रहे है स्फुलिङ्ग जिस से दूर नभ-विस्तार मे,
अतिभयानक प्रलय की अग्नि के घोर आकार में।
है निगलने विश्व को यदि आता ऐसा दावानल,
उसे बुझा सकता तुम्हारे नाम-सकीर्तन का जल ।।40।।

क्रोध से उद्धत उत्फण नेत्र जिस के रक्ततम,
उन्मत्त-कोकिल-कण्ठ-सम है वर्ण जिस का कृष्णतम।
पाओं से सकता दबा वह ऐसे विपधर हिंस्र को,
रखना हृदय में जो तुम्हारे नाम के अहि-मन्त्र को ।।41।।

शत्रु-सम्राटो की सेना यदि युद्ध में सन्नद्ध हो,
नाद दारुण जहां गजादि करते श्रेणीबद्ध हों।
तमिस्रा का प्रलय निश्चित है जैसे अरुण-रश्मि-धाम मे,
शत्रु-बल का भी प्रलय निश्चित तुम्हारे नाम से ।।42।।

भालों से भिन्न हाथियों के वृन्द के शोणित-प्रवाह,
में उतरने तरने को आकुल सभी योद्धा जहां।
ऐसे भीषण युद्ध मे भी महान् अजेय अरि-पक्ष पर,
तुम्हारे चरण-प्रभाव से जेय शत्रु पाता विजयवर ।।43।।

क्षुब्ध भीषण मकर आदि से क्षुभित है हो रहा,
और भयकर वडवानल से जो ज्वलित है हो रहा।
ऐसे जलधि की तरंगों पर यदि जलयान हो,
आप के चिन्तन से जाता पार सकल्याण हो ।।44।।

जलोदर आदि असाध्य रोगों से यदि जन व्यथित हों,
शोकावस्था में निमग्न और मृत्यु के सन्निहित हों।
उपलेप से वे आप के पादारविन्द पराग के,
कामवत् अधिपति हो जाते सुश्री और दिव्यांग के ।।45।।

जो कण्ठ से पाओं तलक है बद्ध शृङ्खल-जाल से,
और व्रणित हैं जिन की जङ्घा बेडियो की धार से ।
तुम्हारे नाम-मुमन्त्र के संतत-स्मरण-प्रयास से,
अनायास जाते मुक्त हो इन बन्धनों के त्रास से ।।46।।

मद-कल हस्ती सिह अरण्य-वह्नि विषधर-व्याल के,
युद्ध जलधि और जलोदर रोग कारागार के।
भय से डर कर भाग जाते उस के ये सारे ही भय,
जो मनीषी स्तुति तुम्हारी नित्य पढता ध्यानमय ।।47।।]

जिनेन्द्र ! आप की स्तोत्र-माला है मेरा भक्ति-प्रमाण,
पुष्प चित्रित वर्णमय करते है जिस के गुणानुगान ।
जो कोई रखता है इस को कण्ठ में अपने सदा,
लक्ष्मी बलात् आती अवश्य उस मानतुंग के क्षेमदा ।।48।।

प्रसाद :

मुनि रामकृष्ण ने भक्तामर का है किया पद्यानुवाद,
गुरुदेव योगिराज की ही है कृपा का यह प्रसाद।
स्तुति-व्याज से भगवान् ऋषभ की मै ने की है अर्चना,
मै भी तीर्थंकर बनू निष्काम है यह भावना ।।

भाषा-कल्याण-मन्दिर-स्तोत्र*

○ ○

स्तोत्रावलि की प्रदीप्त मणि कल्याण मन्दिर स्तोत्र ! मूल भाषा संस्कृत,' रचयिता—आचार्य सिद्धसेन दिवाकर ! महान् प्रभावक यह स्तोत्र सदियों से भक्तमनों के आह्लाद का केन्द्र है। सामान्यजन के लाभान्वित होने के लिए, इसका भाषानुवाद गुरुदेव ने किया है। अनुवाद कितना सटीक एव मूलस्पर्शी व सरस है, आस्वाद द्वारा अनुभव करें !

—सं०

○ ○

कल्याण-मन्दिर इष्ट-दाता पाप-नाशक शुभ्रतम,
त्रस्त-त्राता चिन्तामणि और नीलवर्ण अनिन्द्यतम।
संसार-सागर-पतित जीवों के जो वे जलयान हैं,
उन पार्श्व-जिन के चरण-युग में नमन ससम्मान हैं ।।1।।

गुणोदधि प्रभु में प्रशान्त अनन्त अतिगम्भीर था,
उस के सम्मुख कमठ का अभिमान निष्फल सर्वथा।
क्षम नही जिसकी स्तुति में सहस्र-नेत्र बृहस्पति,
उस ही तीर्थेश्वर की किन्तु कर रहा हूं मैं स्तुति ।।2।।

अवर्णनीय-स्वरूप के किञ्चित् तुम्हारे स्वरूप को,
हम में है शक्ति कहां जो बता सकें उस रूप को।
प्रकाश-भीरु उलूक-शिशु यदि धृष्ट हो साहस करे,
है सूर्य की ज्योति का वर्णन उस के साहस से परे ।।3।।

*इस स्तोत्र का पाठ सायंकाल करना चाहिये।

मोह-क्षय से भी मनुष्य अनन्त उदित प्रकाश में,
क्षम नही है आप की गुण-गणना के प्रयास में।
जल-शून्य सागर से प्रकट रत्नों की सख्या प्रलय में,
कवि है कोई जो बता सके ब्रह्माण्ड के इस वलय में ॥4॥

होने पर भी मन्द-बुद्धि, हूं समुत्सुक नाथ मै,
अनन्त-गुण-सागर ! तुम्हारे हे प्रभो ! स्तवनार्थ मै।
अपने बाहु-युग्म फैला क्या कोई बालक कही,
सिन्धु की विस्तीर्णता का अनुमिति-बोधक नही ? ॥5॥

तुम्हारे गुणों का ज्ञान है योगि-जनों से भी परे,
उन की व्याख्या ज्ञान-परिधि मेरी मति कैसे करे ?
इस लिये स्तुति-यत्न को अविवेक अपना मानता,
मैं तो पक्षिवत् हूं बस, कलरव ही करना जानता ॥9॥

अचिन्त्य प्रभुता से कलित जिन स्तुति तुम्हारी श्लाध्य है,
संसार का उच्छेद तुम्हारे नाम से ही साध्य है।
ग्रीष्म ऋतु के ताप से आक्लान्त सन्तत पान्थ को,
जलाशय के सरसानिल से ताप-पीड़ा शान्त हो ॥7॥

हृदयस्थ कर तुम को तुम्हारी करता है जो उपासना,
टूट जाती क्षण मे उसकी सघन कर्म-निबन्धना।
भीति से अहि भाग जाते छोड़ चन्दन-वृक्ष को,
वन में आते देख कर मयूर यम-सदृक्ष को ॥8॥

घोर शत उत्पातकों से सहज जाता मुक्त हो,
ध्यान-दृष्टि-गम्य तुम से जब भी कोई युक्त हो।
प्राची दिशा से सूर्य को होते प्रकाशित देख कर,
भाग जाते है यथा तस्कर पशु-व्रज छोड़ कर ॥9॥

संसृति के समुद्र को तुम कैसे करते पार हो ?
तरने वालों में स्थित हो कर स्वयं होते पार हो !
यह अविद्या है, अतः तुम ही हो उन के कर्णधार,
भस्त्रा में पूरित पवन ही जलधि से करता है पार ॥10॥

हरि-हरादि को जिस ने अपना विजित वश्य बना लिया,
जीत कर उस स्मर को तुम ने ऊर्ध्व-शक्ति बना दिया।
संसार को चण्डाग्नियों का जल है कर देता शमन,
उस ही सागर-जल का दुर्धर वडवानल करता दहन ॥11॥

गिरिवत् गुरुता की तुम्हारी तुलना असम्भव सर्वथा,
है महान् आश्चर्य मन में तुमको रखा भी तथा।
रख हृदय में तुम को मुमुक्षु जन्म-जलधि तर रहे।
अचिन्त्य प्रभुता उत्तमों की लोक हैं स्तुति कर रहे ॥12॥

क्रोध की अग्नि को तुमने पहले ही था बुझा दिया,
फिर कर्म-चोरों को कहो दग्ध तुमने कैसे किया ?
उष्णत्ववत् इस शैत्य में भी दाह-शक्ति है सही,
नील द्रुमों को हिम-शिशिरता है उन्हें जला रही ॥13॥

योगी तुम परमात्मा को ढूंढते हैं हृदय में,
गिरिशृङ्ग सरिता-तट न रहते विजन हो या निलय में।
शुचि कान्तियुत पद्माक्ष का एक कर्णिका आधार है,
अन्य पुष्प न विश्व में उस अक्ष का आधार है ॥14॥

क्षण में मुमुक्ष भव्य जन ! आपके सद्ध्यान से,
आत्म-ज्योति में लीन होते, मुक्त-देहाभिमान से।
तीव्र अग्नि-योग से अश्मादि दोषों से रहित,
शुद्ध हो जाते हैं धातु स्वर्ण में रूपान्तरित ॥15॥

स्वान्त में जिन के सदा रहता तुम्हारा प्रकाश है,
उन भव्य जन की देह का करता समूल विनाश है।
मध्यस्थ जो होते है उन का ऐसा ही तो स्वभाव है,
कलहप्रशान्ति कर हैं देते ऐसा उनका प्रभाव है ॥16॥

आप में तादात्म्य-बुद्धि से मनीषी स्वत्व में,
हो समाहित व्यक्त होते आप के तेजस्त्व में।
जल से भी होता है संभव दूर हलाहल का विकार,
मन्त्रित उसे यदि कर रहा हो तव नाम का सद्विचार॥17॥

हरि-हरादि की कर रहे पर बादी जो हैं उपासना,
तुम वीतराग सुदेव की ही कर रहे अराधना।
पीत-ज्वर के रोग से पीडित मनुष्य क्या नहीं,
देखता है श्वेत शङ्ख को पीतता-रञ्जित वहो ? ।। 18 ।।

धर्म-शास्ता के निकट धर्मानुशान के समय,
मनुष्य ही नहीं तरु-लता भी छोड़ देते शोक-भय।
अंशुमाली सूर्य के प्रातः उदित हो जाने पर,
उन्निद्र जन्तु-लोक है विकसित हैं कमलारण्यवर ।।19।।

चतुर्दिक् में गगन से सुर-पुष्प-वृष्टि हो रही,
किन्तु अधोमुख हैं प्रसव-बन्धन महाविस्मय यही।
आप के दर्शन से भव-बन्धन भी जाते टूट हैं,
स्वान्त जिन का स्वच्छ है क्लेशों से जाते छूट हैं ।।20।।

हृदयार्णव से आप के जो प्रकट वाणी हुई,
और जीवातु सुधा वह अमोघ भी थी बन गयी।
सुधातिशायी मोद पाते हैं जिसे पी भव्य जन,
शीघ्र अजरामर हैं हो जाते सदा वे विदेह वन ।।21।।

पाद-पद्म-पराग प्रभु का छू गगन में उड़ रहे,
शुचि देव-चामर यह बताने हैं गगन में जुड़ रहे।
इन मुनि-पुङ्गव को जो श्रद्धा से करते वन्दना,
वे ऊर्ध्व गति को प्राप्त करते करके इनकी अर्चना ।।22।।

आसीन भद्रासन पर हो जब देते धर्म-सुदेशना,
तुम श्यामवर्ण को देख परिषत् करती प्रीतिव्यञ्जना।
हेमगिरि के शृङ्ग पर पर्जन्य श्यामल देखकर,
नाच उठते हैं हर्ष से जैसे मयूर खगेश्वर ।।23।।

आभा-मण्डल से तुम्हारे है समुच्छ्रित किरण-जाल,
अशोक-तरु का विरक्त जिस से हो रहा है पर्ण-माल।
आप के संसर्ग से यदि जड़ कोई नीराग हो,
इस में आश्चर्य नहीं असुमान् यदि गत-राग हो ।।24।।

अन्तरिक्ष में दिव्य दुन्दुभि तार निस्वन कर रहा,
लोक तीनों को है मानो यह निवेदित कर रहा ॥
प्रमाद-निद्रा छोड़ कर प्रभु को शरण्य जान लो,
निर्वाण-पथ के सार्थवाह को धर्म-नेता मान लो ॥25॥

धूलि-वात्याओं से प्रथम नील नभ सब भर दिया,
शठ कमठ ने रोष-वश अन्धतमस तब कर दिया।
उस से आभा आप की किञ्चित् न धूमिल हो सकी,
दुष्कृत से किन्तु चेतना पांसुल हुई उस दुष्ट की ॥31॥

अत्युग्र मेघ स्तनित करते छा गये आकाश में,
घोर वर्षा हो गयी फिर विद्युतों के प्रकाश में।
पार्श्व के परितः कमठ ने जल-प्रलय था कर दिया,
अपना ही संसार-सागर उस ने दुस्तर कर लिया ॥32॥

खड़े-बिखरे बाल जिन के अग्नि मुख से उगल रहे,
डाल कर नर-मुण्ड-माला, जो गले में चल रहे।
पिशाच-गण भेजे तुम्हारे पास थे उस कमठ ने,
पाप-कर्दम में स्वयं को डाला था उस शठ ने ॥33॥

अन्य कार्य छोड़ तुम्हारी पाद-पंकज-वन्दना,
तीनों समय विधिवत् उपासक करते जो आराधना।
भक्ति से पुलकित हो जन संसार-कारागार से,
धन्य जीवन कर विमुक्त हो जाते दुःख अपार से ॥34॥

संसार-पारावार में मैं परिभ्रमण करता रहा,
इस का हेतु था तुम्हारे नाम से वंचित रहा।
आप का यदि नाम पावन सुनने को मिलता कभी,
क्या विश्व में आतंक कोई पास आ सकता कभी ? ॥35॥

तुम्हारे चरणों की न मैं ने पहले कभी उपासना,
जो कल्प-द्रुमवत् पूर्ण करते अर्थिजन की याचना।
अतः बना इस जन्म में मैं तिरस्क्रिया का पात्र हूं,
निराश आशाओं को ले भ्रमित होता सर्वत्र हूं ॥36॥

आत्म-चक्षु मेरा मोह-तिमिर से आवृत रहा,
अतः तुम्हारा स्वरूप अब तक मुझ से अन्तर्हित रहा।
मर्मभिद् ये अनर्थ-चक्र मुझ को इस संसार में,
अतः व्यथित करते रहे वे अमित पारावार में ॥37॥

आप को मैं ने सुना अर्चा भी की दर्शन किये,
किन्तु हृदय-दर्पण में मेरे तुम नहीं द्योतित हुए।
हे विश्व-बन्धु ! दुःख मेरा अनुसरण करता रहा,
अतः मैं भाव-विहीन हो धर्माचरण करता रहा ॥38॥

दुःखी-जन-बन्धु हो तुम और अशरण के शरण्य हो,
करुणा के हो अनिन्द्य-मन्दिर और वशि-मूर्धन्य हो।
भक्ति से हूं नत क्या इच्छा बता दूं अब तुम्हें ?
दुःखांकुरों को दग्ध करने में करो तत्पर हमें ॥39॥

अनन्त-शक्ति दुःख-मोचन और विश्व-जनीन है,
रागादि-शत्रु-जिष्णु जिन की कीर्ति विस्तीर्ण है।
ऐसे तुम्हारे चरणों का भी ध्यान मैं न कर सका,
रिक्त-विधि के कोष को अपने अतः न भर सका ॥40॥

इन्द्र अर्चा कर रहे हैं, तुझ अनन्त-प्रकाश की,
संसृति से पार कर दो नौका मुझ निराश की।
निष्पाप कर रक्षा करो और दया का संस्कार दो,
सन्ताप-सागर में पतित को दयावतार उबार दो ॥41॥

अनर्घ श्रद्धा चरणों में तेरे समर्पित है प्रभो,
विश्वस्न अनघ मेरे शरण्य, तुम ही जगत् में हो विभो।
पाद पंकज की सतत भक्ति का हो कोई भी फल,
पर भव में भी तुम बनो आराध्य इच्छा हो सफल ॥42॥

समाधि में संलीन हो निष्काम जो श्रद्धालु जन,
उल्लसित रोमाञ्चित पुलकित तथा भक्ति-प्रवण।
चिन्तामणि के मुखाम्बुज पर अचल-तारा दृष्टि से,
भव्य जन पार्श्व को करते अर्चा स्तोत्र-विशिष्टि से ॥43॥

विश्व-लोचन-कुमुद-कुल के चन्द्रमा ऋक्षेश्वर,
वे प्रभास्वर दिव्य वैभव का सुखद परिभोग कर।
फिर मर्त्य लोक में जन्म ले प्रनष्ट कर कर्मों का मल,
शिव-गति मुक्ति को करके प्राप्त हो जाते अचल ।।44।।

उपहार:

तीर्थंकर प्रभु पार्श्वनाथ की, कल्याण-मन्दिर संस्तुति का,
भाषा में पद्यानुवाद कर, संचय किया है जिस सुकृति का।
चरणों में वह सब अर्पित है उनके जिनकी कीर्ति अमल है,
पूज्य गुरुदेव योगिराज जो, संयम-सर के अमल-कमल हैं।।

मेदिनी से अन्तरिक्ष तक स्वर्णिम जो पर्वत राज है,
परिक्रमा में जिस को ज्योतिश्चक्र और ग्रह-राज हैं।
नन्दनादि अमयारण्य से प्रकृति शोभावनार है,
स्वर्गों से अतिशयित इन्द्रों का वह रमणागार है ।। 11 ।।

तार-स्वरित कल-गान, गन्धर्वो का जिस से आ रहा,
स्वर्णिम आभा से सुशोभित साधुवाद है पा रहा।
जिसे मेखलाओं का निकर है अपरागत कर रहा,
शैलेश वह अङ्गार वन ज्योति प्रसारित कर रहा ।। 12 ।।

व्योम मे है ज्योति-राजवत् द्युति-भास्वर भू मध्य स्थित,
वसुधा पर सम्राट् बन कर रहा शासन अविजित।
रत्नादि चित्र-प्रभा से जिसका कर रहे अभिषेक है।
हेमाद्रि सूर्यवत् प्रसारित कर रहा आलोक है ।। 13 ।।

प्रकृति-पुत्र सुरालय सब पर्वतों में महान् है,
यशस्वी कीर्तित दर्शनीय, दिव्य लक्ष्मीवान् है ।
श्रमण ज्ञात-पुत्र सब धर्म नायको मे महान् थे,
क्षात्र-वश और ज्ञान दर्शन-शील से शालीन थे ।।14 ।।

जैसे दीर्घाचल कुलों मे निषध की है श्रेष्टता,
वलयाकृतिक अचलावली मे रुचकाचल की श्लाध्यता।
उस वीतराग-ज्योति की थे मनीषी करते अर्चना,
मुमुक्षु-श्रमण उस महाश्रमण की करते थे समुपासना ।। 15 ।।

योगी बनकर योग-पथ पर चल पड़ा था महाश्रमण,
आत्म द्रष्टा बन सदा करता समाधि में रमण।
धर्म अनुत्तर दृष्ट हुआ उसे अपने आत्मज्ञान मे।
स्थिर था वह शङ्खेन्दु से भी वदात शुक्ल ध्यान मे ।।16।।

कर समूल विनाश कर्माशय का योगिराज ने,
तीर्थङ्कर धर्मराज आत्मेश्वर ऋषिराज ने ।
ज्ञान दर्शन शील मे ससार वृत्त मिटा दिया,
अनन्त-ज्योति ब्रह्म-पद पर फिर विराजित हो गया ।। 17 ।।

पादपों में शाल्मी-द्रुम रम्यता में प्रधान है,
सुपर्णों की है रङ्गशाला देव-द्रुम के समान है।
विपिनों में नाकेश-वन नन्दन विभूषण है यथा,
कैवल्य-ज्योति ज्ञातृ-पुत्र भी सृष्टि का शृङ्गार था ।।18।।

स्तनित की सब ध्वनियों में अतिस्वनता होती है यथा,
नक्षत्र-चक्र में चन्द्रमा की प्रभुता होती है यथा।
गन्धों में चन्दन की मधुर मञ्जुलता होती है यथा,
मुनि-सार्थ में मुनिराज वह अरविन्दवत् अनृण्ण था ।।19।।

यथा स्वयम्भू सागरों में दुस्तर अतल अपार है,
धरणेन्द्र नागकुमारों में सम्राट् दिव्य विशाल है।
इक्षु-रस सब रसों में स्वादिष्ठ रुचिर रसराज है,
तपश्चरण में तपःपताका ज्ञातृ-सुत मुनिराज है ।।20।।

द्विरद-कुलमण्डन ऐरावत इन्द्र-गज नागेन्द्र है,
नदियों में गङ्गा प्रशस्त मृगों में व्याघ्र मृगेन्द्र है।
पक्षि-कुल में उच्च-पद-स्थित यथा गरुड वैनतेय है,
निर्वाण-वाद के नायकों में अग्रणी त्रैशलेय है।। 21 ।।

योद्धाओं में सम्राट् केशव की है कीर्तित वीरता,
क्षत्रियों में चक्रवर्ती की ख्यात यथा है क्षात्रता।
निर्वर्णनीय है पुष्पों में अरविन्द की रमणीयता,
वर्धमान की लोक के ऋषियों में स्तुत्य है आर्षता ।।22।।

लोक में है दान जितने अभय-दान-समान नहीं,
निष्पाप प्रयत्नो से कोई अन्य सत्य प्रमाण नहीं।
ब्रह्मवर्चस हीन तप कोई फलित होता नहीं,
ज्ञातृ-पुत्र का लोक में कोई साम्य हो सकता नहीं ।।23।।

सर्वार्थ-सिद्ध के देव जैसा सुख नहीं संसार में,
सुर-सभा जैसी द्युति नहीं विश्व-सभ्यागार में।
संसार के सब धर्मों में अतिमान्य पद कैवल्य है,
ज्ञातृ-वंश के दीप-सम ज्योति न कोई अन्य है ।। 24 ।।

चिन्तामणि के कांति-मण्डल की,
असीम आभा से असीम आकाश ।
पाताल दिशा वसुधा स्वर्गादि,
अवदात बने निष्पाप आवास ॥

जिस की प्रभुता से देवासुर,
नर सभी हुए अतिविस्मित हैं ।
हर्षित सागर हैं ब्रह्माण्ड सुखी,
वह तीनों लोक से संस्तुत है ॥

सुकृत-लोक और संबोधि-सूर्य,
अकामुक-भाव उदित ,हो जाते ।
निर्वाण कल्प-द्रुम सुलभ हो जाते ॥
अन्तर्दीप ज्वलित हो जाते ॥

जगच्चन्द्र-पार्श्व दया-सागर को,
श्रद्धा प्रणत जो वन्दन करते ।
वे भवच्छेद कर शाश्वत अपना,
सर्व काम्य फलित कर लेते ॥

विश्व सञ्जीवन पार्श्व ! तुम्हारे,
दर्शन की प्रभुता से मानव ।
है अधिगत कर लेता एक-छत्र,
इन्द्र, सम्राट् का शासन-वैभव ॥

वाञ्छितार्थ सब सिद्ध हो जाते,
दुर्भाग्य दुरित दुर्दिनभय कष्ट ।
सब ही विलीन हो जाते उसके,
मैं भी मुक्त बनु ँ कर कर्म-प्रनष्ट ॥

जिसके प्रखर विस्फार तेज मे,
हो रहे जगत् है आलोकित ।
मोह-तिमिर भी मिट जाता है,
हो जाता कलि सत्य में परिवर्तित ॥

जहां ज्योति शश्वत् जलती रहती,
लक्ष्मी-विलास ग्लान नहीं होता ।
वे हितङ्कर भ्राजिष्णु पार्श्वनाथ,
मुझे दें त्राण विश्वस्त त्राता ॥

बाल-रवि तम का लय करता,
दैन्य का करता है कल्पाङ्कुर ।
व्याघ्र-शिशु गज-वृन्द का करता,
जल जाता स्फुलिङ्ग से काष्ठ-निकर ॥

रोग उपशान्त सुधा-बिन्दु से,
हो जाते यथा निश्चित निदान है ।
तथा कल्याणी मूर्ति तुम्हारी,
कष्टों में ज्योति करती प्रदान है ॥

ओंकार-विभूषित मन्त्र चिन्तामणि,
ह्रीं-श्री-सहित मन्त्रों का नेता ।
अर्हन्-नमिऊण-पास-सुयोजित,
लोक-त्रय को वशंवद कर देता ॥

बिसहर वसह से अलङ्कृत है जो,
और जिन-फुलिङ्ग से दीप्तिमान् ।
कर्म-फणि-विष अहि-गरल का,
कर प्रणाश देता निर्वाण ॥

चिन्तामणि के अभिज्ञेय पार्श्व को,
हृदय-कमल में कर प्रतिबिम्बित ।
ह्रीं श्रीं नमः से आसेवित
योगी इस पर कर मन केन्द्रित ॥

भुजा भाल नाभि कर-तल पर,
फिर हृदय में कर प्रणिधान।
परिगणित जन्मों में ऋषिवर,
संसार का कर लेता अवसान ॥

रोग-शोक कलह और मारी,
मानस-व्यथा अशान्ति भय दुष्कृत।
दुर्जनातङ्क दुर्विध-रेखायें,
अनिष्ट ग्रह-भूत-प्रेतादि-कृत ॥

व्याघ्र द्विरद अहि हिंस्र पशु भी,
ये सब उनके असंभव हो जाते।
जो श्रद्धा-स्नात विमल हृदय से,
त्रिसन्ध्य पार्श्व को वन्दन करते ॥

निकेतन शक्र-सदन हो जाते,
स्वर्मणि-गो-द्रुम-घट व्यक्त हो जाते।
देव मनुष्य दानव नत-मस्तक,
पार्श्व-स्तोता के हित-रत रहते ॥

पादाम्बुज में चिन्तामणि के,
जो सतत ध्यान-परायण रहते हैं।
गुणि-जन-दुर्लभ संसृति-समृद्धियाँ,
विवश आतीं सुख पाते हैं ॥

पार्श्व-यक्ष से अर्चित पार्श्वनाथ !
पापावरण अपावृत कर तुमने।
अनन्त प्रभास्वर प्रभा उदित की,
मुदित किया लोक तीर्थंङ्कर तुमनें।

चिन्तामणि के अमोघ-द्वार से,
इच्छुक याचक निराश न आया।
संबोधि-दीप जले निरन्तर,
मैं भी आशा लेकर आया ॥

पूज्य गुरुदेव की अर्चा में हम,
आग्रह्व खड़े हैं नत-मस्तक ।
तुम ने बोधि-दीप जलाया,
भूतार्थं हुआ मुक्ति-पथ द्योतक ॥

अद्यतन जो साधु प्रयत्न हैं,
जो होंगी कृति अनागत में ।
तुम्हारे भव्य वरदान से ये सब,
होंगे सुप्रथित प्रसिद्ध जगत् में ॥

□□

श्री शान्त्यष्टक स्तोत्र

अज्ञान अत्याचार दुर्नय दैन्य और दरिद्रता,
दुष्काल दुर्जन-वृत्ति-दंशन दमनवृत्ति अभद्रता ।
पापास्रवोद्भव-बन्धना कर्मकलिदुर्भावभय,
श्री शान्तिनाथस्मरण से साद्यन्त करते प्राप्तक्षय ॥1॥

जो भव्य जीवों के शरण्य तारण-तरण भगवान् हैं,
विद्याविमुख के हित सुसंवित् आर्ष प्रज्ञावान् है ।
जिनकी सुनिर्मल कान्ति ही ससार का आलोक है,
श्री शान्तिनाथानुग सदा गत-खेद है गत-शोक है ॥2॥

जितने शरीरी जीव हैं उनमें शरण का भाव है,
दावाग्नि से दहता हुआ नरलोक ही मृगदाव है ।
बडवाग्नि-दग्ध-भवादि पीयूषनीरद एक है,
श्री-शान्तिनाथालम्ब जिसके वरहस्त अनेक हैं ॥3॥

वातज कफज पित्तज तथा भूतज कुकर्मज रोग है,
इनसे उपाधित जीवजग बहु-दु.ख जिनका भोग है ।
मन प्राण देहाध्यास का एकैक औषध है महा,
श्री-शान्तिनाथ ध्यान-वैद्यों-मुनिवरों ने है कहा ॥4॥

प्रभु शान्ति जब गर्भंग हुए, कुरुक्षेत्र अपस्मार से,
था ग्रस्त प्रतिदिशि त्रस्त थी जनरुदन हाहाकार से ।
अतिशय हुआ, सहसा मृगी का अन्त हो आया सुखद,
श्री-शान्तिनाथ-प्रताप का बरसा धरा पर अमृत जलद ॥5॥

अचिरा सुजाता कुक्षि के जगरत्न शान्ति-जिनेश है,
मृगलाञ्छनायुत् शान्तिकर शङ्कर महिम्न महेश हैं ।
सुखचक्रवर्ती विश्वसेनात्मज सुरामृत-कुम्भ हैं,
श्री-शान्तिनाथा-नन्दमय अमृतनयन शिवशम्भु हैं ॥6॥

मन-मुकुर में वैराग्यदीपक शान्ति-प्रभु का नाम है,
निर्भ्रान्ति निर्मल चित्त-हित शीतल सुखद विश्राम है।
सर्वार्थ-साधक क्लेशहर नवनिधि-कलित सम्पन्न है,
श्री-शान्तिनाथ-स्मरक ही सुस्थिर सुधीर प्रसन्न है ॥7॥

निर्वेद स्थायी भावमय अद्भुत सरस मृत्युञ्जय महत्,
संशय-निवारक सौख्यप्रद भेदज्ञ सौष्ठवभावहृत्।
शान्ति-सागर शान्ति-बीजक शान्तिनभ निर्भय-सदन,
श्री शान्तिनाथानुग मनुज-गति-लाभ करता कीर्तिघन ॥8॥

सुभग सुलभ सुखशान्तिमय शान्तिनाथ का नाम है,
रामकृष्ण मुनि-जन-शरण सुर-तरु-तल-विश्राम है।
जो नर निर्मल-चित्त बन नित्य जपै यह नाम है,
आधि-व्याधि भयमुक्त हो शान्ति-लभे सुखधाम है ॥9॥

—०—

दिव्य-सुधा रस पीने वाले,
सुर स्वर्गों में मर जाते।
किन्तु प्रेम सुधा पायी मानव,
इस धरती पर कभी न मरते ॥

महा-पुरुषोत्तम मुनि रामकृष्ण

श्री महावीराष्टक-स्तोत्र

जिसकी ज्योति बन विभु फैली थी सब संसार में,
मार्ग-दर्शक थी असद्-वादों के घोर अन्धकार में।
नित्य प्रात: विबुध जन के जो वन्दनीय हैं बने,
वे अहर्निश प्रकट हों प्रभु वीर मेरे सामने ॥ 1 ॥
जनक सिद्धार्थ नृपवर का था पुण्यालोक उदित हुआ,
जननी त्रिशला का जगत् में सम्मान लक्ष्मीवत् हुआ।
जन्म जब कुल में लिया जिस सुत विनय-शालीन ने,
वे अहर्निश प्रकट हों, प्रभु वीर मेरे सामने ॥ 2 ॥
बन्धु बन जनता को था सब राज्य स्वर्ण अर्पित किया,
मृदु-हृदय से एक पट भी विप्र याचक ले गया।
युवराज से योगी महानिर्ग्रन्थ भिक्षुक जो बने,
वे अहर्निश प्रकट हों प्रभु वीर मेरे सामने ॥ 3 ॥
गिरि-गुहा और विजन वनराजि निकुञ्ज-वितान में,
पुष्प-पल्लव और परागों से सुगन्धित स्थान में।
कैवल्य-ज्योति प्रकट की ध्यानस्थ योगी महान् ने,
वे अहर्निश प्रकट हों प्रभु वीर मेरे सामने ॥ 4 ॥
संयम-पवित्रित मूर्ति पर ज्योतिरर्चा में मुदित,
सुरराज बरसाने लगे सुर-पुष्प दिव्य-द्रुम-जनित।
अघ-वृन्द सब प्रनष्ट कर जो विश्व-मंगल थे बने,
वे अहर्निश प्रकट हों प्रभु वीर मेरे सामने ॥ 5 ॥
तारा-पथ के मेघ से जलधार गिरती हैं यथा,
तुम्हारे सस्मित वदन से भी दया बरसने लगी तथा।
शान्त की यज्ञीय-हिंस्र-ज्वाला, करुणा के अवतार ने,
वे अहर्निश प्रकट हों प्रभु वीर मेरे सामने ॥ 6 ॥

जब तुम्हारा देशना-तीर्थ जनता में हुआ था प्रवृत्त,
सैद्धान्तिकों के शुद्ध हुए कुमान्यता से मलिन चित्त।
उस तीर्थोदक का पानकर गणधर लगे ऋत मानने,
वे अहर्निश प्रकट हों प्रभु वीर मेरे सामने ॥ 7 ॥

सुरेन्द्रों, सम्राटों श्रमण-वृन्दों से सम्परिवृत हुए,
निर्वाण के थे चरम क्षण, तुम अयोग में संस्थित हुए।
अपापा में दे देशना फिर मुक्तिगामी थे बने,
वे अहर्निश प्रकट हों, प्रभु मेरे सामने ॥ 8 ॥

—o—

यदि बुझा दी दीप-शिखा तो,
सत्पथ कथम् आलोकित होगा ?
रात्रि के तिमिरावरण में,
लक्ष्य कथम् दृष्टिगत होगा ?

चतुर्विंशति-स्तव

लोकोद्योत धर्मतीर्थंकर,
जिन अर्हत् कृत केवल ज्ञान।
ऋषभ अजित सम्भव अभिनन्दन,
सुमति पद्मप्रभ प्रज्ञावान् ॥1॥

शुभ्र सुपार्श्व चन्द्रप्रभ उत्तम,
सुविधि पुष्पदन्त भगवान्।
शीतल श्री श्रेयांस श्रेयकर,
वासुपूज्य भवतारक यान ॥2॥

विमल, अनन्त, धर्म शान्तीश्वर,
कुन्थु जिनेश विराग-वितान।
अर तीर्थंकर धर्मधुरन्धर,
मल्लि वन्द्य मुनिसुव्रत ध्यान ॥3॥

नमि अरिष्टनेमि लोकोत्तम,
पार्श्व वर्धमान शुभध्यान।
अभिस्तुत्य अजरामर गतिधर,
विमल मुक्ति-पदवी संज्ञान ॥4॥

सर्वोत्तम संसिद्ध रोगहर,
स्वयंबुद्ध सम्बोधि-प्रधान।
अविकल्पा समाधि-वरदायक,
सोमसदृश निर्मलकर भान ॥5॥

सूर्याधिकप्रकाश कर सागर,
सम गम्भीर, सिद्धि का दान।
दें, प्रसन्न हों सिद्ध जिनेश्वर,
रामकृष्ण मुनि भिक्षु-समान ॥6॥

नान्दी-मंगल-पद्यानुवाद

O O

जैनागमों में नन्दी सूत्र का अपना वैशिष्ठ्य है। उक्त सूत्र की ज्ञान विषयक चर्चायें मुमुक्षु-जनों के हृदयों को आह्लादित कर आनन्दार्णव मे निमज्जित कर देती हैं।

नन्दी-सूत्र के प्रारम्भ मे मंगलाचार किया गया है। यह 'नान्दी-मंगल' भावों की दृष्टि से और साहित्यिक-दृष्टि से बहुत अद्भुत है।

यहां प्रस्तुत है—नान्दी-मंगल का पद्यानुवाद! इसका चिन्तन-मनन-पठन पाठकों को अनहद आनन्द से सराबोर करेगा, ऐसा विश्वास है।

—सं०

O O

जय जग-जीव-योनि-विज्ञानी!
जगदानन्द जगद्-गुरु नाथ।
जगत्पितामह जय जय भगवन्!
जगद्बन्धु जय जय जगनाथ ॥1॥

जय श्रुत-प्रभव चरम तीर्थंकर,
जय जय लोक-उत्तमज्ञान।
जय प्रभविष्णु महात्मा जय,
जय जय महावीर भगवान् ॥2॥

सर्वजगद्द्योतक जिन का,
श्रुतरज वीर-पुरुष का भद्र।
भद्र सुरासुर-नमस्य महत् का,
जिनके सारे भव सुभद्र ॥3॥

श्रुतरत्नाप्त महागुण-मन्दिर
रथ्या दर्शनशुद्ध सुवास ।
सङ्घनगर भवदीय चरित का,
है हे भद्र अखण्ड प्रकाश ॥4॥

जिसका नाभिक तव शुभ संयम,
सम्यग्भाव परिधि तप आरक ॥
सदा विजय हो सङ्घ-चक्र की,
जो भवबन्धन-छेदन-कारक ॥5॥

नियम-तुरग शीलाङ्ग पताका,
नान्दी-घोष स्वाध्याय महान् ।
तव, जिस सङ्घरथामर के हैं,
उसका हो हे प्रभु ! कल्याण ॥6॥

कर्मरजो-जलराशि-विनिर्गत,
जिनरवितेज-प्रबुद्ध, पराग ।
जिसका उत्तरगुण, श्रावकजन,
भ्रमरावृत जिसके अनुभाग ॥7॥

पञ्च-महाव्रत-स्थिरकर्णिक सित,
श्रमण-सहस्रदलीय-मृणाल ।
सङ्घ-पद्म की सदा स्वस्ति हो,
श्रुतरत्नावलि जिसकी नाल ॥8॥

संयम-लाञ्छनमय अक्रियवाद,
राहु-वदन से नित्य दुर्द्धर्ष ।
सङ्घ चन्द्र तव जय हो, निर्मल,
सम्मतज्योत्स्ना के तुम हर्ष ॥9॥

परतीर्थिक-निस्तेजक द्युतिमय,
ज्ञान-ज्योति तपतेज-प्रदीप्त ।
सङ्घसूर्य की सर्व स्वस्ति हो,
जो उपशममय अनघ अलिप्त ॥10॥

धृतिवेलापरिगत स्वाध्यायि,
योग-मकर भगवद् अक्षोभ।
सङ्घोदधि की स्वस्ति हो,
जो हैं रुद्ध अकाम अलोभ ॥11॥

सद्दर्शनवरवज्र सुदृढ़तम,
पृष्ठशिला पर सुष्ठु प्रतिष्ठित।
श्रेष्ठ धर्ममणिरत्न-सुमण्डित,
चामीकर-मेखल-परिवेष्टित ॥12॥

नियम-सुवर्णशिलातितुङ्गशिख,
चित्तोद्दीप्तकूटमय सुन्दर।
नन्दनवन शुभशील-सुरभिमय,
जीवदयामय गह्वर-कन्दर ॥13॥

मुनि-मृगेन्द्रवर-वासाकीर्णित,
हेतु सुधातु सुभास्वर मेरु।
रत्नदीप्त गह्वर आभामय,
ओजदीप्तिमय सङ्घ सुमेरु ॥14॥

संवर-विमलवारि से उद्वह,
प्रवहमाण निर्झर है धार।
श्रावक-दूरःवनन-गति,
नृत्तापूरित-गह्वर-द्वार ॥15॥

प्रवर-विनय-नय-मुनिवर-स्फूर्तित,
विद्युज्ज्योतिशिखर-शुभ्रान्त।
विविध-सुगुण-सुरतरु-फलकुसुमित,
शोभामय श्रीमय श्रीकान्त ॥16॥

नानारत्नदीप्त-वैदूर्यक-
चूलामय बाह्याभ्यन्तरवर।
विनय-प्रथिति से वन्दनीय शुभ,
संघ-महामन्दर सुशीर्षंकर ॥17॥

दर्शन-ज्ञान-चारित्र-रचित-कटि,
शीलसुपक्षी तप-श्रुतशेखर।
द्वादशी उत्तुङ्ग समुज्ज्वल,
संघमहामन्दर सुवन्द्यवर ॥18॥

नगर-चक्ररथ-सागर-रवि-शशि,
मेरु-पद्म-सदृश दिव्योत्तम।
वन्दनीय गुणसंघ सङ्घ यह,
अनुपम अतिमहनीय महत्तम ॥19॥

ऋषभ अजित सम्भव अभिनन्दन,
सुमति पद्मप्रभ तीर्थप्रकाश।
जिन सुपार्श्व, शशि-शीतल श्रीमय,
श्री-श्रेयांस विधान-विकास ॥20॥

वासुपूज्य वरदायक नन्दी,
विमल अनन्त धर्म शान्तीश।
कुन्थुनाथ अर मल्लि सुधाधर,
मुनिसुव्रत नमि-प्रभु जगदीश ॥21॥

नेमि पार्श्व सन्मति तीर्थंकर,
सद्गति-साध्य सुवन्द्य सुरूप।
स्वयंबुद्ध सम्बोधिविधायक,
मङ्गल-ध्येय अनन्त अनूप ॥22॥

000

योगाक्षर योगायत गुरुवर,
योगिराजप्रज्ञान-समुद्वह।
गुणानुवाद हुआ यह सम्भव,
बुद्धियत्न से अतिशय दुर्वह ॥23॥

योगतीर्थ सम्पूर्ण कृपापय,
योगिराज श्री रामजीलाल।
रामकृष्णमुनि सूत्रस्वरूपी,
गुरुगुण-मुक्तिसुमौक्तिक-माल ॥24॥

पञ्च-परमेष्ठि-वन्दन

अरिहंत-वन्दना

अरिहन्त देव ! तुमको शत वन्दन, तोड़ दिए कर्मों के बन्धन,
प्रकट हो गई केवल-ज्योति, हो दयालु करुणा के स्यन्दन ।।1।।

अतिशयों के तुम हो स्वामी, सब भाषाओं के हो ज्ञाता।
जनता को सन्मार्ग दिखाते, है संसार उपकार मानता ।। 2 ।।

शरीर तुम्हारा है अतिसुन्दर, सूर्यसम आभा है उसकी।
सर्वथा दोष-मुक्त जीवन है, नहीं गुणों की सीमा जिसकी ।।3।।

अविनय अभक्ति यदि हुई हो, नाथ ! भूल कर भी जीवन में।
क्षमा मांगता मुनि रामकृष्ण है, विनम्र हो तुम से वन्दन में ।।4।।

सिद्ध-वन्दना

कर्मों का आवरण हटाकर, हो गए तुम मृत्यु से पार।
मुक्ति-पद पर विराजमान हो, कर लिया तुमने आत्मोद्धार ।।1।।

सर्वज्ञ सर्वदर्शी हो भगवन् ! अखिल जगत् के हो तुम ईश्वर।
स्थित होकर निजस्वरूप में, बन गए तुम शुद्ध श्रेष्ठवर ।।2।।

अचल-स्वरूप-भव-भ्रमण-रहित हो, अतुल-स्वरूप हो सिद्ध-भगवान्
प्रातः तुम को वन्दन करते, मुमुक्षु जन सारे ससम्मान ।।3।।

अविनय अभक्ति यदि हुई हो, नाथ ! भूलकर भी जीवन में।
क्षमा मांगता मुनि रामकृष्ण है, विनम्र हो तुमसे वन्दन में ।।4।।

आचार्य-वन्दना

इन्द्रिय-संयत ब्रह्म-निष्ठ और, निष्कषाय महाव्रतधारी।
पञ्चाचार समिति गुप्ति से, अलंकृत हैं जो संघ के प्रहरी ।।1।।

कर्म-क्षय में प्रयत्नशील हैं, धर्म-भावना से अतिरञ्जित।
शुद्ध-मति और विवेकशील हैं, चरित्र जिनका है अतिपूजित ।।2।।

प्रज्ञा-पुरुषोत्तम मुनि रामकृष्ण

अनिन्द्य-रूपवचन-माधुर्य, धर्मोपदेश सिद्धान्त-समन्वित ।
हैं गुण ऐसे आचार्य श्री के, उन्हीं से होता सङ्घ संचालित ।। 3।।

अविनय अभक्ति यदि हुई हो, नाथ ! भूल कर भी जीवन में ।
क्षमा मांगता मुनि रामकृष्ण है, विनम्र हो तुमसे वन्दन में ।।4।।

उपाध्याय-वन्दना

जिन-वाणी के अध्ययन में, सदा निरत रहा करते हैं ।
निरुत्तर करने में वादी को, जो बुद्धि कौशल रखते हैं ।। 1 ।।

विविध दर्शनों के ज्ञाता हैं, बोधि दे करते गत-शोक ।
अज्ञान-तिमिर को दूर भगाते, कर प्रकाशित ज्ञानालोक ।।2।।

धर्म में सबको स्थिर करते हैं, तप से करते तृष्णा-प्रशमन ।
ऐसे उपाध्याय श्रुत-सागर से, संङ्घनगर रहता अतिपावन ।।3।।

अविनय अभक्ति यदि हुई हो, नाथ ! भूलकर भी जीवन में ।
क्षमा मांगता मुनि रामकृष्ण है, विनम्र हो तुमसे वन्दन में ।।4।।

साधु-वन्दना

संयम-पथ के जो यात्री हैं, साधुता में रुचि अगाध ।
समिति-गुप्ति का पालन करते, व्यर्थ कथा का करते बाध ।। 1 ।।

जीव-दया निष्कषाय वचन है, सतत करते हैं ज्ञानाभ्यास ।
कषायों की ज्वाला को बुझाते, उदित हो रहा आत्मप्रकाश ।।2।।

वन में योगी बन कर रहते, तोड़ सभी संसार के बन्धन ।
ऐसे योगिराज गुरु को, जगत् कर रहा शत-शत वन्दन ।। 3 ।

अविनय अभक्ति यदि हुई हो, नाथ ! भूल कर भी जीवन में ।
क्षमा मांगता मुनि रामकृष्ण है, विनम्र हो तुमसे वन्दन में ।। 4 ।।

—०—

○ ○

'व्यक्ति और समष्टि', धर्म-दर्शन के ये दो चिर-चर्चित विषय हैं। व्यक्ति जब अपने में सिमट जाता है, तब वह लोक के लिए अमंगल बन साकार होने लगता है। स्वार्थ से प्रेरित हुआ व्यक्ति न जाने दूसरों का कितना अहित कर गुजरता है।

संकीर्णता से ऊपर उठ कर सोचना, यह अध्यात्म का प्रथम सोपान है। व्यक्ति का समष्टि बन जाना, उसकी चरम परिणति है। आचार्य अमितगति ने अपने संस्कृत काव्य में व्यक्ति के चिन्तन को समष्टि में ढाला है। चिर लोकप्रिय कृति को अब आप हिन्दी माध्यम से पढ़, अपने चिन्तन को नई दिशा दे सकेंगे।

—सं०

○ ○

सबसे मैत्री गुणी जनों से,
मोद, क्लिष्ट में कृपापरत्व।
वैपरीत्य माध्यस्थभावमय,
हो आत्मा हे देव! सुतत्त्व ॥1॥

यथा कोष में खड्ग स्थिति है,
असंपृक्त अतिरिक्त विविक्त।
तव अनुकम्पा से जिनेन्द्र प्रभु,
मम आत्मा हो कल्मष-मुक्त ॥2॥

सुख-दु:ख-शत्रु-बन्धु-वर्ग में,
योग-वियोग भवन वन में।
सभी ममत्व-बुद्धि से नि:सृत,
रहे सदा समता मन में ॥3॥

कीलित, लीन वस्तु-सम सुस्थिर,
लिखित बिंब-सम ज्योति-प्रदीप।
अंधकारहर युगल-चरण तव,
सुस्थित हों बन उर के दीप ॥4॥

प्रज्ञा-पुरुषोत्तम मुनि रामकृष्ण

किये प्राणियों के अपघात ।
देव! क्षम्य हो परपीडन या,
मर्दन के अशेष अवपात ॥5॥

यदि कषायवश मोक्षमार्ग के,
दुर्मति से किञ्चित् प्रतिकूल ।
देव क्षम्य हो कदाचार की,
बन्धकारिणी मेरी भूल ॥6॥

निन्दा-गर्हालोचन-वश हो,
की कषायमय मैं ने काया ।
मन्त्रौषधगुणवैद्य-सदृश भव,
नष्ट करूंगा दुष्कृत माया ॥7॥

जिनातिचार चरित्र-कर्म यदि,
यदि प्रमादवश कर अतिक्रान्त ।
शीलोच्छेद हुआ हो मुझ से,
शुद्धि करूं प्रतिक्रम को प्राप्त ॥8॥

मनःशुद्धि की विधि का अतिक्रम,
शीलवृत्ति का लङ्घन-धर्म ।
विषयों में वर्तन आसक्तिक,
प्रभो, अनाचार का कर्म ॥9॥

यदि पदार्थमात्र से विरहित,
अथवा वाक्ययोग से हीन ।
मद्भाषित हो क्षम्य शारदे!
बोधि-सुलभ कैवल्याधीन ॥10॥

बोधि समाधि शुद्धि शिवसौख्यक,
आत्मलब्धि चिन्तामणि मान ।
वाग्देवी ! तव अनुकम्पा से,
सभी मिले शुभचिन्तित दान ॥11॥

सब मुनीन्द्र-वृन्द से संस्मृत,
सर्व नरामरेन्द्र से संस्तुत।
वेदपुराणशास्त्र में वर्णित,
देव, देव मम उर हो प्रस्तुत ॥12॥

दर्शन-ज्ञान-सुखावह-प्रकृति,
विश्व-विकार व्याधि से बाह्य।
परमात्माभिधान देवर्षभ,
समाधेय मम उर में ग्राह्य ॥13॥

क्लेशजाल का परमोच्छेदक,
अन्तर्जगद्-योग का द्रष्टा।
विद्यमान हो मेरे उर में,
अन्तर्गत भावों का स्रष्टा ॥14॥

मुक्तिमार्ग का प्रतिपादक जो,
जन्ममृत्युव्यसनों से दूर।
कल्मषरहित त्रिलोकज्ञ मम उर,
वास करे देवेश सुपूर ॥15॥

सकल शरीरि-कुल का नाशक,
वीतराग और पूर्ण अदोष।
परम निरीन्द्रिय ज्ञाता द्रष्टा,
मेरे उर बन रहे सुकोष ॥16॥

व्यापक विश्वजनीनस्वभावो,
सिद्ध विशुद्ध कर्म से मुक्त।
ध्यात विकारवर्ग से उपरत,
मेरे उर वासी हों सूक्त ॥17॥

सूर्यरश्मि-सम निष्कलंक जो,
कर्म-कलंकों से अस्पृश्य।
नित्य निरञ्जन शरणागत हूं,
जो अनेक अदृश्यादृश्य ॥18॥

सूर्य की अनुपस्थिति में भी,
अखिल विश्व का एक प्रकाश।
आत्मस्थित सुबोध-शरणागत,
हूं जो जग का अधिवास ॥19॥

जिसके दर्शन से जगती का,
होता सुस्पष्ट विविक्त दर्शन।
शान्त शुद्ध शिव तथा अनादिक,
परम अनन्त विकर्षाकर्षण ॥20॥

काम मान मूर्च्छा भय निद्रा,
और विषाद यूथ को क्षार।
किया आर्ष जिस देवानल ने,
उसका शरण मिले प्रतिवार ॥21॥

धरावज्र तृणशय्या अथवा,
किसी फलक-निर्मिति से भिन्न।
कषायादि से रहित 'पुरुष' को,
कहते सुधी अदोष अखिन्न ॥22॥

शय्या संघगठन नर-पूजा,
कोई भी समाधि का साधन।
नहीं, भद्र, अतएव बाह्य से,
विषय-विमुख कर धर्माराधन ॥23॥

बाह्य पदार्थ नहीं कोई भी,
मेरा ऐसा अवधारण कर।
बाह्यमुक्त हो सदा स्वस्थ बन,
मेरा-तेरा का वारण कर ॥24॥

आत्मा में आत्मा का द्रष्टा,
दर्शनज्ञान-चरित्र-समन्वित।
तू विशुद्ध एकाग्रचित्त हो,
बन सकता समाधि से संवित ॥25॥

मेरी आत्मा सदा एक है,
शाश्वत निर्मल ज्ञानागम्य ।
अपर वस्तुएं सदा विलोमी,
भंगुर कर्मज और अगम्य ॥26॥

जिसका ऐक्य नहीं काया से,
पुत्र मित्र दारा से कैसे ?
उसका सम्भव ऐक्य चर्म से,
पृथक् रोम को कुस्थिति जैसे ॥27॥

जन्ममृत्यु-वन में संयोग से,
प्राणी अमित दुःखों का भोग ।
करता करणयोगत्रिक-धारक,
आत्मार्थी बन सुभग सुयोग ॥28॥

सर्व-विकल्प-सहित जगतीवन,
का सम्भ्रान्त सखेद विहार ।
असम्पृक्त आत्मा का दर्शन,
देह भिन्न कर सब सुखकार ॥29॥

निजकृत पूर्व कर्म का फल ही
नित्य शुभाशुभ-रूपी मिलता ।
यदि परदत्त मिले फल पल-पल,
क्यों स्वशूल कुसुमों-संग खिलता ॥30॥

निःसृत कर निज चिन्तन से यह,
फलदाता है अन्यत् कोई ।
तुमसे पृथक्, तुम्हें फल देती,
कर्मलता तुमने जो बोयी ॥31॥

अमित विकासपुञ्ज परमात्मा,
चिरानवद्य ध्यान से सम्भव ।
मुक्ति निकेत श्रेष्ठ सम्पूरित,
आत्मा-हित चिरशाश्वत वैभव ॥32॥

परमानन्द-पंचविंशिका

○ ○

जैन दर्शन का हार्द आत्म-बोध है। आत्म-बोध का अर्थ है—स्व का बोध! 'स्व' से परिचित होना ही साधक का परमोच्च लक्ष्य है। अनन्तानन्त काल से जीव परद्रव्य में रचापचा है। उसी की अनुभूति करता है। दुःख का कारणय ही है। स्व को पाना परम आनन्द है, निर्वाण है।

परमानन्द-पंचविंशिका संस्कृत-काव्य (स्तोत्र) में विद्वान् आचार्य ने 'स्व' की अनुभूति को जगाने का यत्न किया है। उसका हिन्दी रूपान्तर प्रस्तुत है। पढ़ें और बहें, आत्म-बोध के भाव में।

—सं

○ ○

परमानन्द-प्रमोदमय अमल अमर अविकार।
ध्यानहीन निज देह में लखे न आत्मासार ॥1॥

अमित सुखों का कोष जो ज्ञानामृत-रसमेघ।
अमितवीर्य-सम्पन्न है आत्मा दर्शनवेग ॥2॥

सर्वसंग से रहित है निर्विकार चैतन्य।
निराधार आनन्दघन शुद्ध सुलक्ष्य अनन्य ॥3॥

उत्तम है अध्यात्म की मध्यम चिन्ता मोह।
अधमा चिन्ता काम की परचिन्ता अतिद्रोह ॥4॥

निर्विकल्प सुसमाधि से ज्ञानामृत-सञ्जात।
पीते तपी विवेक को कर अञ्जलि दिनरात ॥5॥

सदानन्दमय जीव का ज्ञाता ही सुज्ञात।
परमानन्द-सुहेतु का करता साधन मान ॥6॥

जल से भिन्न यथा कमल करता जल में वास।
तथा देह में विभु बसा निजस्वभाव का वास ॥7॥

द्रव्यकर्म से मुक्त अतिभावकर्म से हीन ।
रहित सदा नो कर्म से नित्य चिदात्मा-मीन ॥8॥

अमित ज्ञानरूपी सुरवि निज शरीर में स्वस्थ ।
ज्ञानहीन जन्मान्ध इव लखते नहीं अकथ्य ॥9॥

कर्मक्षय जिस ध्यान से धरते वह सित-ध्यान ।
तत्क्षण दर्शन शुद्ध का होता चिन्मय दान ॥10॥

चिदानन्दमय शुद्ध है निराकार संशुद्ध ।
सुखारोग्यसम्पन्न सब संगविवर्जित बुद्ध ॥11॥

निश्चय नय से लोकमित आत्मा मात्र प्रमाण ।
देहमात्र व्यवहार से मुनिभाषित मुनित्राण ॥12॥

शुध्ददृष्टि के क्षण सदा मिट जाती गतिभ्रान्ति ।
स्वस्थचित्त अविकल्प हो देता चिर विश्रान्ति ॥13॥

वही एक परब्रह्म है वही एक जिन श्रेष्ठ ।
परम तत्त्व वह परमगुरु अतिशय-धर्मा ज्येष्ठ ॥14॥

परम ज्योति तपसा परम परम ध्यान वह एक ।
परमात्मक आत्मा परम चरम नितान्त अनेक ॥15॥

वही सुखों का कोष है वही सर्व कल्याण ।
चिद्रूपी शिव शुद्ध है वही सत्त्व का प्राण ॥16॥

ज्ञानरूप वह अपर है परम-शान्ति-सन्धान ।
भवतारक शुभ यान वह सुख-कारक विज्ञान ॥17॥

परमानन्द वही अजर वही एक सुखदातृ ।
घन-चैतन्य सदैव वह गुणसागर गुणभातृ ॥18॥

परमहर्षसम्पन्न जो रागद्वेष से मुक्त ।
'सोऽहं' जो देहस्थ है पण्डित उससे युक्त ॥19॥

निराकार संशुध्द हो निजस्वरूप में नित्य ।
अष्टगुणायत सिध्द अज अमल निरञ्जन सत्य ॥20॥

सिध्दात्मा के तुल्य जो निज आत्मा को मान ।
सहजानन्दप्रकाशमय चेतन-गुण सुज्ञान ॥21॥

यथा दुग्ध में घृत बसा यथा शिला में हेम, ।
तैल यथा तिल में बसा तथा देह में क्षेम ।।22।।

यथा काष्ठ में अनल बन रहती शाश्वत शक्ति ।
तथा देह आत्मा बसा कहते ज्ञानी व्यक्ति ।।23।।

आनन्दरूपी तत्त्व परमानन्द का जो धाम है,
संकल्प और विकल्प दोनों से रहित अभिराम है ।
स्वभावरत जन का समुद् जिसमें सदा आवास है ।
वह योगियों का तत्व आत्मा ज्ञानदीप-प्रकाश है ।।24।।

जो धर्मशील मुनीन्द्र हैं वे नियत दुःख से मुक्त हैं,
परमात्मतत्त्वोन्मेषवश मोक्षाधिकारी युक्त हैं ।
क्षणमात्र आत्मयान पर आरूढ़ वे सिध्दार्थ हैं,
मुनि रामकृष्ण वरेण्य वे सन्मति-पुरुष फलितार्थ हैं ।।25।।

रत्नाकर पंचविंशिका

○○

'आलोचना' में पाप का बन्ध और विसर्जन दोनों रहे हुए हैं। आलोचना में रहा 'लोचन' जब अपने को देखने लगता है, तब पाप मल की निवृत्ति होने लगती है। यही 'लोचन' जब दूसरों के कृत्य पर टिक जाता है, तब पाप-बन्ध शुरु हो जाता है।

'रत्नाकर पंचविंशिका' में आत्म-आलोचन किया गया है। अन्तर् के नयन को उघाड़ने का अद्भुत निमन्त्रण है यह! आत्म-अवलोकन से प्रकाश-बिम्ब फूट पड़ेगा, भक्त के हृदय मे! पढ़िए! प्रस्तुत हिन्दी-रूपान्तर!

○○

मंगल केलि सद्म श्री श्रेयस्,
भूपेन्द्रार्चित चरण सरोरुह।
हे सर्वज्ञ प्रधान कलानिधि,
अतिशय सर्व सुमेध चिरञ्जय ॥1॥
जगदाधार कृपावतार प्रभु,
वैद्य विकार विकट संसार।
वीतराग हे, मुग्धभाव वश,
प्रस्तुत करता विज्ञ, विचार ॥2।
क्या लीलावश निर्विकल्प हो,
रखता निज विचार नहिं बाल।
प्रस्तुत तव सन्मुख विनीत हो,
करता निज यथार्थ सुविचार ॥3॥

प्रज्ञा-पुरुषोत्तम मुनि रामकृष्ण

शील-साधना अथवा तप-मख,
दिया न मैंने किञ्चित् दान।
रहा कभी न शुभभावी मैं,
भ्रमा जगत् दिङ्मूढ़ समान ॥4॥

क्रोधानल से दग्ध भजूं क्या,
लोभोरग से दंशित, नाम।
मायाजाला बेध ग्रसित हूं,
अजगर रूप ग्राह है मान ॥5॥

परभव अथवा इस भव में भी,
किया न परहित कोई काम।
यही हेतु मेरे दुःखों का,
मात्र जन्म मम संख्या काम ॥6॥

तव वदनामृत रश्मि लाभ से,
हे मनोज्ञवृत्त मैं वञ्चित।
मोक्षानन्दरसामृत कर्कश,
वज्रशिला से भी है ममहित ॥7॥

जगज्जनक भवभ्रमण अनन्तर,
प्राप्त किए तुमसे त्रय रत्न।
इनको भी प्रमाद निद्रा वश,
खोये, किससे कहे अयत्न ॥8॥

परवञ्चक वैराग्य-स्वांग रच,
जनरञ्जनहित करके उपदेश।
विद्याध्ययन विवादहेतु कर,
किस विधि हासास्पद ममवेश ॥9॥

* परापवाद-दोष-दूषित मुख
परस्त्री दर्शन दूषित नेत्र।
परदूषणरस चित्त, असम्भव,
ममहित कृतकृत्यों का क्षेत्र ॥10॥

इस विषयान्ध काम-पीड़ित,
किया आपको प्रभो विडम्बित।
तव लज्जावश स्पष्ट किया है,
तुम स्वयमेव विज्ञ प्रभु संवित् ॥11॥

शुभ परमेष्ठि मन्त्र को मैंने,
परमन्त्रों से करके ध्वस्त।
वृथा कुदेव कर्म साधन की,
वाञ्छा की मैंने मतिभ्रष्ट ॥12॥

दृगालोक्य तुमको त्यागे मैं,
मन्द बुद्धि रमणीय कटाक्ष।
पीन उरोज नाभि कटि गुरुतर,
के देखा करता निम्नाक्ष ॥13॥

चञ्चल वदन नारियों के लख,
मेरा मानस पट सकलंक।
शुच सिद्धान्त सिन्धु प्रक्षालन,
से भी धुला नहीं क्यों लेख-अंक ॥14॥

न ही मेरा सुन्दर वपु यह,
गुणगण निर्जल कलाविलास।
प्रभुता या आभाविशेषमय,
केवल अहंकदर्थित व्यास ॥15॥

गमनशील आयुष्य अचल हैं,
पाप वासना रुज अभिलाष।
धर्म विषय तज औषध सेवन,
स्वामिन् यह विडम्बनाभास ॥16॥

आत्मा पापपुण्य अवहेलक,
नास्तिक जन को सुना कटूक्ति।
धिक्-धिक् मुझे श्रवणकर कैसे,
जीवित रहा तजे जिन-भक्ति ॥17॥

न ही देव पात्र गुरु पूजा,
साधु श्राद्ध धर्म का पालन।
पाकर मनुज जन्म सुदुर्लभ,
मत्कृत केवल कानन-रोदन ॥18॥

सुरतरु कामधेनु चिन्तामणि,
सत्ताहीन कल्पना मात्र ।
जैन-धर्म के होते इनकी,
स्पृहा आत्मवञ्चना मात्र ॥19॥

भोगजनित रोगों की चिन्ता,
नहीं किन्तु मृत्यु धनलाभविचार।
नहीं नरक कारा की चिन्ता,
ललना की चिन्ता दुर्वार ॥20॥

साधुवृत्ति उर में धारण या,
नहीं कीर्ति परहित आचार।
हुआ व्यतीत निरर्थक जीवन,
किया न कोई तीर्थोद्धार ॥21॥

गुरु शिक्षा वैराग्य रागमय,
अथवा दुर्जन वचन सुन शान्त।
रह पाया, अध्यात्म भावना,
लेश नहीं भवनिधि उद्भ्रान्त ॥22॥

नहीं पूर्वभव पुण्य किया था,
भावी जन्म करुंगा कोई ।
यदि ऐसा ही कृत्य रहा तो,
तीनों भवनिधि मैंने खोयी ॥13॥

इससे क्या बहुबार निरर्थक,
मैंने किया सुधा का पान।
जगन्निरूपक, तव सम्मुख क्या,
स्व का करुं निरुपण-मान ॥24॥

हे हे ! जिनेश्वर ! आपके अतिरिक्त इस संसार में,
नहिं अन्य कोई दीन तारक लोक-पारावर में ।
हे हे कृपागुरु ! मझे नहीं भौतिक विभव कुछ चाहिए,
सम्बोधि स्वास्तिक रत्नमय मंगलनिलय बस चाहिए ॥25॥

गुरुवर रत्नसुमेरु हैं योगिराज महनीय ।
सुखसमाधित हित नित जपो गुरुमाला कमनीय ॥

—o—

महावीराष्टक स्तोत्र

○ ○

परम पूजनीय गुरुदव की काव्य-कृतियों में पुरातन और प्राक्तन कृति—'महावीराष्टक स्तोत्र' ! यानि शासनपति भगवान् महावीर की स्तुति !

आराध्य को गुरुवर ने परम भावों मे भर कर नानाविध विधाओं में गाया है। शब्दों में, चर्या में भर कर अनेक तरह उसे साकार किया है।

भारतीय साहित्य की अष्टक-परम्परा के वर्धमान कर अब तक अनेक अष्टक गुरुदेव की कलम से सृजित हो चुके हैं।

तो पढ़िए ! प्रस्तुत संस्कृत स्तोत्र को हिन्दी अनुवाद सहित !

—सं

○ ○

मंगलाचरणम्

गुरूणां पादपद्मानां, मुख्य-मंगल-दायिनाम्,
नाकेशतरु-तुल्यानां पुरो नत्वा त्विदं मया।
मुनिना रामकृष्णेन श्रद्धा-निभृत-चेतसा,
महावीराष्टकं स्तोत्रं, रचितं सिद्धि-हेतवे ॥

स्वर्गीय कल्पवृक्ष के तुल्य, प्रधान मंगल धर्म के प्रदाता गुरुदेव के चरण-कमलों के सामने अभिवादन देकर—

मुझ रामकृष्ण मुनि ने श्रद्धा से झुके हुए हृदय से सिद्धि के हेतु इस महावीराष्टक स्तोत्र की रचना की है।

पवित्रात्मादित्यः सकलभुवनव्याप्तकिरणः,
प्रनष्टाऽशेषाबोधिविविधकुसिद्धान्त-तिमिरः ।
प्रभाते वन्द्यो यो बुधजननमस्यार्घकुसुमः,
पुरस्तान्मे नित्यं प्रकटतु महावीरभगवान् ॥1॥

... और संसार में फैला हुआ है, जिसके द्वारा अज्ञान-जन्य तरह-तरह के मिथ्या सिद्धान्तों का अन्धकार बिल्कुल नष्ट हो गया है, प्रातःकाल जो सभी प्राणियों के नमस्कार के योग्य हैं और विद्वज्जन जिनको पूजा में अपने नमस्कार के पुष्प चढ़ाते हैं, ऐसे भगवान् महावीर मेरे सामने नित्य प्रकट होते रहें।

पिता सिद्धार्थो यस्य नृपतिवरेण्यः सुकृतिमान्,
सुमाता देवी श्रीरिव च तृशला यस्य शुशुभे।
यमासाद्य प्राशिक्षितविनयशालीनतनयं,
पुरस्तान्मे नित्यं प्रकटतु महावीरभगवान् ॥2॥

जिनके पिता राजा सिद्धार्थ हैं। राजा सिद्धार्थ की पट्टरानी तृशला जिनकी सुशीला माता हैं। विनय की शिक्षा-द्वारा सभ्य जिस पुत्र को प्राप्त करके ही, राजा सिद्धार्थ पुण्यशाली हुए और माता तृशला लक्ष्मी की तरह शोभायमान हुईं, ऐसे भगवान् महावीर मेरे सामने नित्य प्रकट होते रहें।

प्रजाक्लेशं स्मृत्वा मृदुलहृदयः स्वर्णनिकरं,
विनीयार्थिभ्यः सर्वमथ च तपिष्यन् वनमगात्।
ददद् विप्रायैकं पटमपि स निःस्वः स्वयमभूत्,
पुरस्तान्मे नित्यं प्रकटतु महावीरभगवान् ॥3॥

प्रजा के दुःखों को जान कर, दयालु-हृदय भगवान्, निर्धनों के लिए अपनी समस्त स्वर्णराशि दे कर, आत्मा के आलोक को प्रकट करने के हेतु फिर तपस्यायें करने के लिय वन में चले गये। वहां सारी सम्पत्ति में से बचे हुए एक बहुमूल्य वस्त्र को भी आगन्तुक ब्राह्मण को देते हुए, वे भगवान् स्वयं अकिञ्चन निर्ग्रन्थ हो गये। ऐसे भगवान् महावीर मेरे सामने नित्य प्रकट होते रहें।

गिरेर्वा कुञ्जे विजनवनराजौ क्वचिदपि,
परागैः पुष्पाणामभिनवपलाशैरतिशुचौ।
प्रशान्तेन ज्ञानं समधिगतमार्च विहरता,
पुरस्तान्मे नित्यं प्रकटतु महावीरभगवान् ॥4॥

से अतिपवित्र पर्वत की गुफाओं में, लतामण्डपों में, और कहीं निर्जन वनों में विहार करते हुए, प्रशान्तात्मा भगवान् महावीर ने ऋषियों को होने वाले केवल-ज्ञान और केवल-दर्शन को प्राप्त कर दिया। ऐसे भगवान् महावीर मेरे सामने नित्य प्रकट होते रहें।

क्षिपन्तो यस्यास्‌ प्रयततनुमूर्तौ किल तदा,
स ऐन्द्राः पुष्पौघानलिसुभगदिव्यद्रुमभवान्।
सहर्षं स्वर्लोकाद व्यजगतमलो मंगलमयः,
पुरस्तान्मे नित्यं प्रकटतु महावीरभगवान् ॥5॥

उस समय आर्ष-ज्योति—केवल-ज्ञान, केवल-दर्शन के प्रकट हो जाने पर, संयम से अतिपवित्र तथा प्रकाशमान जिनके भव्य शरीर पर देवों के अधिपति इन्द्र, महान् पुण्यशाली एवं सुन्दर कल्पवृक्षों के पञ्चवर्ण-पुष्पों के समूह प्रसन्नता के साथ स्वर्गों से बरसाने लगे, वे पवित्रात्मा मङ्गलमय भगवान् महावीर मेरे सामने नित्य प्रकट होते रहें।

दयाधारासाराः सलिलभृतमेवादिव दिवः,
प्रसन्नाः संपेतुः स्मिततरलवक्त्राम्बुजवरात्।
मुनेर्यज्ञज्वालेषु हुतपशुपूर्वेषु तरसा,
पुरस्तान्मे नित्यं प्रकटतु महावीरभगवान् ॥6॥

जिन मुनि के सुन्दर स्मित से प्रकाशमान मुखारविन्द से, पशु होमे जाने वाली यज्ञ की अग्नि-ज्वालाओं पर मूसलाधाररूप में दया की निर्मल, निर्दोष धारायें आकाश से जल से भरे मेघों की तरह बड़े वेग के साथ पड़ीं, वे भगवान् महावीर मेरे सामने नित्य प्रकट होते रहें।

गिरां दोषाणां यद्वचनमयतीर्थं मलिमसां,
प्रवृत्तं नाशाय क्षममपि विदित्वा गणधराः।
प्रपन्ना ऊचुस्तद्विमलजलमास्वाद्य स गिरः,
पुरस्तान्मे नित्यं प्रकटतु महावीरभगवान् ॥7॥

विद्वानों की वाणी के दोषों का निराकरण करने में समर्थ प्रवृत्ति

हुए जिनके वचनरूप तीर्थ को जानकर, उस ज़माने के उच्चकोटि के विद्वान् गणधर इन्द्रभूति आदि भी, उस तीर्थ पर आए और उसका निर्मल जल पीकर सुन्दर वाणी बोलने लगे। ऐसे भगवान् महावीर मेरे सामने नित्य प्रकट होते रहें।

अपापायां भक्तैर्नतमुकुटवृन्दैर्नृपसुरै—
मुमुक्षूणां सङ्घैश्च मुनिगृहिणां संपरिवृतः ।
कृतार्थोऽन्ते धर्मं व्यकथयदथायोत्तमगतिं,
पुरस्तान्मे नित्यं प्रकटतु महावीरभगवान् ॥8॥

निर्वाण के समय भगवान् महावीर मगध देश की अपापा नगरी में विराजमान थे। उस समय उनके सम्मान में देवों और भारत के सम्राटों के मुकुट झुके हुए थे। मोक्ष के इच्छुक साधु, साध्वी, श्रावक-श्राविका—चतुर्विध तीर्थ उनकी उपासना में भगवान् के चारों तरफ़ बैठा हुआ था। अन्त में निर्वाण के समय उन्होंने उन सब मुमुक्षुओं को धर्मोपदेश दिया। फिर वे उत्तम गति निर्वाण को प्राप्त कर गए। ऐसे भगवान् महावीर मेरे सामने नित्य प्रकट होते रहें।

श्रुतेन पठनेनास्य श्रद्धया परया जनः ।
नित्यं स मतिमान् स्वर्गी, लक्ष्मीं भुक्त्वामृतं व्रजेत् ॥

इस स्तोत्र के प्रतिदिन पढ़ने या सुनने से, मनुष्य बुद्धिशाली होता है और स्वर्गगति को प्राप्त करता है। वहाँ स्वर्गीय वैभव का उपभोग कर, अमृतपद मोक्ष की प्राप्ति करता है।

—o—

गुरु-प्रशस्ति

○ ○

परम पूजनीय गुरुदेव ने अपने श्रद्धेय गुरुदेव योगिराज श्री रामजीलाल जी महाराज की प्रशस्ति मे, हिन्दी तथा संस्कृत भाषाओ मे अनेक रचनायें प्रस्तुत की हैं।

संस्कृत भाषा मे रचित 'गुरुदेव-शतक' के कुछ अंश यहां प्रस्तुत किए जा रहे है। पाठको को इनमें गुरु-भक्ति का साक्षात्-कार तो होगा ही, साथ मे रचयिता गुरुदेव के सुललित सस्कृत पद्यों मे प्रयुक्त कमनीय भावो का साकार भी होगा। —सं०

○ ○

वंशे पवित्रे जननं प्रपन्नो,
विधेयतायां कुशलोऽर्थसिद्धौ।
प्रयत्नशीलश्च सुदीर्घदृष्टिः,
प्राणान्वित. साहसतानुबन्धी ॥1॥

पूज्य गुरुदेव का जन्म पवित्र वश मे हुआ था। आप गुरुजनो की आज्ञा-पालन मे कुशल थे। जीवन के महान् अर्थ, संयम और मोक्ष की उपलब्धि में सतत प्रयत्नशील थे। जीवन की कर्तव्यपूर्ति का निरीक्षण करने के लिए आपको अन्तर्दृष्टि आलोकित थी। प्राणों की ऊर्जा—शक्ति और साहस की परम्परा कभी खण्डित नहीं होती थी। वह आप मे सतत प्रवाहित हो रही थी ॥1॥

कुमारभावं प्रविहाय शान्तो,
दमी युवत्वे पदमादधाति।
अपत्रपिष्णुः प्रतिलोम-कृत्ये,
दयापरः सर्वजनेषु शश्वत् ॥2॥

आप ने कुमारावस्था का त्याग कर, युवावस्था में प्रवेश किया। जो यौवन मनुष्य को अपने-आप नैतिक अपराध करने के लिए बाधित कर देता है, वह आप का बहुत पवित्र था; क्योंकि आप इन्द्रिय-दमन में कुशल थे। अत: आप शान्त थे। अनैतिक कृत्यों से दूर रहने के लिए आप सदा लज्जा-शील थे और जगत् के सभी जीवों पर दयास्रोत बहाते रहते थे ॥2॥



प्रलम्ब - शालोपमबाहुवल्ल-

भाँलो महोक्षांस उदग्रमूर्धा ।

विशालकायः किल शोभनीयः,

स्थितः स आसीद् हिमवानिवोर्व्याम् ॥3॥

वृक्ष की स्थूल-विशाल शाखा के समान जिनकी भुजायें थीं। ललाट जिनका उन्नत था। सर जिनका ऊपर उठा हुआ था। धुरीण पुङ्गव की तरह जिनके स्कन्ध थे। शरीर जिनका पर्वत की तरह विशाल था। वे गुरुदेव पृथ्वी पर हिमाचल की तरह शोभायमान हो रहे थे। अर्थात्, गुरुदेव का शरीर सामुद्रिक सम्पदाओं से युक्त था ॥3॥

प्रह्वः प्रतीक्ष्यान् प्रति दीनहेतो-

रुदारवृत्तिः सजुषो विभर्ता ।

प्रतीपयन्तं क्षमते क्षमावान्,

समुद्रगम्भीरमनाः प्रसङ्ख्ये ॥4॥

पूज्य गुरुदेव अपने पूज्यों के प्रति नम्र थे। दुःखियों के लिए करुणावतार थे। सहचरों-मित्रों का भरण-पोषण करने वाले थे। विरुद्ध आचरण करने वालों को क्षमा-प्रदान करने में क्षमावान् थे। चिन्तनीय विषयों पर समुद्रवत् गम्भीर चिन्तन-मनन उपस्थित करने वाले थे ॥4॥

परागतं चेन्न सुमं सुगन्धे,

रूपाद्यवच्छेदकता मुधाव ।

नृजन्म वैफल्यमसह्यदुःखं,

धर्मेण यस्मिन्नहि धीः प्रशस्ता ॥5॥

जिस पुष्प में सुगन्ध नहीं, उसकी रूपादि विशेषतायें व्यर्थ हैं। एवं जिस मनुष्य में धर्म की प्रशस्त बुद्धि नहीं, उसका जन्म विफल और असह्य दुःख से पूर्ण है ॥5॥

कृच्छ्रार्जितं मानुषजन्म लोके,

सद्यौवनं तस्य च दिव्यलक्ष्मीः ।

तद् धर्मसाध्यं न तु भोगसाध्यं,

न काचखण्डाय मणिं ददीत ॥6॥

जन्म-मरण-जन्य कष्ट-परम्परा की अनुभूति से संसार में मानव-जीवन मिलता है। पवित्र यौवन, मानव-जीवन की सम्पदा है। वह पवित्र यौवन, धर्म की साधना के लिए होता है, भोग-विलास की साधना के लिए नहीं—अर्थात्, धर्म से यौवन की साधना करनी होती है। भोग-विलास से यौवन की साधना करना, मूल्यवान् मणि के बदले काच के टुकड़े को लेने के तुल्य है ॥6॥

अहिंसता यत्र मृदुस्वभाविता,

तपः समालब्ध-शमित्व-शक्तिता ।

सुसंयमित्वं विजितेन्द्रियाशया,

बभूव स धर्मत्रय-पूतसंगमः ॥7॥

स्वभाव की कोमलता जहां अहिंसा थी, शान्ति की शक्ति की उपासना जहां तप था, ऐन्द्रिय विषयों पर विजय प्राप्त करना, जहां संयम था—इस तरह तीनों धर्मों के वे पवित्र संगम बने हुए थे ॥7॥

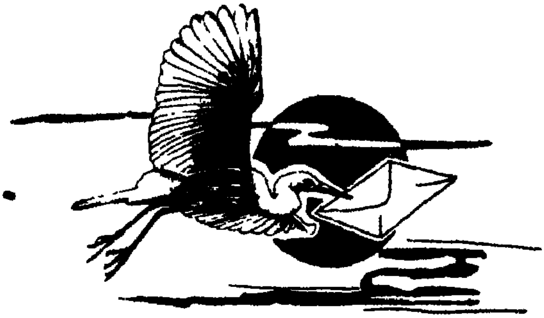
त्रिसिन्धु-संभेद-पवित्रितास्पद-

मपांसुलं यज्जनता-समर्चितम् ।

प्रशान्त-तीर्थं च मलच्छिदे क्षमं,

गुरुः स योगीश-मुनि र्महीयताम् ॥8॥

उक्त तीनों धर्मों की त्रिवेणी के संगम से जो पवित्र तीर्थ-स्थान थे। वह तीर्थ-स्थान जनता से प्रपूजित था। वह अपांसुल—निर्मल, निर्दोष था। अतः वह सबके मल—पाप को धोने में समर्थ था और जहां सबको शान्ति मिलती थी, वे योगिराज मुनि गुरुदेव सदा पूजा को प्राप्त हों ॥8॥





समारोह
परिशिष्ट

मंगल भावना

—मालवकेसरी श्री सौभाग्यमल जी महाराज

मर्यादा पुरुषोत्तम 'राम' की मर्यादा एवं कृष्ण की 'योग' योगेश्वर विभूति' के संगम मुनि श्री रामकृष्ण जी इस युग के लोकोत्तर संत हैं। आपकी उन्मेश शालिनी प्रतिभा इस युग की सारस्वत धरोहर है। मैं ऐसे स्वनामधन्य प्रज्ञा-पुरुषोत्तम सन्त के अभिनन्दनार्थ अपनी मंगल भावना प्रेषित करता हूं।

सूर्य की तरह चमकते रहें !

—राजस्थानकेसरी उपाध्याय श्री पुष्कर मुनि जी महाराज

भारत की पावन पुण्य-धरा अवतारों की जन्म स्थली है, विचारकों की चिन्तन भूमि है और वीरों की कर्मभूमि। इसी पावन पुण्य भूमि में महामनीषी मुनि प्रवर रामकृष्ण जी म. का जन्म हुआ है। उन्होंने अपने ओजस्वी व्यक्तित्व और तेजस्वी कृतित्व से जन-जीवन को प्रेरणा दी है। जिससे श्रद्धालुगण उनके चरणों में नत हैं। अपनी अनन्त आस्थाएं समर्पित करने के लिए उन्हें अभिनन्दन ग्रन्थ प्रदान कर रहे हैं।

मेरी हार्दिक कामना है कि मुनि प्रवर पूर्ण स्वस्थ रहकर जिन-शासन की प्रबल प्रभावना करते रहें। उनसे समाज को बहुत आशायें है। वे सूर्य की तरह सदा चमकते रहें।

एक सफल साधक

—पंजाबकेसरी श्री ज्ञान मुनि जी महाराज

मुझे पता चला कि मेरे छोटे भाई विद्वद्रत्न सिद्ध-हस्त लेखक मुनि श्री रामकृष्ण जी को उनके समाज अभ्युदय-मूलक कार्यों के उपलक्ष्य में एक अभिनन्दन ग्रंथ समर्पित किया जा रहा है। इस मंगलमय समाचार को पाकर मेरा मानस आनन्द विभोर हो उठा। वस्तुतः जो समाज गुणिजनों का आदर करता है, उनके समाज अभ्युदयपरक कार्यों के उपलक्ष्य में अपनी कृतज्ञता प्रकट करता है, वही समाज जीवित समाज माना जाता है।

गुणिजनों को देखकर प्रमुदित होना, उनके प्रति आदर की भावना रखना मानवता है। सचमुच उत्तम पुरुषों की गुणगाथाएं गाने के व्याज से उनके जाज्वल्यमान जीवन दीप से प्रकाश लेकर बुझ रहे जीवन-दीप को प्रज्वलित करना एक बुद्धिशुद्ध प्रयास है।

मेरे प्यारे भाई मुनि श्री रामकृष्ण जी एक सफल साधक हैं। इन्होंने व्यष्टि और समष्टि के कल्याण के लिए बहुत कार्य किया है। सुन्दर साहित्य भी समाज को दिया है। ये प्रकृति से मिलनसार और प्रसन्नवदन मुनिराज हैं। आज के सुविधा-वादी युग के जन जीवन के लिए इनका त्यागमय एवं विरक्त जीवन एक सफल मार्ग-दर्शक के रूप में बड़ी सफलता के साथ निखर रहा है।

मेरा मुनि जी से इनकी दीक्षा से पूर्व का परिचय है। इनकी दीक्षा वेला में भी मैं उपस्थित था। जैन धर्म दिवाकर आचार्य सम्राट् गुरुदेव पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज ने इनको दीक्षा का पाठ पढ़ाया था। आचार्य सम्राट् पूज्य श्री आत्माराम जी म०, व्याख्यान वाचस्पति मुनि श्री मदनलाल जी म० तथा योगिराज श्रद्धेय श्री रामजीलाल जी म० के साथ मुनि श्री रामकृष्ण जी तथा हम सभी सन्त शिमला यात्रा में एक ही पथ के राही भी रहे हैं। महीनों हम सब का इकट्ठा ही विहार होता रहा है। अतः मुनि श्री रामकृष्ण जी मेरे एक निकटतम साथी हैं।

मुनि श्री रामकृष्ण की संयम-निष्ठा के दृश्य आज भी मेरी आंखों के सामने हैं। एक प्रसंग का ज़िक्र करना आवश्यक मानता हूं। दीक्षा-वेला की बात है। मुनि जी का बंसल परिवार नहीं चाहता था कि रामकृष्ण जी जैन साधु बनें। नालागढ़ नरेश के सामने भी दीक्षा का विरोध आया। नालागढ़ नरेश ने स्वयं सब जानकारी प्राप्त की परन्तु इनका एक ही उद्घोष था—

कार्यं वा साधयेयम्,
देहं वा पातयेयम्

मुनि जी सिंह गर्जना करते हुए यही कहा करते थे कि मुझे संयम साधना की राह पर तो चलना ही चलना है। मेरा परिवार तो क्या यदि मृत्यु भी सामने आ खड़ी हो, तब भी मैं साधना-पथ से विचलित नहीं हो सकता। नालागढ़ नरेश स्वयं आश्चर्यचकित थे। 25 वर्षों की भरी जवानी है। सोने जैसा सुन्दर शरीर है, सुख-सुविधा सब उपलब्ध है, तथापि सबको ठोकर मारी जा रही है। अन्त में उन्होंने शासन के आसन पर बैठकर मुनि जी के पारिवारिक व्यक्तियों के सामने अपना निर्णय देते हुए कहा—

"युवक रामकृष्ण बालिग हैं। नाबालिग नहीं हैं और इनके मन के कण-कण में त्याग भावना की ज्योति ज्योतिर्मान हो रही है, अतः इनका दीक्षा-महोत्सव कोई रोक नहीं सकता, दीक्षा-महोत्सव को सफल बनाने में राज्य का सब सहयोग रहेगा।"

आज भी मुनि रामकृष्ण जी बड़ी दृढ़ता एवं निष्ठा से अपने गन्तव्य पथ पर अग्रसर हो रहे हैं। ये दीक्षा के 45 वर्ष पूर्ण करके 46वें वर्ष में प्रवेश कर रहे हैं। इन का यह प्रवेश इनके लिए तथा जन-जीवन के लिए कल्याणकारी एवं मंगलकारी हो, प्रभु महावीर से मेरी यही हार्दिक प्रार्थना है।

गौरव का विषय

—श्री नेम मुनि जी म० 'पंजाबी'

यह जानकर महती प्रसन्नता हुई कि श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन महासंघ (दिहली) 22-4-84 को स्वनाम धन्य पुण्य श्लोक विद्वद्रत्न महामुनि श्री रामकृष्ण जी की दीक्षा पर्याय के 45 वर्ष पूर्ण कर 46वें वर्ष में प्रवेश के उपलक्ष्य में एक भव्य अभिनन्दन समारोह आयोजित कर रहा है। इसके साथ यह और भी हर्षातिरेक तथा गौरव का विषय है कि महामुनि जी के उज्ज्वल, तपोमय व्यक्तित्व तथा विमल कृतित्व का परिचायक ग्रन्थ उन्हे अर्पित किया जा रहा है।

महामुनि श्री रामकृष्ण जी के व्यक्तित्व तथा विराट कृतित्व को लिखना एक महत्वपूर्ण कार्य है। इन महामुनि ने जनता को अपनी रचनाओं द्वारा जो उद्बोधन और प्रतिबोध दिया है, वह चिर-नवीन तथा आगामी पीढ़ियों के लिए पथ-प्रदर्शन करता रहेगा।

पथ-प्रदर्शन करते रहें !

—श्री भद्रमुनि जी म०

भारत की संस्कृति में महान् पुरुषों का सर्वोच्च स्थान रहा है। उन्हीं महापुरुषों की श्रेणी में प्रज्ञा पुरुषोत्तम श्री रामकृष्ण जी म० की गणना की जाए तो अतिशयोक्ति न होगी।

आप श्री ने अपना जीवन 'स्व' एवं 'पर' कल्याण के लिए अर्पण कर दिया है और जो कार्य उन्होंने किए हैं, वे लेखन से बाहर हैं। हम सब सन्त इस पावन वेला पर उनके तथा शासनपति भगवान् महावीर से यही प्रार्थना करते है कि उनका वरद हस्त हम सब पर बना रहे और समाज का पथ प्रदर्शन करते हुए, वे शतायु हो।

—श्री ईश्वर मुनि जी म०

यह जानकर महती प्रसन्नता हुई कि दिल्ली प्रदेशीय महासंघ के सानिध्य में पूज्य प्रवर श्री रामकृष्ण जी म० के 46वें संयमी जीवन प्रवेश की मंगलमय पावन वेला में हार्दिक अभिनन्दन किया जा रहा है। यह अतीव प्रसन्नता की बात है।

गुरुदेव श्री जी के महान् उपकारों से जैन समाज उपकृत है। समय-समय पर गुरुदेव ने अपने चिन्तन के द्वारा समाज को दिशा बोध दिया है। उनकी विलक्षण प्रतिभा, मधुर व्यक्तित्व एवं विराट कृतित्व से सभी प्रभावित हैं। उनका संयमी जीवन गंगा की धारा के समान पावन एवं सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय है।

अनुशासन इन्हें प्रिय है। इस दृष्टि से मुनि प्रवर भले ही कठोर प्रतीत होते हैं किन्तु इनका आन्तरिक जीवन सुमनों की भांति कोमल है। अपने स्वस्थ चिन्तन के द्वारा गुरुदेव समाज की तन्द्रा को हटाते ही रहते हैं।

अभिनन्दन की पावन गरिमामय शुभ वेला में हार्दिक कोटि-कोटि वन्दन करते हुए दीर्घ-संयमी जीवन की शुभ-कामना करता हूं एवं हार्दिक भावना रखता हूं कि गुरुदेव का संयमी जीवन प्रत्येक प्राणीमात्र के लिए मार्ग-दर्शक बने तथा हमें भी सतत प्रेरणा प्राप्त होती रहे।

—o—

अद्भुत महाकाव्य

परम श्रद्धेय मुनि श्री रामकृष्ण जी महाराज का जीवन ज्ञान एवं आचरण का अनुपम संगम है। सरलता, भद्रता, ओजस्विता, उदारता एवं मनस्विता आदि अनेक गुणों के समवाय से मण्डित महाराज श्री का व्यक्तित्व हमारी पीढ़ी के सन्त-सतियों के लिए अनुकरणीय है। आपका जीवन ज्ञान-दर्शन-चारित्र का अद्भुत महाकाव्य है। मैं आपके अभिनन्दन-अभिवन्दन के कोटि-कोटि भाव पुष्प श्री चरणों मे निवेदित करता हूं।

दोण्ड (जि० पूना, महाराष्ट्र) —श्री भगवती मुनि 'निर्मल'

यथा नाम तथा गुण

—श्री देवेन्द्र मुनि जी शास्त्री

भारतीय संस्कृति के उज्ज्वल इतिहास में राम और कृष्ण का नाम सूर्य और चन्द्र की तरह चमक रहा है। वे भारतीय संस्कृति के आधार स्तम्भ हैं, जिस पर भारतीय संस्कृति का भव्य भवन आधृत है। कुछ समय के लिए यदि भारतीय संस्कृति और साहित्य में से राम और कृष्ण को निकाल दिया जाए तो भारतीय संस्कृति और साहित्य निष्प्राण-सा प्रतीत होगा।

वैदिक परम्परा में राम और कृष्ण को विष्णु का अवतार माना है, जिन्होंने संस्कृति के बुझते हुए दीपक में अभिनव चिन्तन की ज्योति प्रदान की। बौद्ध-परम्परा में राम और कृष्ण को बोधिसत्व के रूप में चित्रित किया है। बोधिसत्व एक विशिष्ट मानव है जो अपने पवित्र चरित्र से जन-जन को प्रेरणा देता है। जैन परम्परा में राम और कृष्ण श्लाघनीय पुरुष के रूप में उट्टङ्कित किये गए हैं। राम बलदेव हैं तो कृष्ण वासुदेव हैं। उत्तम पुरुष हैं। इन तीनों ही परम्पराओं ने राम को मर्यादा पुरुषोत्तम माना है तो कृष्ण को कर्म-योगी माना है। मुनि प्रवर श्री रामकृष्ण जी म० स्थानकवासी जैन-परम्परा के एक जाने और पहचाने हुए सन्त-रत्न हैं। उनके नाम में राम और कृष्ण इन दोनों का सुमेल है। उनका जीवन भी राम और कृष्ण की तरह पूर्ण यशस्वी है। वे राम की तरह मर्यादा पालक हैं तो कृष्ण की तरह सच्चे कर्मयोगी हैं। मुनि के जीवन के कण-कण में मर्यादा का साम्राज्य होता है और श्रमण के जीवन में श्रम की प्रधानता होती है। आप मुनि भी हैं और श्रेष्ठ श्रमण भी हैं।

वैदिक-परम्परा की दृष्टि से राम ने दस मुख रावण पर विजय वैजयन्ती फहराकर सीता को उसके चंगुल से मुक्त किया तो श्रीकृष्ण ने कालीय नाग का दमन कर जन-मानस को भय से मुक्त किया।

राम की तरह आप भी पांच इन्द्रियां, चार कषाय और मन पर विजय पताका फहराकर आत्मा को सर्वतंत्र स्वतंत्र बनाने का प्रयास कर रहे हैं, तो श्रीकृष्ण की भांति विकार वासना के नाग का दमन व शमन कर, सच्चे अर्थ में राम और कृष्ण का आदर्श उपस्थित कर रहे हैं।

आप श्री का व्यक्तित्व तेजस्वी है तो कृतित्व मधुर है। आपने संयम-साधना कर भौतिकवाद की चकाचौंध में फंसे हुए व्यक्तियों को सच्चा मार्गदर्शन दिया है, यही कारण है कि हजारों-हजार श्रद्धालु-गण आप के व्यक्तित्व और कृतित्व से प्रभावित है और अपनी अनन्त श्रद्धा के सरस-सुमन आप श्री के चरणों में समर्पित कर रहे हैं। मैं अपनी अव्यक्त श्रद्धा भी इस लघु लेख के माध्यम से समर्पित कर गौरव का अनुभव कर रहा हूं।

विद्वता से परिपूर्ण व्यक्तित्व

—डा० शिव मुनि

गत वर्ष वीर नगर देहली के चातुर्मास पूर्ण होने पर मुझे परम श्रद्धेय गुरुदेव विद्वद्रत्न मुनि श्री रामकृष्ण जी म० के पावन चरण सरोजों में रहने का सुअवसर प्राप्त हुआ। मेरे मानस पटल पर आज भी वे क्षण अतीव स्मरणीय, महनीय एवं प्रेरणा स्रोत के रूप में विद्यमान है। मैंने उन्हें बहुत ही क़रीब से देखा है। उनके हृदय में निश्छलता, आंखों में करुणा एवं वाणी में मृदुता त्रिवेणी के रूप में सदा बहती रहती है। कोई भी देख सकता है, उनके जीवन में यह त्रिवेणी सदैव साकार होती रहती है। असीम नैसर्गिक स्नेह से भरा वह हस्त जब भी मेरे सिर पर रखते थे, मन को अतीव शान्ति की अनुभूति प्राप्त होती थी। चर्चा करते हुए उनके विचार स्पष्ट एवं सहजता, विद्वत्ता से परिपूर्ण होते थे। वे कभी साम्प्रदायिक पूर्वाग्रहों एव वैचारिक संकीर्णता के क्षुद्र घेरे में नहीं रहते।

संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी, गुजराती आदि विविध भाषाओ के प्रकाण्ड विद्वान् गुरुदेव श्री ने जैन-विद्या के प्रचार-प्रसार के लिए अनेकों कार्य किए हैं। सुन्दर ललित साहित्य का लेखन आपके कुशल हाथों द्वारा हुआ है। जैन दर्शन और जैन धर्म के प्रकाण्ड विद्वान् होने के कारण आप श्री जी को विद्वद्रत्न की उपाधि से अलंकृत किया गया।

प्रतिक्रमण करने के अनन्तर आपकी श्री के पावन चरणों में बैठकर मैंने कई बार प्रार्थना की—गुरुदेव साधना का सरल मार्ग कौन सा है? उन्होंने बड़े प्यार से कहा—शिवमुनि ! साधना करने के लिए बड़े बड़े मन्दिर या सुन्दर स्थानक नहीं चाहिएं। साधना तो प्रकृति की गोद में हो सकती है" आपकी साधना का सहज मन्त्र था—वृक्ष के नीचे बैठकर वृक्ष की तरह बनकर जीवन यापन करो। आप प्रायः कहते—वृक्षों को देखो, फूलों और पत्तों को देखो, नदी और झरने को देखो—कितनी सरलता से सब कुछ हो रहा है। तुम भी उनकी तरह सरल बन जाओ, सहजता को प्राप्त करो।

सचमुच आपका जीवन फूल के समान कोमल है। फूल और विशेषकर गुलाब का फूल जो कांटों पर उगता है और कांटों के बीच में खिलकर भी अपनी सौरभ और सुन्दरता बांटता है। उसके जो भी समीप आता है उसको अपनी मात्र सुन्दर खुशबू ही नहीं देता अपितु प्रेरणा देता है—परिषहों और कांटों में जूझने की और जीवन को सुरम्य बनाने की। स्वयं परिषह पाकर दूसरों को आनन्द लुटा देना—बस यही जीवन की सच्ची सार्थकता है। मैं देखता हूं—परम पूजनीय महाराज श्री का जीवन भी गुलाब के फूल की भांति दूसरों को प्रेरणा प्रदान कर रहा है।

आप श्री जी दीक्षा के 45 वर्ष पूर्ण कर 46 वें वर्ष में प्रवेश कर रहे है। वीर प्रभु से कामना है—आप का जीवन युगों-युगों तक प्रेरणा स्वरूप रहे। मेरी कामना है—

तुम सलामत रहो हज़ार बरस,
हर बरस के दिन हों दस हज़ार।

सम्यक् प्रयास

—श्री अजित मुनि 'निर्मल'

विद्वद्वरेण्य महामुनि श्री रामकृष्ण जी म० के अभिनन्दन का वृत्त सुना तो मेरा मन आह्लादित हो गया। यद्यपि उनके प्रत्यक्ष सुदर्शन की पावनता का अवसर मुझे प्राप्त नहीं हो पाया है परन्तु उनके साधुत्व के सुगंधित पुष्पों की गंध-बयार सतत मेरे मन के कूल किनारों से टकराती रहती है...और मैं दूर बैठा-बैठा ही उनकी गुण-गरिमा के प्रति नत हुआ हूं।

जब मैंने सुना, ठीक से सुना कि इन्द्रप्रस्थ का जैन महासंघ उनका सार्वजनिक अभिनन्दन कर रहा है; तो मैं केवल यह कह पाया हूं अपने से, सोच सका हूं, यह कहने को महामुनि का महासंघ अभिनन्दन कर रहा है पर यह महासंघ का शिष्य-भाव है।

गुरुऋण से लघुत्व प्राप्त करने का यह सम्यक् प्रयास है। महान् की स्तुति लघुता से ही होती है।

समाज में इस तरह के आयोजन अभिनन्दन कहलाते हैं पर सच पूछा जाए तो यह अभिनन्दन तो स्तुत्य पुरुष का है ही परन्तु इससे बड़ी बात यह है कि महापुरुषों का संकीर्तन कर व्यक्ति स्वयं शिष्यत्व की महानता की पावनता को प्राप्त कर लेता है।

नान्या सुतं त्वदुपमं...

—महाश्रमणी श्री सुन्दरीदेवी जी म०

हमें यह विदित हुआ कि परम श्रद्धेय गुरुदेव विद्वद्रत्न मुनि श्री रामकृष्ण जी महाराज ने अपनी संयम साधना के पैंतालीस वर्ष सम्पन्न कर छियालीसवें वर्ष में प्रवेश कर रहे हैं। परम पूजनीय गुरुदेव का समग्र जीवन मानव जाति के कल्याण का इतिहास है।

इस अवसर पर दिल्ली जैन महासंघ की ओर से अभिनन्दन समारोह का आयोजन कर गुरुदेव को 'बहुश्रुत शासन-सूर्य' की उपाधि से अलंकृत किया जा रहा है। दूरस्थ होने से मुझे इस अवसर पर आने का अवसर प्राप्त न हो सका। परन्तु इस समाचार से मुझे जो प्रसन्नता हुई उसे मैं अपनी लेखनी से प्रकट नहीं कर सकती। मेरा प्रत्येक रोम-रोम आज अपनी अव्यक्त भाषा में बधाई और बधाई कह रहा है।

आचार्य मानतुंग ने प्रभु ऋषभ देव की स्तुति में जो कहा है, उसे मैं अपने भावों की अभिव्यक्ति में गुरुदेव के लिए प्रस्तुत कर रही हूं—

नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता।

इस तथ्य में किंचित भी अतिशयोक्ति नहीं है कि जैसे आकाश में स्थित सूर्य अपनी सहस्र-सहस्र रश्मियों से भूमण्डल के अन्धकार को दूर करता है, ऐसे ही गुरुदेव ने अपनी ज्ञान-रश्मियों से जन-जन की हृदय-अवनि में व्याप्त अज्ञान अन्धकार को दूर किया है।

गुरुदेव श्री का समग्र जीवन ज्ञान-दर्शन-चरित्र से समलंकृत है। महासंघ द्वारा दी गयी उपाधि तो एक कृतज्ञता का भाव है। यह उपाधि तो मानो गुरुदेव का संग पाकर शोभायमान हुई है।

परम पूजनीय गुरुदेव का व्यक्तित्व सूर्य हमको, आपको समस्त संघ को सदैव आलोकित रखता रहे, यही अन्तर हृदय की कामना है।

दिव्यताओं के अंगार

—महासती श्री कौशल्या जी म०

आज हम एक महान् मुनि के अभिनन्दन हेतु यहां उपस्थित हुए हैं। वे महामुनि हैं—विद्वद्रत्न श्री रामकृष्ण जी महाराज! परम-पूजनीय मुनि श्री का अभिनन्दन हम इसलिए कर रहे हैं कि उन्होंने अपने जीवन में संयम एवं ज्ञान की महान् आराधना की है। संयम-साधना से जहां इन्होंने अपने जीवन को चमकाया है वहां समाज को ज्ञान के प्रकाश से आलोकित भी किया है। इनके पास जो भी आया उसके जीवन में सम्यक् ज्ञान का दीप प्रज्वलित हो गया।

मैंने बहुत लोगों से बार-बार सुना है और स्वयं भी देखा है—महाराज श्री जी ने समाज के नव-निर्माण के लिए अथक श्रम किया है। अपने जीवन में इन्होंने विश्राम को स्थान न देकर श्रम को सर्वोपरि स्थान दिया है। गुरुदेव ने घर-घर जाकर, व्यक्ति-व्यक्ति को धर्म-प्रेरणा दी है। मैं कहना चाहूंगी—यह कोई छोटा कार्य नहीं है। यह महापुरुष की महानता का ही प्रतिरूप है।

आज जो अभिनन्दन हो रहा है या किया जा रहा है, यह ज्ञान की पवित्र ज्योति का अभिनन्दन है!

चारित्र की विमल प्रभा का अभिनन्दन है!!

इनका समन्वित स्वरूप जिस जीवन में विद्यमान है उन गुरुदेव श्री रामकृष्ण जी महाराज का अभिनन्दन है!!!

\+ \+ \+

परम पूजनीय श्री रामकृष्ण जी महाराज के जीवन में विविधानेक अद्भुतायें विद्यमान हैं। इनकी विशेषता अकथ कथा का इतिवृत्त है। इनके जीवन की अनेक बातों पर मैं सोचती हूं—तो प्रचलित कहावतों और मान्यताओं को ही बदल दिया है, इनकी दिव्यताओं ने।

एक अनुश्रुत व्याप्त है—लक्ष्मी और सरस्वती में वैर है। परस्पर इतना विरोध है कि जहाँ लक्ष्मी जाती हैं, या रहती हैं वहां सरस्वती

अपने चरण नहीं रखती। और जहां सरस्वती विराजमान होती हैं, वहाँ लक्ष्मी अपने पांव नहीं रखती। इस कलह के कारण विद्वान् निर्धन देखे जाते हैं और धनी लोग विद्याहीन पाये जाते हैं।

मैं आपको बताना चाहती हूं—विद्वद्रत्न श्री रामकृष्ण जी म० के चरणों में लक्ष्मी और सरस्वती का भी समन्वय हो गया है।

कैसे ?

गुरुदेव स्वयं महान् विद्वान् हैं। इनसे मार्गदर्शन लेने के लिए अनेक विद्वान् इनके चरणों में आते हैं। समाधान प्राप्त कर वे कृत्य-कृत्य होते हैं।

दूसरे गुरुदेव श्री के चरणों में बड़े-बड़े धनपति, रईस भी उपस्थित होते हैं। इनकी आज्ञाओं और संकेतों को पाने का अवसर ढूंढते हैं। इस तरह लक्ष्मी और सरस्वती का यहां इनके दरबार में समन्वय प्रत्यक्ष देखा जाता है। यह इनके जीवन का अद्भुत सामंजस्य है।

\+ \+ \+

एक वैचारिक सत्य कह रही हूं।

एक कहावत चली आती है—बड़ा आदमी, छोटों का शोषण करके ही बड़ा होता है। इसका एक और उदाहरण है—बड़े वृक्ष के आस-पास छोटे पेड़-पौदे पनप नहीं पाते। इसका कारण है, भूमि की सारी शक्ति तो बड़ा वृक्ष खींच लेता है। छोटों को कुछ प्राप्त नहीं हो पाता। फिर वे बढ़ें कैसे ? अतः सूख कर मुर्झा जाते हैं। धीरे-धीरे उनका अस्तित्व ही मिट जाता है।

विद्वद्रत्न श्री रामकृष्ण जी महाराज में यह अद्भुत विलक्षणता है—इन्होंने हर अपने समीप आने वाले छोटे से छोटे व्यक्ति को खूब उन्नत किया है। उसकी झोलियां भर दी हैं। कोई कमी उसके जीवन में रहने न दी है। कृष्ण ने जैसे सुदामा को बिना मांगे ही सब कुछ दे दिया था ऐसे ही मुनि श्री रामकृष्ण जी म० के समीप आने वाला संसारस्थ सुदामा अपने जीवन को ज्ञान और चारित्र के रत्नों से भर ले गया है।

इन मुनि पुंगव की छत्र छाया हम सब पर सदैव बनी रहे, मैं यही शासन पति से अभिकांक्षा करती हूं!

(अभिनन्दनावसर पर प्रस्तुत प्रवचनांश)

महापुरुष की अद्भुतता

—महासती श्री स्नेहप्रभा जी म०

भारत के काव्य-मनीषियों ने अपने ललित शब्दों में कहा है—उद्यान में पुष्प खिलता है। उसमें सुरभि फूटती है। वायु सुरभि को अपने साथ प्रवाहित कर ले जाती है। जिस ओर वायु बहती है उस ओर का वातावरण सुगन्धमय हो जाता है

पुष्प-सुरभि की यह तो विशेषता है कि जिस ओर वह व्याप्त होती है, वहां जन-जन उससे आह्लादित हो जाते हैं परन्तु उसमें यह सामर्थ्य नहीं है कि वह वायु की विपरीत दिशा में जा पाये। जिस ओर वायु उसे ले जायेगा उधर ही वह बहेगी।

महापुरुषों की गुण-सौरभ की अद्भुतता यह है कि वह किसी एक दिशा में सीमित न रहकर चतुर्दिक में व्याप्त होती है। उसको किसी के आश्रय की भी जरुरत नहीं होती।

\+ + +

परम श्रद्धेय विद्वद्रत्न मुनि श्री रामकृष्ण जी महाराज की कीर्ति-कथा को हम निरन्तर सुनती रही हैं। केवल उत्तर भारतीय प्रान्तों में ही नही, दक्षिण के सुदूरवर्ती प्रदेशों में रहते, घूमते-विचरते हमने पूज्य मुनिवर की विद्वत्ता, संयम-साधना की सौरभ के विषय में सुना है।

हमारा मन बनता कि मुनि प्रवर के दर्शनों का हम लाभ लें। अवसर आया। माडल टाउन, देहली में अभिनन्दन दिवस पर हमारा मनोभिलषित साकार हुआ।

स्वयं हमें अनुभव हुआ—श्रद्धेय श्री की दृष्टि परम उदार है। इनका चिन्तन विराट् है। 'स्व-पर' की क्षुद्रता से विमुक्त गुरुदेव की कृपा का वर्षण सब पर समान भाव से होता है। साम्प्रदायिक व्यामोह से ऊपर उठा इनका चिन्तन जन-जन के हित निरत है।

शासनपति से हमारी प्रार्थना है परम श्रद्धेय श्रुतरत्नकर मुनि श्री रामकृष्ण जी महाराज की मंगलमय छत्र-छाया संघ पर सदैव-सदैव बनी रहे।

अभिनंदन समारोह

(आंखों देखा, कानों सुना)

प्रस्तोता : सुभद्र मुनि

देहली भारत की राजधानी है ।

यह सम्पूर्ण भारत का आशा-केन्द्र है ।

क्यों ?

—क्योंकि यह राजनीति का सूत्रधार महानगर है। सामाजिक और धार्मिक जगत् में भी इस महानगर की विविध प्रकार से चर्चा की जाती है। राजधानी की विशालता और सघनता भारत के गिने-चुने तीन-चार महानगरों मे की जाती है। राजधानी यूं हर तरह से अनोखी सूझ-बूझ वाले लोगों से अटी हुई है। इस महानगर मे सभी प्रांत और प्रदेशों के लोग निवास करते है।

जैन लोग भी भारी संख्या में देहली के विभिन्न नगरो में बसे हुए हैं। उपनगरों की दूरियां इतनी हैं कि दूरभाष के माध्यम से अपने स्नेही और सम्बन्धीजनों से सम्पर्क स्थापित किया जाता है। महानगरों की व्यस्तताओं ने मनुष्य को समयाभाव का कृपण बना दिया है कि वह परस्पर मिलने-मिलाने व नेह-नातो का आदान-प्रदान भी नहीं कर पाता। यही कारण है कि देहली में कम से कम तीस-चालीस धर्म स्थानक हैं, जहां बराबर साधु-साध्वियों के वर्षावास होते रहते हैं।

दिल्ली जैन महासंघ :

राजधानी के जागरूक जैनों की एक विलक्षण सूझ-बूझ का परिणाम है—श्री एस. एम. जैन महासंघ ! यह संघ इन्द्रप्रस्थ स्थित 46 एस.एस. जैन संघों का केन्द्रीय संगठन है। स्थानकवासी विचार धारा की प्रतिनिधि संस्था है। इसने गत दिनों परम पूजनीय गुरुदेव विद्वद्रत्न मुनि श्री रामकृष्ण जी म. के संयमीय जीवन के 45 वर्ष की सम्पन्नता के अवसर पर सहज श्रद्धाभिभूत होकर दिनांक 1-4-84 को होने वाली कार्यकारिणी की मीटिंग में गुरुदेव के अभिनंदन आयोजन का शुभ निश्चय किया।

उक्त निश्चय पर सभा ने हर्ष अभिव्यक्त किया तथा कहा—परम पूजनीय गुरुदेव ने भारत के अन्य प्रान्तों में जो धर्म प्रभावना का कार्य

कर, अनेक चातुर्मास कर जो कार्य किया है वह अति महत्वपूर्ण है, अत गुरु-देव के प्रति कृतज्ञता होगी, गुरुदेव का अभिनन्दन करना।

उक्त सभा मे ही देहली के कई सघो ने प्रार्थना प्रस्तुत की—यह समारोह हमारे क्षेत्र मे रखा जाये। त्रिनगर, लक्ष्मीनगर अशोक विहार आदि क्षेत्रों का विशेष आग्रह था।

इस पर निर्णय किया गया—समारोह के स्थान का चयन गुरुदेव के स्वास्थ्य को दृष्टिगत रखते हुए किया जाना चाहिए।

समारोह की तिथि 22-4 84 रविवार तय की गयी। इसी अवसर पर एक कमेटी बनी और स्थान माडल टाऊन तय किया गया।

और बडी तत्परता, लगन तथा श्रद्धा से कार्यकर्ता कार्य मे जुट गये। जब जिस व्यक्ति ने सुना वह तत्काल महासघ के कार्यालय मे अथवा माडल टाऊन स्थानक मे उपस्थित हुआ और 'मेरे लिए क्या आज्ञा है' अभ्यर्थना प्रस्तुत करने लगा। नित्य ही कार्यालय मे एव जैन स्थानक मे इन श्रद्धाओ की भीड उपस्थित होने लगी।

श्री भोपाल सिंह जैन (महामत्री) श्री जिनभद्र जैन (माडल टाऊन) सुखबीर जैन (त्रि नगर) श्रीकृष्ण जैन (माडल टाउन देहली) ओमप्रकाश जैन (माडल टाउन) कैलाश चन्द्र जैन (लक्ष्मी नगर) ला. रामरूप जैन (सदर बाजार) मोतीलाल जी जैन (चादनी चौक) नेमचन्द जैन (चादनी चौक) महीपाल जैन (कैलाश नगर) आदि की कार्य तत्परता और निष्ठा अनूठी थी।

कदम-कदम कार्य

देहली जैन महासघ की ओर से देहली मे विराजित श्रद्धेय मुनिराजो एव महासतियो जी को उक्त समारोह मे पधारने की श्रद्धाभरी विनति की गयी। जैसे ही सघस्थ जन विनति निमित्त मुनिराजो तथा महासतियो की सेवा मे पहुचे। उन्हे अपने उद्देश्य से अवगत कराया और समारोह मे पधारने की प्रार्थना की, सभी मुनिराजो व महासतियो ने हर्ष अभिव्यक्त किया। कई श्रद्धेय मुनिराजो ने अपनत्व प्रकट करते हुए कहा—विद्वद्रत्न मुनि श्री के बहु-मानार्थ हम बिना विनती के ही आने को तैयार है। जब मैंने यह सुना तो मेरा

मन कृतज्ञता लेकर आया। धन्य है मुनिवरों व महासतियों के वात्सल्य भाव को, स्नेह को तथा उनके विमल मन को।

जैन महासंघ ने समारोह की रूपरेखा निर्धारित कर निम्नलिखित सूचना प्रसारित की—

45वें दीक्षा वर्ष के अवसर पर

भव्य अभिनन्दन समारोह

अतिप्रसन्नता के साथ सूचित किया जा रहा है कि परम पूजनीय प्रातः स्मरणीय श्रद्धेय गुरुदेव विद्वद्रत्न मुनि श्री रामकृष्ण जी महाराज अपनी दीक्षा-पर्याय के 45 वर्ष पूर्ण कर 46वें वर्ष में प्रवेश कर रहे हैं।

परमाराध्य गुरुदेव के दिव्य-अवदान बहुजन-हिताय, बहुजन-सुखाय, लोकानुकम्पाय के बहुमानार्थ, दिल्ली प्रदेशीय श्री वर्धमान स्थानक-वासी जैन महासंघ 22 अप्रैल 1984 को एक भव्य अभिनन्दन समारोह आयोजित कर रहा है। उक्त समारोह में गुरुदेव श्री के उज्ज्वल व्यक्तित्व एवं विमल कृतित्व का परिबोधक 'प्रज्ञापुरुषोत्तम मुनि रामकृष्ण' ग्रन्थ का विमोचन भी किया जाएगा।

पावन दर्शन एवं मंगल प्रवचन

परम श्रद्धेय उपप्रवर्तक भण्डारी श्री पद्मचन्द जी महाराज, हरियाणा केसरी श्रुतवारिधि श्री अमर मुनि जी महाराज, उपप्रवर्तक श्री राम मुनि जी महाराज, परम सेवा-भावी श्री प्रेममुख जी महाराज

महासती श्री मगन श्री जी महाराज, महासती श्री कौशल्या जी महाराज, महासती श्री स्वर्णा जी महाराज, महासती श्री प्रवेश कुमारी जी महाराज, महासती श्री मोहन माला जी महाराज, महासती श्री विजेन्द्र कुमारी जी महाराज, महासती श्री स्नेहप्रभा जी महाराज

: कार्यक्रम :

दिनांक	—22 अप्रैल, 1984, रविवार
स्थान	—माडल टाउन वेलफेयर क्लब, माडल टाउन, देहली-9
समय	—प्रातः 8 बजे
अध्यक्ष	—श्री जे०डी० जैन (जैन रोलिंग मिल्स, गाजियाबाद, उ. प्र.)
स्वागताध्यक्ष	—श्री टी. पी. जैन (प्रधान, दिल्ली प्रदेश महासंघ)
मुख्य अतिथि	—श्री मूलचन्द जी डागा (सांसद)
मान्य अतिथि	—श्री जे.के. जैन (सांसद), श्री जगप्रवेश चन्द्र (मुख्य कार्यकारो पार्षद), श्री महेन्द्र सिंह 'साथी' (महापौर, देहली), श्री महताब चन्द जैन (महानगर पार्षद), श्री बी.पी. खुल्लर (महानगर पार्षद), श्री चन्द्रभान वधवा (निगम पार्षद),
कविता	—जैन विनय देवबन्दी, ओम्प्रकाश 'हरियाणवी', प्रो. मोहन मनीषी
प्रभात फेरी	—प्रातः 7 बजे

आपसे सानुरोध प्रार्थना है सपरिवार इष्ट मित्रों सहित पधार कर समारोह की शोभा बढ़ायें।

निवेदक :

दिल्ली प्रदेशीय श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन महासंघ, देहली

—समारोह की सूचना जहां-जिस नगर या व्यक्ति के पास पहुँची वह हर्षमन हुआ। उमंगित हुआ।

समय सरका आ रहा था। माडल टाउन में एक सप्ताह पूर्व तो पूरी चहल-पहल प्रारम्भ हो चुकी थी। अभिनन्दन समारोह की तैयारी उत्साहपूर्वक चल रही थी।

कार्यकर्ताओं एवं जनता का हर्ष उस समय चरम सीमा को छूने लगा जब परम श्रद्धेय नवयुग सुधारक भण्डारी श्री पद्मचन्द जी म०, श्रुत वारिधि हरियाणा केसरी श्री अमर मुनि जी महाराज अपनी शिष्य मण्डली सहित माडल टाउन में पधारे। हरियाणा केसरी जी म० के प्रवचनों का आनन्द नद माडल टाउन में प्रवाहित हो उठा

इसके अनन्तर परम श्रद्धेय स्थविर पद विभूषित स्व० श्री भागमल जी महाराज के सुशिष्य परम सेवाभावी श्री प्रेमसुख जी महाराज का अपने शिष्य संघ सहित माडल टाउन पदार्पण हुआ।

महासती श्री मगन श्री जी महाराज की शिष्यायें भी समारोह से पूर्व ही पधार चुकी थीं।

मुनिराजों व महासतियों के पदार्पण से माडल टाउन मे अद्भुत धर्म का वातावरण महक उठा।

देहली से बाहर :

भारत के विभिन्न स्थानो पर विराजमान मुनिराजो एवं महासतियों ने जब अभिनन्दन समारोह के विषय मे जाना तो उनके हर्षित मन के शुभ कामना सन्देश आने लगे।

समारोह से एक दिन पूर्व तो विभिन्न स्थानों से अनेक श्रद्धालुजन भी उपस्थित होने लगे। और कई कार्यकर्ता तो अपने घर-दुकान-व्यापार को छोड़कर श्रद्धाभिभूत हो, कई दिन पूर्व ही माडल टाउन मे रह समारोह के कार्य मे जुटे थे।

वह दिन आया :

अन्ततः निश्चित दिन आ पहुंचा। पूर्व निर्धारित कार्यक्रमानुसार सर्वप्रथम जैन साध्वी पद्मा जैन विद्या निकेतन (शक्ति नगर, एक्सटेंशन) के बच्चों की बस जैन स्थानक माडल टाउन देहली पहुंची। बड़ी सुन्दर सजी हुई बस में बच्चे उपस्थित हुए। उन्होने गुरुदेव को वन्दन किया। बच्चों ने गुरुदेव की दीक्षा पर्याय के प्रतीक 45 जैन ध्वज हाथों में उठा गगन में फहराए। शासनपति भगवान् महावीर स्वामी की जय! गुरुदेव विद्वद्रत्न मुनि श्री रामकृष्ण जी महाराज की जय! से वातावरण गूंज उठा। जैन ध्वज, एवं

जयकार पट्ट हाथों में लेकर बच्चों ने प्रभात फेरी का जुलूस प्रारम्भ किया। श्री जिनभद्र जैन एवं श्री राम कुमार जैन ने जुलूस का नेतृत्व किया और तभी श्री सुखबीर जैन (त्रिनगर) के नेतृत्व मे जैन संघ की बसें आनी प्रारम्भ हुई। स्थानीय एवं बाहर से उपस्थित जनों का समूह प्रभात फेरी जुलूस मे सोत्साह सम्मिलित हुआ।

जुलूस जयकार करता हुआ माडल टाउन के प्रमुख स्थानों से गुजरा। जुलूस की जयकार सुन घरों-मकानों की खिड़कियों के दरवाजे खुल गए। लोग बड़ी संख्या में छज्जों बालकोनियों से उस अद्‌भुत दृश्य को देख रहे थे। बहुत लोगों ने अपने घरो के आगे जुलूस का स्वागत किया।

इधर स्थानक के हाल मे परम श्रद्धेय भण्डारी श्री पद्मचन्द जी महाराज एवं परम पूजनीय गुरु देव विद्वद्रत्न मुनि श्री रामकृष्ण जी महाराज प्रवचन पट्ट पर विराजमान थे। यह अद्‌भुत शोभा पुनः पुनः द्रष्टव्य थी। बाहर से दर्शनार्थियों के आने का क्रम अबाध गति से उमड़ा चला आ रहा था। अन्य मुनिजनों की आनन्दातिरेक व्यस्तता भी दर्शनार्थियों में मुदिता पूर्ण कौतूहल भर रही थी। लेखक को बहुत लोगों विनोद युक्त हास्य बखेरते हुए कहा— "आज तो आप इतने बिजी हैं कि वन्दन लेने को भी समय कम पड़ गया है।" आगन्तुक जन मुनियों एवं कार्यकर्ताओं को बधाइयां बांट रहे थे।

तभी महासती श्री प्रवेश कुमारी जी महाराज की सुशिष्यायें जैन स्थानक में पधारीं। जैन स्थानक का वातावरण बहुत आनन्दातिरेक से भरा था। कुछ ही देर के पश्चात् महासती श्री स्नेह प्रभा जी महाराज, श्री नूतन प्रभा जी महाराज, श्री विमल प्रभा जी महाराज का पदार्पण हुआ। उन्होंने गुरुदेव को छियालीसवें दीक्षा दिवस पर बधाई दी। उनके स्वास्थ्य की संवृद्धि की कामना की।

\+ \+ \+

—तभी प्रभात फेरी का जुलूस, धर्म जगत् में क्या कुछ हो रहा है, का सन्देश देकर जैन स्थानक में पहुंचा। बच्चों के सुमधुर कण्ठों से गुरुदेव के जयकारे गुंजित हो रहे थे। स्थानक के सामने की सड़क भीड़ से खचाखच भरी थी।

महासंघ की विनति :

देहली जैन महासंघ के नेताओं ने गुरुदेव से प्रार्थना प्रस्तुत की—आप मुनिजनो सहित अभिनन्दन-मण्डप मे पधारें।

संघ-प्रार्थना पर सभी मुनिजनो ने एकत्र हो सभा मण्डप की ओर प्रस्थान किया। यह दृश्य तो दर्शको के मानस मे चिर-स्मरणीय रहेगा। सबसे आगे जैन ध्वजायें लिए साध्वी पद्मा जैन विद्या निकेतन के बच्चे पंक्ति-बद्ध अनुशासित हो चल रहे थे। उनके पश्चात् अनेक जयपट्टो को लिए कार्य कर्ता चल रहे थे। तदनन्तर परमश्रद्धेय भण्डारी श्री पद्मचन्द जी म० एवं परमपूजनीय गुरुदेव विद्वद्रत्न मुनि श्री रामकृष्ण जी महाराज साथ-साथ चल रहे थे और उनके पीछे थे—हरियाणा केसरी श्रुतवारिधि श्री अमर मुनि जी म०, परम सेवाभावी श्री प्रेमसुख जी महाराज एवं अन्य मुनिजन।

पीछे-पीछे अपार जन-समूह जयघोष करता हुआ चल रहा था।

—मुनिजन सभा मण्डप मे पहुचे। महासतिया जी महाराज भी सभा मण्डप मे पधार चुकी थी। सभी ने अपना-अपना स्थान ग्रहण किया। मण्डप आगन्तुको से अटा सटा जा रहा था।

तभी महासती श्री कौशल्या जी महाराज अपनी शिष्याओ सहित पधारी और महासती श्री विजेन्द्र कुमारी जी महाराज की सुशिष्यए श्री सुशीला कुमारी जी महाराज एवं अन्य साध्वियो का पदार्पण हुआ।

इसके अतिरिक्त दिल्ली तथा बाहर के प्रसिद्ध विद्वान्, उद्योगपति, राज-नीतिक नेता, समाज सेवी तथा संघों के प्रतिनिधि भाई-बहिन हजारों की संख्या से समारोह में उपस्थित हो चुके थे। समारोह का समग्र वातावरण धर्म प्रभावना वर्धक, वैराग्य भावोत्तेजक तथा हर्षोल्लास पूर्ण था।

समारोह के अध्यक्ष गाजियाबाद के प्रसिद्ध युवा उद्योगपति तथा विश्रुत समाज सेवी श्री जे०डी० जैन तथा मुख्य अतिथि संसद सदस्य श्री मूलचन्द जी डागा थे। इसके अतिरिक्त महापार्षद श्री मेहताबचन्द जैन एवं श्री बी०पी० खुल्लर तथा नगर निगम पार्षद श्री चन्द्रभान बघवा, श्री हरिश्चन्द्र जैन की उपस्थिति भी अत्यन्त उत्साह वर्धक तथा शोभास्पद थी।

कार्यक्रम का शुभारम्भ श्रुत वारिधि, हरियाणा केसरी श्री अमर मुनि जी महाराज के मधुर, गम्भीर एवं ओजस्वी महामंत्र णमोकार तथा 'वन्दना

महावीर तेरी' के मंगलाचरण से हुआ। मुनि श्री के प्रभावपूर्ण तथा सुमधुर मंगलाचरण से समारोह का सम्पूर्ण वातावरण शांत रस एवं गम्भीरतामय हो गया।

महासंघ के महामंत्री श्री गोपालसिंह जैन ने महोत्सव की महत्ता और आवश्यकता पर प्रकाश डालते हुए समारोह-आयोजन का उद्देश्य प्रतिपादित किया। यशस्वी-गायक एवं कवि श्री विनय 'देवबंदी' की चौबीस जिनराज वंदना सुनकर समस्त श्रोतागण मंत्र मुग्ध हो उठे। श्री देवबंदी जी ने चौबीस तीर्थंकरों की वंदना के पश्चात् उपस्थित संत-सती मण्डल के चरणों में भी अपने काव्य-सुमन समर्पित किए।

समारोह के स्वागताध्यक्ष तथा दिल्ली महासंघ के प्रधान युवा समाज नेता श्री टी.पी. जैन ने माल्यार्पण द्वारा समारोह के अध्यक्ष श्री जे.डी. जैन का भावभीना स्वागत किया।

महासंघ के उपाध्यक्ष श्री जे.डी. मित्तल, श्री सुखवीर सिंह एवं माडल टाउन जैन संघ के प्रधान श्री इन्द्रसेन जी के द्वारा भी श्री जे.डी. जैन का माल्यार्पण द्वारा स्वागत एवं अभिनन्दन किया गया।

श्री टी.पी. जैन, श्री ओम् प्रकाश जी, श्री जे.डी. मित्तल, श्री जे.डी. जैन, श्री सतेशचन्द जी कागजी आदि ने आज के मुख्य अतिथियों, संसद सदस्य श्री मूलचन्द जी डागा, महानगर पार्षद श्री मेहताबचन्द जैन, बी.पी. कुल्लर तथा श्री चन्द्रभान वधवा, नगर निगम पार्षद एवं श्री हरिश्चन्द जी का भी अभिनन्दन एवं स्वागत करते हुए उन्हें मालाएं पहनाईं।

स्वागत सत्कार एवं अभिनन्दन कार्यक्रम की सम्पन्नता के पश्चात् महासती श्री नूतन प्रभा जी महाराज ने अपने मधुर तथा भावभीने मुक्तकों द्वारा मुनि श्री रामकृष्ण जी महाराज का जीवन-परिचय देते हुए उनका सविनय अभिनन्दन एवं वंदन किया तथा गुरुदेव के दीर्घायु होने की कामना की।

परम सेवाभावी मुनि श्री प्रेमसुख जी महाराज के विद्वान् शिष्य मुनि श्री रवीन्द्र कुमार जी म. ने सन्त जीवन का महत्व बताते हुए सन्तों के अभिनन्दन एवं सत्कार को श्रावकों की कर्म निर्जरा का कारण बताया।

मुनि श्री ने विद्वद्रत्न मुनि श्री रामकृष्ण जी महाराज को ज्ञान दर्शन एवं

चारित्र की त्रिवेणी बताते हुए उनका गरिमामय विद्वत्ता तथा साधना पर विशद प्रकाश डाला। उन्होंने श्री सुभद्र मुनि जी को भी हार्दिक बधाई दी जिन्होंने अपने गुण रत्नाकर गुरुदेव के चरणों में बैठ कर उनसे प्राप्त अनुभव द्वारा गुरुदेव के प्रेरक जीवन पर आधारित 'प्रज्ञापुरुषोत्तम मुनि रामकृष्ण' ग्रन्थ का प्रणयन किया।

श्री ओम्प्रकाश हरियाणवी ने अपनी मधुर कविता द्वारा गुरुदेव श्री रामकृष्ण जी महाराज का परिचय देते हुए उनका अभिनन्दन किया।

कुमारी प्रभा जैन ने अपने भजन द्वारा पूज्य गुरुदेव को श्रद्धार्पण करते हुए उनके यशस्वी दीर्घ जीवन की कामना की।

महासती श्री मंगल ज्योति जी महाराज के ने मुनि श्री रामकृष्ण जी महाराज के प्रेरक तथा आदर्श जीवन का विशद विवेचन करते हुए गुरुदेव श्री का अभिनन्दन किया।

नगर निगम पार्षद श्री हरिश्चन्द्र जी ने कहा कि भक्तों का सन्तों के चरणों मे आना ही सौभाग्य है। सन्तों का अभिनन्दन अनोखा होता है, उनका अभिनन्दन उनके आत्मिक गुणों के आधार पर किया जाता है। पूज्य गुरुदेव एक महान् साधक है। मैं उनके चरणों में अपनी कोटिशः प्रणामाञ्जलियां समर्पित करता हूं।

बडौदा निवासी श्री सूबेदार जैन ने हरियाणवी भाषा में गुरुदेव योगिराज श्री रामजीलाल जी महाराज के प्रेरक जीवन पर गीत प्रस्तुत किया।

कवि श्री रघुवीर प्रसाद जी 'सरल' ने अपनी कविता द्वारा सन्त जीवन का महत्व प्रतिपादित करते हुए मुनि श्री का हार्दिक अभिनन्दन किया।

श्री जैन विनय देवबंदी ने पूज्य गुरुदेव श्री रामकृष्ण जी महाराज को राम और कृष्ण के गुणों का मिश्रण बताते हुए उनके व्यक्तित्व को अपने काव्य प्रसूनों द्वारा उद्घाटित किया।

नगर निगम पार्षद श्री चंद्रभान वधवा ने पूज्य गुरुदेव का कीर्तिगान करते हुए उन्हें अपनी श्रद्धामयी प्रणामाञ्जलि समर्पित की।

महासती श्री कौशल्या जी म. ने अपने सारगर्भित तथा प्रभावशाली प्रवचन में पूज्य श्री रामकृष्ण जी महाराज की गुण-गरिमा पर प्रकाश डालते हुए उन्हें

मोक्ष मार्ग का सच्चा पथिक बताया तथा उन्हें अपने भावपूर्ण श्रद्धा सुमन समर्पित करते हुए उनके दीर्घ जीवन की कामना की।

दिल्ली महासंघ के अध्यक्ष तथा आज के समारोह के स्वागताध्यक्ष श्री टी.पी. जैन ने संतो के चरणो की वंदना को श्रावकों के प्रबल पुण्यों का उदय बताते हुए सन्त जीवन की महत्ता को उजागर किया।

महासंघ द्वारा आज के इस अभिनन्दन समारोह के आयोजन के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए बताया कि मुनि श्री रामकृष्ण जी महाराज जैन समाज के एक उच्चकोटि के सन्त है। आपने कठोर सयमी जीवन जीते हुए निरन्तर ज्ञानाराधन तथा साहित्य सर्जना की है।

अत: ऐसे आदर्श सन्त का उनकी दीक्षा पर्याय के 45 वर्ष पूर्ण होने पर अभिनन्दन कर जैन साधुत्व के महत्त्व को सव साधारण क समक्ष प्रस्तुत करना महासंघ ने अपना आवश्यक कतव्य समझा।

श्री टी.पी. जैन ने घोषित किया कि दिल्ली क आस-पास के श्रावक सघो तथा महासंघ की कार्यकारिणी के सदस्यो ने पूज्य गुरुदेव की महान् साधना, साहित्य-सर्जना, विद्वत्ता तथा दीर्घ सयमी जीवन को ध्यान म रखते हुए उन्हे 'बहुश्रुत, शासन-सूर्य' की उपाधि से विभूषित कर गुरुदेव के चरणो म अपनी विनयांजलि अर्पित करने का निर्णय किया है।

श्री टी.पी. जैन की इस घोषणा के अनन्तर समस्त सभा मण्डप 'बहुश्रुत शासन सूर्य' विद्वद्रत्न मुनि श्री रामकृष्ण जी म. के जयकारों से गूंज उठा।

इसके पश्चात् आज के अध्यक्ष श्री जे.डी. जैन एव महासंघ अध्यक्ष श्री टी.पी. जैन ने 'बहुश्रुत शासन-सूर्य' उपाधि की प्रतीक 'चादर' परम श्रद्धेय उप प्रवतंक भडारी श्री पद्मचन्द जी महाराज के कर कमलो से स्पर्शित कराई। तदनन्तर श्री अमर मुनि जी महाराज एव श्री प्रेमसुख जी महाराज तथा अन्य सन्तो ने अपने कर-कमलों से उसे बहुमान पूर्वक लेकर पूज्य गुरुदेव श्री रामकृष्ण जी महाराज के सूर्यसम तेजस्वी शरीर पर सुशोभित किया।

तब समस्त वातावरण पूज्य गुरुदेव के जयकारो तथा हर्ष ध्वनियों से गुंजित हो रहा था।

समारोह : कैमरे की नजर में



प्रभात फेरी का एक दृश्य !



प्रभात फेरी मे लहराते जैन ध्वज !



अभिनंदन मण्डप की ओर आते हुए ।



मंगलाचरण करते हुए, हरियाणा केसरी श्री अमर मुनि जी महाराज ।



समारोह में विराजित मुनि-वृन्द !



अभिनंदन-पत्र का वाचन करते हुए---महामन्त्री श्री भोपालसिंह जैन



अभिनंदन मंच का एक दृश्य ।



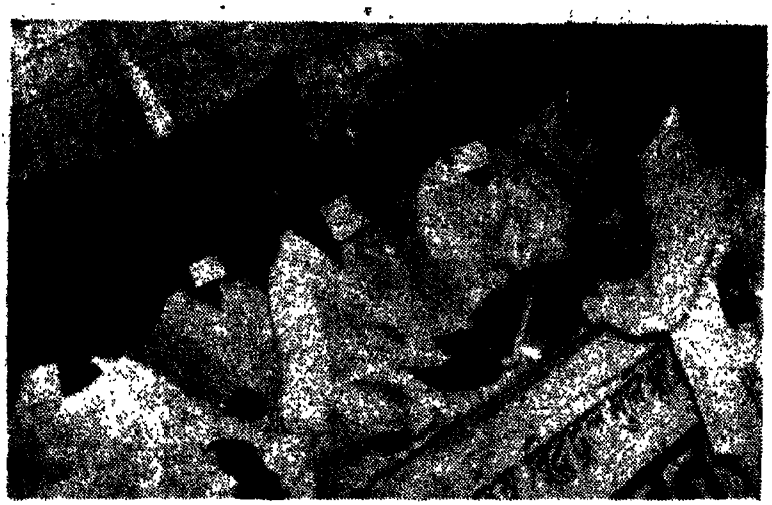
समारोह में विराजित साध्वी-वृन्द ।



बहुमान की प्रतीक चादर को लेकर आते हुए श्री जे. डी जैन (बायें) श्री टी. पी. जैन (दायें)



बहुमान की प्रतीक 'चादर' गुरुदेव को अर्पित की जा रही है।



अभिनन्दन ग्रन्थ समर्पित करते हुए - श्री मूलचन्द जी डागा (सांसद)



उपस्थित जन-समूह को आशीर्वचन देते हुए—गुरुदेव ।

एक ओर सभी सन्त-सतियाँ एवं श्रावक-श्राविकाओं के मुख-कमल, शासन सूर्य का दर्शन कर प्रफुल्लित हो रहे थे तो दूसरी ओर चादर को धारण किए हुए पूज्य गुरुदेव श्री रामकृष्ण जी महाराज गम्भीर मुद्रा में अपने पट्ट पर आसीन थे। बहुश्रुत शासन-सूर्य गुरुदेव ने अपनी लघुता तथा संकोच को प्रकट करते बहुत ही धीमे शब्दों में कहा कि आप सभी ने यह मेरा नहीं अपितु मेरे पूज्य गुरुदेव योगिराज श्री रामजीलाल जी महाराज का सम्मान किया है। आप सभी ने अनुराग वश मेरे प्रति अपनी जो भक्ति प्रकट की है यह सब मै अपने गुरुदेव के पावन चरणों मे अर्पित करता हू। तब गुरु-भक्ति वश मुनि श्री के नेत्र सजल हो आए।

बहुमान चादर समर्पण कार्यक्रम के अनन्तर महासंघ के महामन्त्री भोपाल सिंह जी द्वारा पूज्य गुरुदेव के कर कमलो मे समर्पणार्थ महासंघ द्वारा समर्पित आदर भाव का प्रतीक स्वर्णाक्षरो मे अंकित अभिनन्दन पत्र पढ़कर सुनाया। अभिनन्दन पत्र का प्रत्येक शब्द गुरुदेव की महान । का प्रतिपादक तथा उनके प्रति आदर भाव का अभिव्यंजक था।

अभिनन्दन पत्र के वाचन के अनन्तर श्री भोपालसिंह जी ने उसे पूज्य गुरुदेव के कर कमलो मे समर्पित किया। जैसे ही गुरुदेव ने अपने कर-कमलों से अभिनन्दन पत्र का स्पर्श किया सम्पूर्ण सभा मण्डप गुरुदेव एवं जैन शासन के गगनभेदी जयकारों से गूंज उठा।

सभी के हृदय आध्यात्मिक आनन्द की पराकाष्ठा पर पहुंच कर झूम उठे थे।

श्री भोपालसिंह जी ने बताया कि पूज्य गुरुदेव के शिष्य श्री सुभद्र मुनि जी ने पूज्य गुरुदेव के आदर्श जीवन को अत्यन्त निकट से देखा है। अतएव उससे प्रेरित होकर उन्होंने 'प्रज्ञापुरुषोत्तम मुनि श्री रामकृष्ण' ग्रन्थ की रचना की है। आज पूज्य गुरुदेव की दीक्षा पर्याय के 45 वर्ष पूर्ण होने के उपलक्ष्य में श्री सुभद्र मुनि जी द्वारा इस ग्रन्थ के रूप में जैन समाज को एक अमूल्य उपहार समर्पित किया जा रहा है।

इस घोषणा के पश्चात् समारोह के अध्यक्ष श्री जे.डी. जैन ने अपने कर कमलों से संसद सदस्य श्री मूलचन्द जी डागा को 'प्रज्ञापुरुषोत्तम मुनि श्री रामकृष्ण' ग्रन्थ विमोचनार्थ समर्पित किया। ग्रन्थ का विमोचन करते हुए श्री डागा जी ने कहा कि इस ग्रन्थ को मैंने ध्यान से पढ़ा है। यह ग्रन्थ जैन

सूक्तियों तथा आचार-विचार को उठाने वाले वाक्यों का बहुमूल्य भंडार है। ग्रन्थ में संगृहीत गुरुदेव का पावन चरित युगों-युगों तक हम जैसे साधारण गृहस्थों को सन्मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करता रहेगा। मैं आज इस ग्रन्थ का विमोचन करते हुए अपने जीवन को सार्थक एवं धन्य समझ रहा हूं।

इसके बाद श्री डागा जी ने ग्रन्थ को पूज्य गुरुदेव श्री रामकृष्ण जी महाराज के कर-कमलों में समर्पित कर उनका कर उनका शुभाशीर्वाद ग्रहण किया।

महानगर पार्षद श्री लुल्लर ने जैन सन्तों की कठोर साधनाओं का वर्णन करते हुए पूज्य गुरुदेव के चरणों मे अपनी विनयांजलि समर्पित की।

हरियाणा केसरी श्रुत वारिधि श्री अमर मुनि जी महाराज ने अपने प्रभावशाली प्रवचन में भारतीय संस्कृति में सन्त एवं सन्त वाणी के महत्व को प्रतिपादित करते हुए दोनों को भारतीय संस्कृति की आधार शिला बताया। आपने हरियाणा प्रदेश की पावन धरा पर उत्पन्न जैन सन्त विभूतियों के नाम तथा गुणों का स्मरण करते हुए उनके जीवन से सम्बन्धित मानव-जीवन प्रेरक अनेक संस्मरण प्रस्तुत किए। आपने विद्वद्रत्न मुनि श्री रामकृष्ण जी महाराज के प्रभाव, विद्वत्ता, नम्रता, त्याग, ज्ञान साधना आदि गुणों की, उनके जीवन के अनेक उदाहरण देकर पुष्टि की। श्री अमर मुनि जी महाराज ने मुनि श्री के दीक्षा पर्याय के 45 वर्ष पूर्ण होने के उपलक्ष्य में श्री रामकृष्ण जी महाराज को अपनी, अपने पूज्य गुरुदेव भंडारी श्री पद्मचन्द जी महाराज तथा सन्त-सती मण्डली की ओर से हार्दिक बधाई दी। मुनि श्री ने अन्त मे यह भी सूचना दी कि मुनि श्री रामकृष्ण जी महाराज ने हजारों आत्माओ को मिथ्यात्व के घोर अन्धकार से निकाल कर सम्यक्त्वी बनाया है।

आज वे सभी एक नया सम्यक्त्व से परिपूत जीवन जीते हुए इन महान् योगी के परम भक्त बन गए हैं।

संसद सदस्य श्री मूलचन्द जी डागा ने कहा कि भौतिक सम्पत्तियों पर भरोसा नहीं किया जा सकता है। भरोसा एक मात्र ज्ञान पर ही किया जा

सकता है। साधु-जन हमें कुमार्ग से हटाकर सन्मार्ग पर ले जाते हैं। उन्होंने साधु-संगति का महत्व प्रतिपादित किया।

अन्त में श्री गोपालसिंह जी ने समस्त सन्तों एवं सतियों का आभार व्यक्त किया जिन्होंने यहां पधार कर हम सभी को आत्म-कल्याण का अवसर प्रदान किया। आपने समस्त माननीय अतिथियों, महासंघ की कार्यकारिणी के अध्यक्ष, पदाधिकारियों एवं सदस्यों तथा समस्त श्रावक संघों के प्रतिनिधियों को धन्यवाद देते हुए इस अवसर पर पधारने के लिए आभार व्यक्त किया।

इसके अनन्तर तीर्थंकरों तथा संत-सतियों के जयघोष के बाद समारोह-समाप्ति की घोषणा की गई।

समारोह के पश्चात् सभी उपस्थित भाई-बहनों के लिए प्रीतिभोज का आयोजन किया गया।

यह है अभिनन्दन समारोह का संक्षिप्त वृत्त जो मैंने आंखों देखा था कानों सुना था। जो देखा उसे लिखा। जो सुना उसे प्रस्तुत किया।

अभिनन्दन है गुरुदेव !

○ ○

[परम पूजनीय प्रात· स्मरणीय, श्रद्धेय गुरुदेव विद्वद्रत्न मुनि श्री रामकृष्ण जी महाराज की दीक्षापर्याय के 46वें वर्ष-प्रवेश पर दिल्ली-प्रदेशीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन महासघ की ओर से गुरुदेव को दिनाक 22-4-84 को अर्पित किया गया अभिनन्दन पत्र ।] स०

○ ○

परम श्रद्धेय गुरुदेव !

यह समस्त महासंघ आज आपके श्री चरणों में श्रद्धा से नम्रीभूत है। आप समझे, जाने, आंके न आंके पर आज हम लोगों के मन कृतज्ञता से आप्लावित है। हमारे मस्तिष्क आप के श्रीचरणों में प्रणत हैं।

हमारे सिर झुके हुए हैं, आपके चरण-सरोजों में; क्योंकि आप श्रद्धेय ही नहीं, परम श्रद्धेय है।

पतित पावन गुरुदेव !

आप जिन-शासन को समर्पित-उत्सर्गित हैं गुरुदेव ! आप पतित-पावन हैं। आपने अपने जीवन में महावीर-शासन को समर्पित होकर जन-जन में महावीर की अमृत व कल्याण-कारिणी वाणी को प्रतिष्ठित किया है। महावीर की अभेद-दृष्टि को अपने हृदय में अंकित कर, पंजाब, हिमाचल, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, इन्द्रप्रस्थ के समीपवर्ती सभी छोटे-बड़े गांवों में अजैन-जैन, कुलीन-अकुलीन सभी जाति और वर्णों के लोगों में महावीर के आचार-धर्म को जाज्वल्यमान् किया है।

गुरुदेव ! इसलिए हम आपको परम श्रद्धेय के साथ-साथ पतित-पावन कह रहे हैं।

विद्वद्रत्न गुरुदेव !

'गुरु' इतनी बड़ी उपलब्धि है इस पृथ्वी पर कि उसे इससे आगे कुछ और कहा जाए, सब छोटा हो जाता है। किन्तु गुरुदेव सभी संघ-जनों ने विद्वद्रत्न कहा है। क्यों? भक्त का मन अपने लघुत्व की इयत्ता से दोनों हाथ लम्बा कर ही कह पाता है कि मेरे आराध्य की विशालता की इयत्ता इतनी बड़ी है।

आप में सब कुछ है फिर भी हम शिष्यत्व के अहोभाव में भीग कर कुछ और कहें या उपाधि प्रदान करें, यह आप की अमाप महानता को बांध पाने का प्रयत्न कहलाएगा। फिर भी आज इस शुभ अवसर पर यह दिल्ली प्रदेशीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन महासंघ आप श्री को, आपको गुणानुरूप, कार्यानुरूप, 'बहुश्रुत' 'शासन-सूर्य' के विरुद से पग-पग पर आप श्री को जानेगा।

मार्ग प्रदाता गुरुदेव !

हम शिष्य, भक्त-वर्ग को आशीर्वाद प्रदान करें कि हम साधुत्व को और जिन-शासन को समुज्ज्वल करने में समर्थ बनें।

गुरुदेव ! आप अमितायु हों, आपका स्वास्थ्य सदैव उत्तम रहे। आप का मार्ग दर्शन संघ को सदैव मिलता रहे। इसी हृदयाकांक्षा के साथ—

विनीत :

दिल्ली प्रदेशीय वर्धमान श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन महासंघ

309, कूचा मीर आशिक, चावड़ी बाजार, देहली-6

(दिनांक : 22 अप्रैल, 1984, स्थान : माडल टाऊन, देहली-9)

मंगल कामनाष्टक

कविरत्न श्री चन्दन मुनि (पंजाबी)

ज्ञान-वृद्धि में बहुत है,
जिनका सतत प्रयत्न ।
'रामकृष्ण मुनिराज' हैं
सच्चे विद्वद्-रत्न ।।
गहन मनन चिन्तन तथा,
करके श्रम अत्यन्त ।
लिखे अनेकों आपने,
अनुपम अद्‌भुत ग्रंथ ।।
नहीं कभी संकीर्णता,
वाले रहे विचार ।
हृदय स्फटिक-सा स्वच्छ है,
करुणा-पूर्ण उदार ।।
अहंकार ने क्रोध ने,
किया न किञ्चित् स्पर्श ।
संयम जीवन आपका
सचमुच है आदर्श ।।
कृपा-कोर गुरुदेव की,
पाकर अपरम्पार ।
करते हैं नित आ रहे,
संयम को साकार ।।
शिष्य 'सुभद्र' मनीन्द्र से,
मिले आपको विज्ञ ।
सार्थक उनके नाम से,
कहो कौन अनभिज्ञ ।।
दीक्षा लेकर जो किया,
जीवन सफल विशेष ।
छियालिसवें वर्ष में,
करते आज प्रवेश ।।
'चंदन मुनि' है कामना
करता मंगल-मय ।
होती जाये आपकी,
दिन-दिन जय-जय-जय ।।

रामकृष्ण मुनि का अभिनन्दन !
स्तुत्य चरण में कोटिवन्दन !!

परम मनस्वी, परम यशस्वी,
ज्ञान पुञ्ज, जो परम उदार।
व्यक्ति और समष्टि के हित,
साहित्य सृजक, विज्ञ साकार ॥1॥

जीवन के आलोकित पथ पर,
चलते रहे सतत दिन-रात।
परम साध्य श्रम किया मनीषी,
जिसका फल प्रत्यक्ष साक्षात ॥2॥

विद्वद्रत्न, मनीषी, गुरुवर,
रामकृष्ण जी गुण-गण-धाम।
हैं यथार्थ सन्मान योग्य पूज्य,
कोटि कोटि निष्कामि प्रणाम ॥3॥

उज्ज्वल है व्यक्तित्व जिन्हों का
अनुशासन में वज्र समान।
कोमल मानस पुष्प तुल्य है,
सुर गुरु सदृश जो धीमान् ॥4॥

वात्सल्य भाव के केन्द्र बिन्दु हैं,
सरल सुकोमल निर-अभिमान।
पाण्डित्य पूर्ण विराट महोदधि,
कर न सके गरिमा गुणगान ॥5॥

संयमी जीवन पूर्ण बसन्त जो,
पैंतालीस कर पाये निःशेष।
मंगलमय पावन पथ पर जो,
कर रहे छियालीस वर्ष प्रवेश ॥6॥

तमसावृत छाया जनपद में,
देकर ज्ञान ज्योति भरपूर।
दिशा प्राप्त कर सद्-भक्तों ने,
तमसावृत कीना चकचर ॥7॥

अभिनन्दन की पावन बेला,
भाव सहित शत शत वन्दन।
स्वीकृत करलो पूज्यवर मेरे,
श्रद्धा युत पावन अभिवन्दन ॥8॥

अष्ट कर्मदल, नष्ट करो गुरु,
यही गुणों का हृदय प्रकाश।
यही कामना अन्तर्मन की,
रंग मुनि क्षण-क्षण सोल्लास ॥9॥

विनयावनत
—रंगमुनि
जैन स्थानक, जम्मू

अभिनन्दन ?

श्रद्धा-दीप जलाकर आज मैं आया हूं
भावों के पुष्प संजो कर संग में लाया हूं।
करता हूं मैं अभिनंदन तुम्हारा मुनिवर
स्वीकार करो, हो मन मुदित मुस्काया हूं ॥

—मुनि प्रकाशचन्द 'निर्भय'
रतलाम (म० प्र०)

शत-शत वन्दन

सौम्य मूर्ति भद्र प्रकृति,
महासंयमी महा-त्यागी।
सत्य, अहिंसा, मैत्री, प्रेम,
समन्वय के हैं आप अनुरागी॥

श्रद्धेय मुनि श्री रामकृष्ण जी,
हैं जिन-शासन के ताज।
आप-सा चरित्रवान संत पा,
धन्य हुआ सारा समाज॥

छियालीसवें दीक्षा-दिवस पर,
करते हम आप का अभिनन्दन।
इस शुभ घड़ी पावन वेला में,
स्वीकार करो शत-शत वन्दन॥

श्रद्धा-पुष्प समर्पित करते,
भाव यह मन में धरते हैं।
आप जीओ वर्ष हजार,
प्रभु से यही कामना करते हैं॥

—साध्वी नूतनप्रभा

करते हैं हम अभिनन्दन

(1)

कर्मयोगी यदुवीर-सा,
मर्यादित रघुवीर सा,
अनुशासित शमशीर-सा
चिन्तन है महावीर सा ।।
ऐसे मुनिवर रामकृष्ण का—
करते हैं, हम अभिनंदन,
चरणों में शत-शत वंदन ।।

(2)

बचपन से सबके दु:ख बांटे,
फूल बिछाये चुन-चुन कांटे।
तेरी अमृत वाणी से ही,
टूटे युग-युग के सन्नाटे।
चरणों की पावन-रज से,
लोहा बन जाता कुन्दन, ।
करते हैं हम अभिनन्दन।
चरणों में शत-शत वन्दन ।।

(3)

करुणाकर ! करुणा बरसाई,
हर दुखिया की पीर मिटाई।
खाली-झोली भरी है ऐसे—
दुनिया देख, समझ न पाई।
ऐसे जीवन-दर्शन पर अर्पित,
है अपना तन-मन-धन।
करते हैं हम अभिनन्दन।
चरणों में शत-शत वन्दन ।।

(4)

दीन-हीन से घर आँगन में,
लुटे-लुटे से हर उपवन में।
जीर्ण-शीर्ण से जर्जर तन में,
मरुथल से हर प्यासे मन में।
नई चेतना, नई-उमंगे,
भर देता तेरा दर्शन।
करते हैं हम अभिनन्दन।
चरणों में शत-शत वन्दन ॥

(5)

'राम-कृष्ण' गुण-गौरव-राशि,
शब्दों में हम बांध न पाएं।
शत-शतायु हो, स्वस्थ हो स्वामिन,
पद-चिन्हों पर बढ़ते जाएं।
यही 'विनय' है बना रहे ये—
हम सबके माथे का चन्दन ॥
करते हैं हम अभिनन्दन।
चरणों में शत-शत वन्दन ॥

श्रद्धानत गुरुभक्त
—जैन विनय वेदवाणी

एक ही व्यक्तित्व ऐसा

एक नन्हीं मुस्कराहट से हिलें दुःख के पहाड़,
मौन के आघात से खुलते हैं संशय के किवाड़।
किसके चरणों में झुकें श्रद्धावनत होकर लिलाड़,
किसके तप से बंद होती स्वार्थ सिंहों की दहाड़?
एक ही व्यक्तित्व ऐसा एक ही बस नाम है,
श्रद्धा से कहती है दुनिया उनको मुनिवर रामकृष्ण।

त्याग के जो हैं हिमालय लेखनी की लाज हैं,
द्वेष से हैं दूर कोसों मौन की आवाज हैं।
सत्य के जो हैं सहोदर किरण की परवाज हैं,
बात कल की क्यों कहूं मैं वे उपस्थित आज हैं।
ज्ञान का आलोक फैलाना ही जिनका काम है,
श्रद्धा से कहती है दुनिया उनको गुरुवर रामकृष्ण।

जिस घड़ी जो भी मिले आशीष लेकर वह उठे,
चरण में झुक जाय, उन्नत शीश लेकर वह उठे।
वेदना से मुक्त हो बख्शीश लेकर वह उठे,
आप उठ जाता है तो दस, बीस लेकर वह उठे।
किसका दुःख-सुख एक है, आवाज ही अंजाम है,
श्रद्धा से कहती है दुनिया उनको मुनिवर रामकृष्ण।

दीप की दीपावली का बोध करवाता है कौन,
उलझते मानस में फिर से शोध करवाता है कौन?
हर समय उद्दण्ड से अनुरोध करवाता है कौन,
फिसलते पैरों में फिर गतिरोध करवाता है कौन?

अन्त में है कृष्ण जिसमें आदि में जो राम है,
श्रद्धा से कहती है दुनिया उनको मुनिवर रामकृष्ण।

—सारस्वत मोहन 'मनीषी'